इतिहास की दुनिया

भाग-2

कक्षा - 10

(राज्य शिक्षा शोध एवं प्रशिक्षण परिषद् बिहार, पटना द्वारा विकसित)

बिहार स्टेट टेक्स्टबुक पब्लिशिंग कॉरपोरेशन लिमिटेड

प्राक्कथन

मानव संसाधन विकास विभाग, बिहार सरकार के निर्णयानुसार अप्रैल, 2009 से राज्य के कक्षा- X हेतु नए पाठ्यक्रम को लागू किया गया है। प्रथम चरण में शैक्षिक सत्र 2009 के लिए वर्ग- X की सभी भाषायी एवं गैर भाषायी पुस्तकों को पाठ्यक्रम प्रारम्भ करने का निर्णय लिया गया। इस नए पाठ्यक्रम के आलोक में एस. सी. ई. आर. टी., बिहार, पटना द्वारा सभी भाषायी एवं गैर भाषायी पुस्तकें (वाणिज्य एवं कला विषयक) बिहार राज्य पाठ्य-पुस्तक प्रकाशन निगम द्वारा आवरण चित्रण कर मुद्रित किया जा रहा है।

बिहार राज्य में विद्यालयी शिक्षा के गुणवत्तापूर्ण शिक्षा के लिए माननीय मुख्यमंत्री, बिहार, श्री नीतीश कुमार, माननीय शिक्षा मंत्री, डॉ॰ चन्द्रशेखर एवं शिक्षा विभाग के अपर मुख्य सचिव, श्री के॰ के॰ पाठक, भा॰प्र॰से॰ के मार्गदर्शन के प्रति हम हृदय से कृतज्ञ हैं।

एन0सी0ई0आर0टी0, नई दिल्ली तथा एस0सी0ई0आर0टी0, बिहार, पटना के निदेशक के भी हम आभारी हैं जिन्होंने अपना सहयोग प्रदान किया ।

बिहार राज्य पाठ्य–पुस्तक प्रकाशन निगम छात्रों, अभिभावकों, शिक्षकों, शिक्षाविदों की टिप्पणियों एवं सुझावों का सदैव स्वागत करेगा, जिससे बिहार राज्य को देश के शिक्षा जगत में उच्चतम स्थान दिलाने में हमारा प्रयास सहायक सिद्ध हो सके ।

सन्नी सिन्हा, आई॰आर॰एस॰एस॰
प्रबंध निदेशक
बिहार राज्य पाठ्य-पुस्तक प्रकाशन निगम लि॰

दिशा बोध-सह-पाठ्यपुस्तक विकास समन्वय समिति

- **श्री के0 के0 पाठक,** भा.प्र.से., अपर मुख्य सचिव शिक्षा विभाग, पटना
- **श्री सज्जन राजसेकर,** भा.प्र.से., निदेशक, एस.सी.ई.आर.टी., पटना
- **श्री रामशरणागत सिंह,** संयुक्त निदेशक, शिक्षा विभाग, बिहार, विशेष कार्य पदाधिकारी, बी.एस.टी.बी.पी.सी., पटना
- **श्री मधुसूदन पासवान,** कार्यक्रम पदाधिकारी, बिहार शिक्षा परियोजना परिषद्, पटना
- **डॉ. एस. ए. मुईन,** विभागाध्यक्ष, एस.सी.ई.आर.टी., पटना
- **श्री अमित कुमार,** सहायक निदेशक, प्राथमिक शिक्षा निदेशालय, बिहार सरकार
- **डॉ. ज्ञानदेव मणि त्रिपाठी,** प्राचार्य, मैत्रेय कॉलेज ऑफ एजुकेशन एण्ड मैनेजमेंट, हाजीपुर
- **डॉ. उदय कुमार उज्ज्वल,** अपर कार्यक्रम पदाधिकारी, बिहार शिक्षा परियोजना परिषद्, पटना

समन्वयक –

श्री अर्जुन ठाकुर, व्याख्याता, एस०सी०ई०आर०टी०, बिहार, पटना

श्री नारायण आर्य, व्याख्याता, एस०सी०ई०आर०टी०, बिहार, पटना

लेखक समूह –

1. **डा० इम्तियाज अहमद,** निदेशक, खुदा बक्श ओरियन्टल पब्लिक लाइब्रेरी, पटना
2. **डा० माधुरी द्विवेदी,** स० शिक्षिका, पटना कालेजियट स्कूल, पटना
3. **डा० सुनीता शर्मा,** व्याख्याता, वी०डी०इभिनिंग कॉलेज, पटना
4. **डॉ० पूर्णनाथ कुमार,** स० शिंक्षक, राजकीय बालक मध्य विद्यालय, मछुआटोली पटना
5. **श्री पंकज कुमार,** स० शि० राजकीयकृत उच्च विद्यालय, वीर ओइयारा, वीर, पटना
6. **मो० शकील राजा,** स० शि०, टी० के० घोष राजकीय उच्च विद्यालय, अशोक राजपथ, पटना
7. **डा० अख्तर आलम,** व्याख्याता, एस०सी०एम० कॉलेज, गया
8. **श्री ज्ञान रंजन,** स० शि०, उच्च माध्यमिक विद्यालय, शकूराबाद
9. **श्री राम विनय पासवान,** व्याख्याता, एस०सी०ई०आर०टी०, बिहार, पटना

समीक्षक -

1. **श्री पी० के० पोद्दार,** इतिहास विभाग, बी० एन० कॉलेज, पटना विश्वविद्यालय, पटना
2. **श्रीमती माया शंकर,** वाचक, पटना विश्वविद्यालय, पटना

अकादमिक सहयोग : इम्तियाज आलम, व्याख्याता राज्य शिक्षा शोध एवं प्रशिक्षण परिषद्, पटना

आमुख

प्रस्तुत पुस्तक इतिहास की दुनिया "सामाजिक विज्ञान," कक्षा-10 भारत सरकार की राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986), राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा -2005 तथा राज्य शिक्षा शोध एवं प्रशिक्षण परिषद्, बिहार द्वारा एन०सी०एफ० -2005 के सिद्धांत, दर्शन तथा शिक्षा शास्त्रीय दृष्टिकोण के आधार पर विशिष्ट रूप से ग्रामीण क्षेत्र को संदर्भ में रखते हुए बिहार पाठ्यचर्या की रूपरेखा -2008 तथा तदनुरूप पाठ्यक्रम के आधार पर बिहार राज्य के शिक्षक समूह के साथ चरणबद्ध कार्यशाला के साधन सेवी, विषय विशेषज्ञ एवं शिक्षाविदों के साथ मिलकर निर्माण किया गया है। पाठ्यक्रम के उद्देश्य तथा प्रकरण यथा भोजन, पदार्थ, सजीवों का संसार, गतिमान वस्तुएँ, लोग एवं उनके विचार, वस्तुएँ कैसे कार्य करती है, प्राकृतिक परिघटनाएँ तथा प्राकृतिक संसाधन की मुख्य अवधारणाओं में दिये गये विषय-वस्तु पाठ्यपुस्तक के अध्यायों में परिलक्षित एवं समाविष्ट किया गया है जिससे बच्चों के सर्वांगीण विकास अर्थात् शारीरिक, मानसिक, चारित्रिक एवं अभ्यास क्षमताओं पर ध्यान दिया गया है । बच्चों में करके सीखने तथा खोजी भावना का विकास करने तथा आपस में मिल-जुलकर सीखने की प्रवृति का विकास करके उनको जिम्मेवार नागरिक बनाया जाय, जिससे देश की धर्म निरपेक्षता, अखंडता एवं समृद्धि के लिए कार्य करे तथा संविधान की प्रस्तावना की पूर्त्ति हो, ऐसा विद्यालयीय शिक्षा के क्रम में पाठ्यक्रम तथा पाठ्यपुस्तक में ध्यान रखा गया है । पाठ्य-पुस्तक के सभी अध्याय रोचकपूर्ण है। पाठ्यपुस्तक में दिये गये विषय वस्तु विद्यार्थियों के दैनिक अनुभव पर आधारित हो, ऐसा प्रयास किया गया है । कुछ अध्यायों में कहानी के माध्यम से विज्ञान के रहस्यों का उद्भेदन करने का प्रयास किया गया है, जो अपने आप में नवाचार है। कहीं-कहीं ऐसे संदर्भित प्रश्न हैं, जिसे बच्चे वैज्ञानिक दृष्टिकोण को विकसित करते हुए सत्य के निकट जाने हेतु कौतुहलता एवं जिज्ञासा रहेगी।

पाठ्यपुस्तक के माध्यम से बच्चों तथा शिक्षक के बीच, शिक्षण अधिगम प्रक्रिया बाल-केन्द्रित तथा सीखना बिना बोझ के अर्थात् सुगम एवं आनन्ददायी शिक्षण हो, ऐसा प्रयास किया गया है, इसलिए पाठ्य-पुस्तक के सभी अध्यायों के विषय वस्तु में जगह-जगह क्रियाकलाप अर्थात् गतिविधि तथा प्रयोग

का वर्णन है । पुस्तक की अधिकांश क्रियाकलाप बिना किसी सामग्री या कम लागत की सामग्री के साथ करवाई जा सकती है । शिक्षण जितना गतिविधि आधारित होगा, बच्चों को सक्रिय बनाने वाला होगा तथा बच्चों को उतना ही अधिक आनन्द आएगा और वे उतनी ही अच्छी तरह दक्षताओं को प्राप्त कर सकेंगे । इस कार्य में शिक्षक की भूमिका महत्वपूर्ण है । प्रत्येक अध्याय के अन्त में नये शब्द, प्रमुख शब्द, पर्याप्त प्रश्न तथा अधिकांश अध्याय में परियोजना कार्य भी दिये गये हैं जिससे की छात्र की उपलब्धियों की जाँच हो सके ।

प्रस्तुत पाठ्यपुस्तक की पाण्डुलिपि तैयार करने के पूर्व राज्य शिक्षा शोध एवं प्रशिक्षण परिषद्, पटना द्वारा विभागीय पदाधिकारियों, विषय विशेषज्ञों, भाषा विशेषज्ञों एवं प्रारम्भिक स्तर के शिक्षकों की कार्यशाला आयोजित की गयी । काफी गहन चर्चा के बाद पुस्तक की पाण्डुलिपि का निर्माण किया गया । राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, बिहार राज्य पाठ्यपुस्तक प्रकाशन निगम, द्वारा विकसित पुस्तकों के साथ अनेक प्रकाशनों की पुस्तकें, संदर्भ सामग्री के रूप में पाठ्यपुस्तक को तैयार करने में उपयोगी साबित हुई ।

इस पुस्तक के निर्माण में समन्वयक के रूप में श्री अर्जुन ठाकुर एवं श्री नारायण आर्य व्याख्याता एस० सी० ई० आर० टी० की अहम भूमिका रही है । डा० इम्तियाज अहमद के भी कृतज्ञ है जिन्होंने बहुमूल्य समय निकालकर पाण्डुलिपि की समीक्षा की । श्री रामतवक्या तिवारी, विभागाध्यक्ष एवं श्री विजय कुमार आशुलिपिक की पाण्डुलिपि के निर्माण में भूमिका सराहनीय है ।

आशा है सामाजिक विज्ञान की यह पाठ्यपुस्तक बच्चों के लिए लाभदायक, आनन्ददायी एवं रुचिकर सिद्ध होगी । अल्प समय में निर्मित पुस्तक के लिए समालोचनाओं एवं सुझावों का परिषद् स्वागत करेगी । प्राप्त सुझावों के प्रति परिषद् सजग एवं संवेदनशील होकर अगले संस्करण में आवश्यक परिमार्जन के प्रति विशेष ध्यान देगी ।

निदेशक
राज्य शिक्षा शोध एवं प्रशिक्षण परिषद्
बिहार, पटना-6

हम, भारत के लोग, भारत को एक संपूर्ण प्रभुत्व-सम्पन्न, समाजवादी, पंथ-निरपेक्ष, लोकतंत्रात्मक गणराज्य बनाने के लिए तथा उसके समस्त नागरिकों को :

सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय,
विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म
और उपासना की स्वतंत्रता,
प्रतिष्ठा और अवसर की समता
प्राप्त करने के लिए
तथा उन सब में व्यक्ति की गरिमा और
राष्ट्र की एकता और अखंडता
सुनिश्चित करने वाली बंधुता बढ़ाने के लिए

दृढ़संकल्प होकर अपनी इस संविधान सभा में आज तारीख 26 नवंबर, 1949 ई. (मिति मार्गशीर्ष शुक्ला सप्तमी, संवत् दो हजार छह विक्रमी) को एतद्द्वारा इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं।

अनुक्रमणिका

इकाई : 1

यूरोप में राष्ट्रवाद

राष्ट्रवाद आधुनिक विश्व की राजनैतिक जागृति का प्रतिफल है। यह एक ऐसी भावना है जो किसी विशेष भौगोलिक, सांस्कृतिक या सामाजिक परिवेश में रहने वाले लोगों में एकता की वाहक बनती है।

नेपोलियन

राष्ट्रवाद की भावना का बीजारोपण यूरोप में पुनर्जागरण के काल से ही हो चुका था। परन्तु 1789 ई० की फ्रांसीसी क्रांति से यह उन्नत रूप में प्रकट हुई। 19 वीं शताब्दी में तो यह उन्नत एवं आक्रमक रूप में सामने आयी। इसके कारण भी यथेष्ट थे और परिणाम भी युगान्तकारी रहे।

यूरोप में राष्ट्रीयता की भावना के विकास में फ्रांस की राज्यक्रांति तत्पश्चात नेपोलियन के आक्रमणों ने महत्वपूर्ण योगदान दिया। फ्रांसीसी क्रांति ने राजनीति को अभिजात्यवर्गीय परिवेश से बाहर कर उसे अखबारों, सड़कों और सर्वसाधारण की वस्तु बना दिया। यूरोप के कई राज्यों में नेपोलियन के अभियानों द्वारा नवयुग का संदेश पहुँचा। नेपोलियन ने जर्मनी और इटली के राज्यों को भौगोलिक नाम की परिधि से बाहर कर उसे वास्तविक एवं राजनैतिक रूपरेखा प्रदान की, जिससे इटली और जर्मनी के एकीकरण का मार्ग प्रशस्त हुआ। दूसरी तरफ नेपोलियन की नीतियों के कारण फ्रांसीसी प्रभुता और अधिपत्य के विरूद्ध यूरोप में देशभक्तिपूर्ण विक्षोभ भी जगा। नेपोलियन के पतन के बाद यूरोप की विजयी शक्तियाँ ऑस्ट्रिया की राजधानी वियना में 1815 में एकत्र हुई, जिनका उद्देश्य यूरोप में पुनः उसी व्यवस्था को स्थापित करना था, जिसे नेपोलियन के युद्धों और विजयों ने अस्त-व्यस्त कर दिया
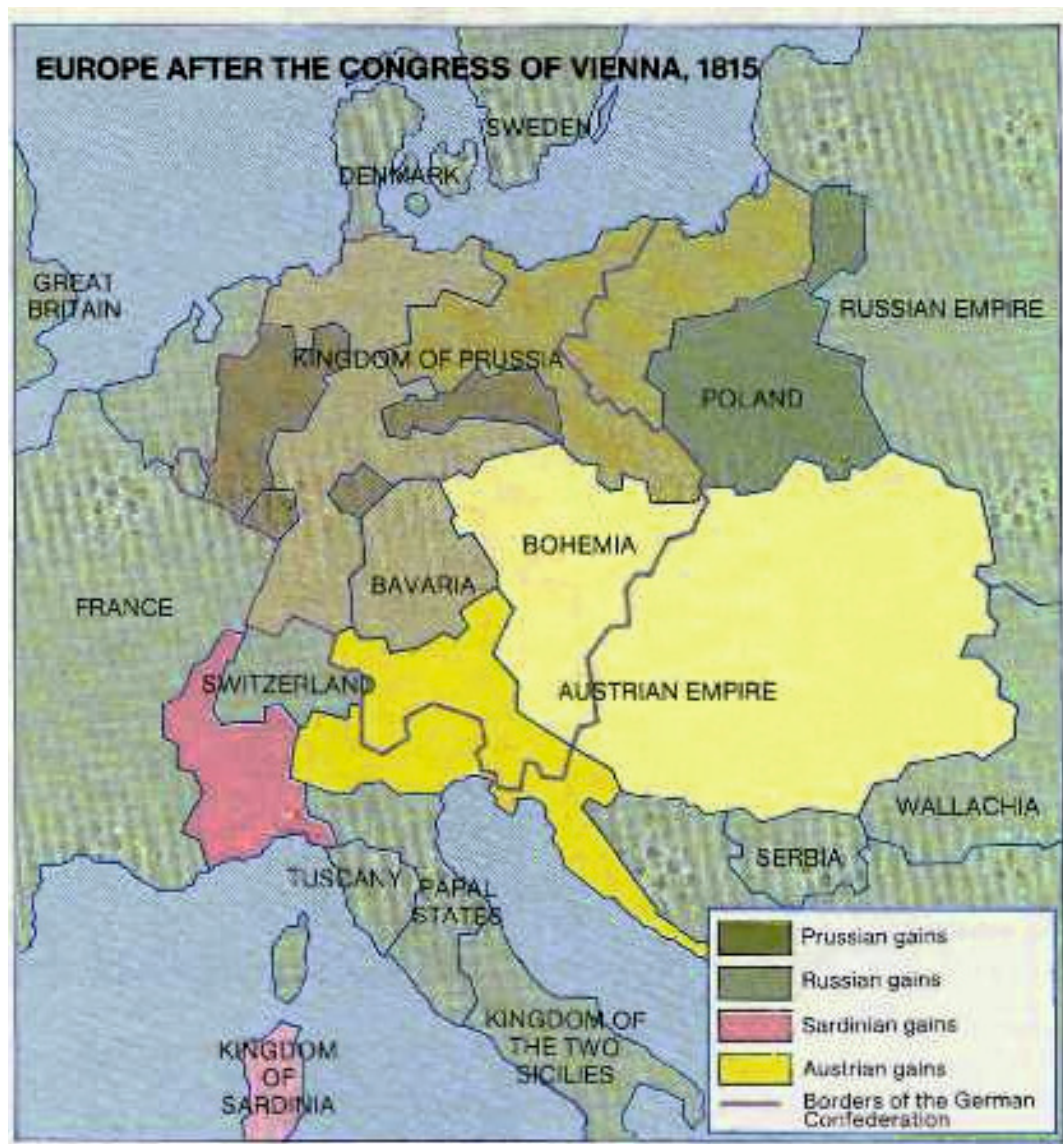
था। परन्तु इसमें भाग लेने वाले राजनयिक इस बात को देख सकने में असमर्थ रहे कि जनतंत्र और राष्ट्रवाद की नयी शक्तियाँ राजनीति को निर्धारित करने वाले नये तत्वों के रूप में उभर रही थी।

सन् 1815 ई० के वियना सम्मेलन की मेजबानी आस्ट्रिया के चांसलर मेटरनिख ने किया, जो घोर प्रतिक्रियावादी था। इस सम्मेलन में ब्रिटेन, रूस, प्रशा और आस्ट्रिया जैसी यूरोपीय शक्तियों ने मिलकर ऐसी व्यवस्था की जिसका मुख्य उद्देश्य यूरोप में उस शांति संतुलन को स्थापित करना

मेटरनिख

था जिसे नेपोलियन के युद्धों ने समाप्त कर दिया था। गणतंत्र एवं प्रजातंत्र, जो फ्रांस की क्रांति की देन थी, उसका विरोध करना और पुरातन व्यवस्था की पुर्नस्थापना करना मेटरनिख व्यवस्था का उद्देश्य था। अतः वियना सम्मेलन के माध्यम से यूरोप में नेपोलियन युग का अंत और मेटरनिख युग की शुरूआत हुई। इटली पर अपना प्रभाव स्थापित रखने के लिए मेटरनिख ने उसे कई राज्यों में विभाजित कर दिया। सिसली और नेपल्स के प्रदेश बूर्बोवंश के सम्राट फर्डिनेंड को दे दिया गया। रोम और उसके आस-पास के राज्य पोप को सौंप दिए गए। लोम्बार्डी एवं वेनेशिया पर आस्ट्रिया की प्रभूता कायम हुई। परमा, मोडेना और टरकनी के प्रान्त हैब्सवर्ग राजवंश को दे दिए गए तथा जेनेवा और सार्डिनिया पिडमाउन्ट के राज्य में सम्मिलित कर दिए गए। जर्मनी में 39 रियासतों का संघ कायम रहा जिस पर अप्रत्यक्ष रूप से आस्ट्रिया का अधिकार स्थापित किया गया तथा हर सम्भव प्रयास किया गया कि उनमें राष्ट्रीयता की भावना नही जगे। मेटरनिख ने फ्रांस में भी पुरातन व्यवस्था की पुर्नस्थापना की। इस तरह वियना सम्मेलन प्रतिक्रियावादी शक्तियों की विजय थी। लेकिन यह व्यवस्था स्थायी साबित नहीं हुई और जल्द ही यूरोप में राष्ट्रीयता की भावना का प्रसार हुआ जिससे यूरोप के लगभग सभी देश प्रभावित हुए।

फ्रांस में वियना व्यवस्था के तहत क्रांति के पूर्व की व्यवस्था को स्थापित करने के लिए बूर्बो राजवंश को पुर्नस्थापित किया गया तथा लुई 18 वाँ फ्रांस का राजा बना। उसने फ्रांस की बदली हुई परिस्थितियों को समझा और फ्रांसीसी जनता पर पुरातनपंथी व्यवस्था को थोपने का प्रयास नहीं किया। उसने प्रतिक्रियावादी तथा सुधारवादी शक्तियों के मध्य सामंजस्य स्थापित करने का प्रयास किया तथा इसी उद्देश्य से 2 जून 1814 ई० को सम्राट की ओर से संवैधानिक घोषणापत्र जारी किये गए जो 1848 ई० तक फ्रांस में चलते रहे। चार्ल्स-X के शासनकाल में इसमें कुछ परिवर्तन किये गए परन्तु इसका परिणाम 1830 की क्रांति के रूप में सामने आया।

जुलाई 1830 की क्रांति :

चार्ल्स-X एक निरंकुश एवं प्रतिक्रियावादी शासक था जिसने फ्रांस में उभर रही राष्ट्रीयता तथा जनतंत्रवादी भावनाओं को दबाने का कार्य किया। उसने अपने शासनकाल में संवैधानिक लोकतंत्र की राह में कई गतिरोध उत्पन्न किये। उसके द्वारा प्रतिक्रियावादी पोलिग्नेक को प्रधानमंत्री बनाया गया। पोलिग्नेक ने पूर्व में लुई 18 वें द्वारा स्थापित समान नागरिक संहिता के स्थान पर शक्तिशाली आभिजात्य वर्ग की स्थापना तथा उसे विशेषा धिकारों से विभूषित करने का प्रयास किया। उसके इस कदम को उदारवादियों ने चुनौती तथा क्रांति के विरूद्ध षडयंत्र समझा। प्रतिनिधि सदन एवं दूसरे उदारवादियों ने पोलिग्नेक के विरूद्ध गहरा असंतोष प्रकट किया। चार्ल्स-X ने इस विरोध की प्रतिक्रियास्वरूप 25 जुलाई 1830 ई० को चार अध्यादेशों द्वारा उदार तत्वों का गला घोंटने का प्रयास किया। इन अध्यादेशों के विरोध में पेरिस में क्रांति की लहर दौड़ गई और फ्रांस में 28 जुन 1830 ई० से गृहयुद्ध आरम्भ हो गया, इसे ही जुलाई 1830 की क्रांति कहते है। परिणामतः चार्ल्स-X फ्रांस की राजगद्दी त्याग कर इंग्लैंड पलायन कर गया और इस प्रकार फ्रांस में बूर्वो वंश के शासन का अंत हो गया।

फ्रांस में जुलाई 1830 ई० की क्रांति के परिणामस्वरूप बूर्वो वंश के स्थान पर आर्लेयेंस वंश को गद्दी सौंपी गई। इस वंश के शासक लुई फिलिप ने उदारवादियों, पत्रकारों तथा पेरिस की जनता के समर्थन से सत्ता प्राप्त की थी। अतएव उसकी नीतियाँ उदारवादियों के पक्ष में तथा संवैद्यानिक गणतंत्र के निमित्त रही।

1830 की क्रांति का प्रभाव :

इस प्रकार जुलाई की क्रांति इस बात की सूचक थी कि देश में कट्टर राजसत्तावादियों का प्रभाव कम हो रहा था। वास्तव में यह क्रांति मध्यमवर्ग और लोकसप्रभुता के सिद्धान्तों की देन थी। इस क्रांति ने फ्रांसीसी क्रांति के सिद्धान्तों को पुनर्जीवित किया तथा वियना काँग्रेस के उद्देश्यों को निर्मूल सिद्ध कर दिया। इसका प्रभाव सम्पूर्ण यूरोप पर पड़ा और राष्ट्रीयता तथा देशभक्ति की भावना का प्रस्फुटन जिस प्रकार हुआ उसने सभी यूरोपीय राष्ट्रों के राजनैतिक एकीकरण, सांवैद्यानिक सुधारों तथा राष्ट्रवाद के विकास का मार्ग प्रशस्त किया। इटली तथा जर्मनी का एकीकरण तथा यूनान, पोलैंड एवं हंगरी में तत्कालीन व्यवस्था के प्रति राष्ट्रीयता के प्रभाव के

कारण आन्दोलन उठ खड़े हुए। आगे चलकर फ्रांस में भी लुई फिलिप के खिलाफ आवाज उठने लगी जिससे फ्रांस में एक ओर क्रांति की पृष्टभूमि तैयार कर दी।

सन् 1848 ई० की क्रांति :

लुई फिलिप एक उदारवादी शासक था, परन्तु बहुत अधिक महत्वाकांक्षी था। उसने अपने विरोधियों को खुश करने के लिए स्वर्णिम मध्यमवर्गीय नीति का अवलम्बन करते हुए सन् 1840 में गीजो को प्रधानमंत्री नियुक्त किया, जो कट्टर प्रतिक्रियावादी था। वह किसी भी तरह के वैधानिक, सामाजिक एवं आर्थिक सुधारों के विरूद्ध था। लुई फिलिप ने पूँजीपति वर्ग को साथ रखना पसन्द किया जिसे शासन के कार्यों में अभिरूचि नहीं थी और जो अल्पमत में भी था। उसके पास किसी भी तरह का सुधारात्मक कार्यक्रम नहीं था और न ही उसे विदेश नीति में ही किसी तरह की सफलता हासिल हो रही था। उसके शासन काल में देश में भुखमरी एवं बेरोजगारी व्याप्त होने लगी, जिसकी वजह से गीजों की आलोचना होने लगी। सुधारवादियों ने 22 फरवरी 1848 ई० को पेरिस में थियर्स के नेतृत्व में एक विशाल भोज का आयोजन किया। जगह–जगह अवरोध लगाए गए और लुई फिलिप को गद्दी छोड़ने पर मजबूर किया गया। 24 फरवरी को लुई फिलिप ने गद्दी का त्याग किया और इंगलैंड चला गया। तत्पश्चात् नेशनल एसेम्बली ने गणतंत्र की घोषणा करते हुए 21 वर्ष से उपर के सभी वयस्क पुरूषों को मताधिकार प्रदान किया और काम के अधिकार की गारंटी दी। गणतंत्रवादियों का नेता लामार्टिन एवं सुधारवादियों का नेता लुई ब्लाँ था। शीघ्र ही दोनों में मतभेद आरम्भ हो गया और लुई नेपोलियन–फ्रांस का सम्राट बना।

इस क्रांति ने न सिर्फ फ्रांस की पुरातन व्यवस्था का अंत किया बल्कि इटली, जर्मनी, आस्ट्रिया, हालैंड, स्वीट्जरलैंड, डेनमार्क, स्पेन, पोलैंड, आयरलैंड तथा इंगलैंड भी इस क्रांति से प्रभावित हुए। इटली तथा जर्मनी के उदारवादियों ने बढ़ते हुए जन असंतोष का फायदा उठाया और राष्ट्रीय एकीकरण के द्वारा राष्ट्र राज्य की स्थापना की मांगों को आगे बढ़ाया, जो संवैधानिक लोकतंत्र के सिद्धांत पर आधारित था।

इटली का एकीकरण :

इटली 19 वीं शताब्दी के आरम्भ में मात्र एक भौगोलिक अभिव्यक्ति था, जहाँ कई स्वतंत्र राज्य हुआ करते थे। इस कारण वहाँ अलगाव की भावना थी। इटली के एक राष्ट्र के

एकीकरण के पूर्व इटली

एकीकरण के बाद इटली

रूप में स्थापित होने में भौगोलिक समस्या के अलावे कई अन्य समस्याएँ भी थीं। जैसे-इटली में ऑस्ट्रिया और फ्रांस जैसे विदेशी राष्ट्रों का हस्तक्षेप था। अतः एकीकरण में इनका विरोध अवश्यम्भावी था। इधर राजधानी रोम भी पोप के प्रभाव में थी। पोप की इच्छा थी कि इटली का एकीकरण स्वयं उसके नेतृत्व में धार्मिक दृष्टिकोण से हो ना कि शासकों के नेतृत्व में। इसके अलावे अनेक आर्थिक और प्रशासनिक विसंगतियाँ भी मौजूद थीं।

परन्तु इसके बावजूद भी 19 वीं सदी के आरम्भ से ही इटली में राष्ट्रीयता का विकास हो रहा था। फ्रांस में होने वाली घटनाओं का प्रभाव भी यहाँ स्पष्ट रूप से पड़ रहा था। नेपोलियन के सैन्य अभियानों ने इटली के नवजागरण तथा एकीकरण में अप्रत्यक्ष रूप से ही सही, परन्तु महत्वपूर्ण योगदान दिया। इटली विजय के पश्चात् नेपोलियन ने इसे तीन गणराज्यों में गठित किया यथा - सीसपाइन गणराज्य, लीगुलीयन तथा ट्रांसपेडेन। उसने यातायात व्यवस्था को भी चुस्त-दुरूस्त किया तथा सम्पूर्ण क्षेत्र को एक शासन के अधीन लाया। इन सभी कारणों से वहाँ जागृति आयी। नेपोलियन के पतन (1814) के पश्चात वियना काँग्रेस (1815) द्वारा इटली को पुराने रूप में लाने के उद्देश्य से इटली के दो राज्यो पिडमाउण्ट और सार्डिनिया का एकीकरण कर दिया गया। इस प्रकार इटली के एकीकरण की दिशा तय होने लगी।

इटली में 1820 ई० से ही कुछ राज्यों में संवैधानिक सुधारों के लिए नागरिक आन्दोलन होने लगे। एक गुप्त दल 'कार्बोनारी' का गठन राष्ट्रवादियों द्वारा किया गया, जिसका उद्देश्य छापामार युद्ध के द्वारा राजतंत्र को नष्ट कर गणराज्य की स्थापना करना था। प्रसिद्ध राष्ट्रवादी नेता जोसेफ मेजिनी का संबंध भी इसी दल से था। 1830 की फ्रांसीसी क्रांति के प्रभाव से इटली भी अछूता नहीं रह सका और यहाँ भी नागरिक आन्दोलन शुरू हो गए। मेजिनी ने इन नागरिक आन्दोलनों का उपयोग करते हुए उत्तरी और मध्य इटली में एकीकृत गणराज्य स्थापित करने का प्रयास किया। लेकिन ऑस्ट्रिया के चांसलर मेटरनिख द्वारा इन राष्ट्रवादी नागरिक आन्दोलनों को दबा दिया गया और मेजिनी को इटली से पलायन करना पड़ा।

मेजनी :

मेजिनी साहित्यकार, गणतांत्रिक विचारों का समर्थक और योग्य सेनापति था। लेकिन वह तत्कालीन राजनैतिक परिस्थितियों की बेहतर समझ नहीं रखता था। अत: उसमें आदर्शवादी गुण अधिक और व्यावहारिक गुण कम थे। अपनी पराजय के बाद भी मेजिनी ने हार नहीं मानी । सन् 1831 ई० में उसने 'यंग इटली' नामक संस्था की स्थापना की, जिसने नवीन इटली के निर्माण में महत्त्वपूर्ण भाग लिया। इसका उद्देश्य इटली प्रायद्वीप से विदेशी हस्तक्षेप समाप्त करना तथा संयुक्त गणराज्य स्थापित करना था। सन् 1834 में 'यंग यूरोप' नामक संस्था का गठन कर मेजिनी ने यूरोप के अन्य देशों में चल रहे राष्ट्रीय आन्दोलन को भी प्रोत्साहित किया। सन् 1848 में जब फ्रांस सहित पूरे यूरोप में क्रांति का दौर आया तो मेटरनिख को भी अंतत: ऑस्ट्रिया छोड़ना पड़ा। इसके बाद इटली की राजनीति में पुन: मेजिनी का आगमन हुआ । मेजिनी सम्पूर्ण इटली का एकीकरण कर उसे एक गणराज्य बनाना चाहता था जबकि सार्डिनिया-पिडमाउंट का शासक चार्ल्स एलबर्ट अपने नेतृत्व में सभी प्रांतों का विलय चाहता था।उधर पोप भी इटली को धर्मराज्य बनाने का पक्षधर था। इस तरह विचारों के टकराव के कारण इटली के एकीकरण का मार्ग अवरुद्ध हो गया था। कालांतर में ऑस्ट्रिया द्वारा इटली के कुछ भागों पर आक्रमण किये जाने लगे जिसमें सार्डिनिया के शासक चार्ल्स एलबर्ट की पराजय हो गयी। ऑस्ट्रिया के हस्तक्षेप से इटली में जनवादी आन्दोलन को कुचल दिया गया। इस प्रकार मेजिनी की पुन: हार हुई और वह पलायन कर गया।

मेजनी

एकीकरण का द्वितीय चरण :

1848 तक इटली के एकीकरण के लिए किए गए प्रयास वस्तुतः असफल ही रहे परन्तु धीरे-धीरे इटली में इन आन्दोलनों के कारण जन-जागरूकता बढ़ रही थी और राष्ट्रीयता की भावना तीव्र हो रही थी। इटली में सार्डिनिया-पिडमाउण्ट का नया शासक 'विक्टर इमैनुएल' राष्ट्रवादी विचार धारा का था और उसके प्रयास से इटली के एकीकरण का कार्य जारी रहा। अपनी नीतियों के क्रियान्वयन के लिए विक्टर ने **'काउंट कावूर'** को प्रधानमंत्री नियुक्त किया।

काउंट कावूर :

कावूर एक सफल कूटनीतिज्ञ एवं राष्ट्रवादी था। वह इटली के एकीकरण में सबसे बड़ी बाधा ऑस्ट्रिया को मानता था। अतएव उसने ऑस्ट्रिया को परजित करने के लिए फ्रांस के साथ दोस्ती का हाथ बढ़ाया। 1853-54 के क्रीमिया युद्ध में कावूर ने फ्रांस की ओर से युद्ध में सम्मिलित होने की घोषणा कर दी जबकि इसके लिए फ्रांस ने किसी प्रकार का आग्रह भी नहीं किया था। इसका प्रत्यक्ष लाभ कावूर को प्राप्त हुआ। युद्ध की समाप्ति के बाद पेरिस के शांति सम्मेलन में फ्रांस तथा ऑस्ट्रिया के साथ पिडमाउण्ट को भी बुलाया गया। इससे कावूर की महत्ता बढ़ गई। इस सम्मेलन में कावूर ने इटली में ऑस्ट्रिया के हस्तक्षेप को गैरकानूनी घोषित कर दिया। जिसके कारण सम्पूर्ण यूरोप का ध्यान इटली की ओर गया। इस प्रकार इटली की समस्या को कावूर ने अपनी कूटनीति के बल पर सम्पूर्ण यूरोप की समस्या बना दिया।

कावूर ने नेपोलियन III से भी एक संधि की जिसके तहत फ्रांस ने ऑस्ट्रिया के खिलाफ पिडमाउन्ट को सैन्य समर्थन देने का वादा किया। बदले में नीस और सेवाय नामक दो रियासतें कावूर ने फ्रांस को देना स्वीकार कर लिया। फ्रांस ने कावूर को यह भी आश्वासन दिया कि यदि उत्तर तथा मध्य इटली की रियासतें जनमत संग्रह के आधार पर पिडमाउंट से मिलना चाहेंगें तो फ्रांस इसका विरोध नहीं करेगा। इसके लिए कावूर की आलोचना भी की जाती है कि उसने नीस तथा सेवाय नामक प्रांतों को फ्रांस को देने का आश्वासन देकर इटली की राष्ट्रीय अस्मिता के साथ खिलवाड़ किया। परन्तु यह तथ्य भी महत्वपूर्ण है कि तब तक इटली एक राष्ट्र के रूप में उभरा भी नहीं था। यदि दो प्रांतों को खोकर भी उत्तरी तथा मध्य इटली का एकीकरण हो जाता तो यह बड़ी उपलब्धि थी। क्योंकि फ्रांसीसी मदद के बिना इटली का एकीकरण कावूर की दृष्टि में संभव नहीं था ।

काउंट कावूर

इसी बीच 1859-60 में ऑस्ट्रिया और पिडमाउण्ट में सीमा संबंधी विवाद के कारण युद्ध आरम्भ हो गया। युद्ध में इटली के समर्थन में फ्रांस ने अपनी सेना उतार दी जिसके कारण ऑस्ट्रियाई सेना बुरी तरह पराजित होने लगी। ऑस्ट्रिया के एक बड़े राज्य लोम्बार्डी पर पिडमाउण्ट का कब्जा हो गया। एक तरफ तो लड़ाई लम्बी होती जा रही थी और दूसरी तरफ नेपोलियन इटली के राष्ट्रवाद से घबराने लगा था क्योंकि उत्तर और मध्य इटली की जनता कावूर के समर्थन में बड़े जनसैलाब के रूप में एकीकरण के लिए आंदोलनरत थी। नेपोलियन इस परिस्थिति के लिए तैयार नहीं था। अत: वेनेशिया पर विजय प्राप्त होने के तुरंत बाद नेपोलियन ने अपनी सेना वापस बुला ली। युद्ध से हटने के बाद नेपोलियन III ने ऑस्ट्रिया तथा पिडमाउण्ट के बीच मध्यस्थता करने की बात स्वीकारी। इस तरह संधि के अनुसार लोम्बार्डी पर पिइमाउण्ड का अधिकार और वेनेशिया पर ऑस्ट्रिया का अधिकार माना गया। अंतत: एक बड़े राज्य के रूप में इटली सामने आया। परन्तु कावूर का ध्यान मध्य तथा उत्तरी इटली के एकीकरण पर था। अत: उसने नेपोलियन को सेवाय प्रदेश देने का लोभ देकर ऑस्ट्रिया पिडमाउण्ट युद्ध में फ्रांस के निष्क्रिय रहने तथा इटली के राज्यों का पिडमाउण्ट में विलय का विरोध नहीं करने का आश्वासन ले लिया। बदले में नेपोलियन ने यह शर्त्त रख दी कि जिन राज्यों का विलय होगा वहाँ जनमत संग्रह कराए जाएंगे। चूँकि उन रियासतों की जनता पिडमाउण्ट के साथ थी इसलिए कावूर ने कूटनीति का परिचय देते हुए इसे स्वीकार कर लिया। 1860-61 में कावूर ने सिर्फ रोम को छोड़कर उत्तर तथा मध्य इटली की सभी रियासतों (परमा, मोडेना, टसकनी, आदि) को मिला लिया तथा जनमत संग्रह कर इसे पुष्ट भी कर लिया। ऑस्ट्रिया भी फ्रांस तथा इंग्लैंड द्वारा पिडमाउण्ट को समर्थन के भय से कोई कदम नहीं उठा सका। दूसरी तरफ ऑस्ट्रिया जर्मनी के एकीकरण की समस्या से भी जूझ रहा था। इस प्रकार

1862 ई० तक द० इटली रोम तथा वेनेशिया को छोड़कर बांकी रियासतों का विलय रोम में हो गया और सभी ने विक्टर इमैनुएल को शासक माना।

गैरीबाल्डी :

गैरीबाल्डी

इसी बीच महान क्रांतिकारी **'गैरीबाल्डी'** सशस्त्र क्रांति के द्वारा दक्षिणी इटली के रियासतों के एकीकरण तथा गणतंत्र की स्थापना करने का प्रयास कर रहा था। गैरीबाल्डी पेशे से एक नाविक था और मेजनी के विचारों का समर्थक था परन्तु बाद में कावूर के प्रभाव में आकर संवैधानिक राजतंत्र का पक्षधर बन गया। गैरीबाल्डी ने अपने कर्मचारियों तथा स्वयं सेवकों की सशस्त्र सेना बनायी। उसने अपने **सैनिकों** को लेकर इटली के प्रांत सिसली तथा नेपल्स पर आक्रमण किये इन रियासतों की अधिकांश जनता बूर्वो राजवंश के निरंकुश शासन से तंग होकर गैरीबाल्डी की समर्थक बन गयी। गैरीबाल्डी ने यहाँ गणतंत्र की स्थपना की तथा विक्टर इमैनुएल के प्रतिनिधि के रूप में वहाँ की सत्ता सम्भाली। वस्तुतः कावूर के विचार गैरीबाल्डी से नहीं मिलते थे परन्तु कावूर ने उसके दक्षिणी अभियान का समर्थन किया। 1862 ई० में गैरीबाल्डी ने रोम पर आक्रमण की योजना बनाई तब कावूर ने गैरीबाल्डी के इस अभियान का विरोध किया और रोम की रक्षा के लिए पिडमाउण्ट की सेना भेज दी। इसी बीच गैरीबाल्डी की भेंट कावूर से हुई और उसने रोम के अभियान की योजना त्याग दी। दक्षिणी इटली के जीते गए क्षेत्र को बिना किसी संधि के गैरीबाल्डी ने विक्टर इमैनुएल को सौंप दिया। गैरीबाल्डी को दक्षिणी क्षेत्र में शासक बनने का प्रस्ताव विक्टर इमैनुएल द्वारा दिया भी गया परन्तु उसने इसे अस्वीकार कर दिया। वह अपनी सारी सम्पति राष्ट्र को समर्पित कर साधारण किसान की भाँति जीवन जीने की ओर अग्रसित हुआ। त्याग और बलिदान की इस भावना के कारण गैरीबॉल्डी के चरित्र को भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के दौरान खूब प्रचारित किया गया तथा लाल लाजपत राय ने उसकी की जीवनी लिखी।

1862 ई० में दुर्भाग्यवश कावूर की मृत्यु हो गई और इस तरह वह भी पूरे इटली का एकीकरण नहीं देख पाया। रोम तथा वेनेशिया के रूप में शेष इटली का एकीकरण विक्टर इमैनुएल

ने स्वयं किया। 1870–71 में फ्रांस और प्रशा के बीच युद्ध छिड़ गया जिस कारण फ्रांस के लिए पोप को संरक्षण प्रदान करना संभव नहीं था । विक्टर इमैनुएल ने इस परिस्थिति का लाभ उठाया। पोप ने अपने आप को बेटिकन सिटी के किले में बंद कर लिया। इमैनुएल ने पोप के राजमहल को छोड़कर बाकी रोम को इटली में मिला लिया और उसे अपनी राजधानी बनाया इस नई स्थिति को पोप ने तत्काल स्वीकार नहीं किया । **अंततः इस समस्या का निदान मुसोलिनी द्वारा** हुआ जब उसने पोप के साथ समझौता कर वेटिकन की स्थिति को स्वीकार कर लिया।

इस प्रकार 1871 ई० तक इटली का एकीकरण मेजनी, कावूर, गैरीबाल्डी जैसे राष्ट्रवादी नेताओं एवं विक्टर इमैनुएल जैसे शासक के योगदानों के कारण पूर्ण हुआ। इन सभी घटनाओं के पार्श्व में राष्ट्रवादी चेतना सर्वोपरी थी।

जर्मनी का एकीकरण :

इटली के एकीकरण के दौरान ही जर्मन क्षेत्र में भी समान प्रक्रियाएँ चल रही थी। अतः दोनो देशों का एकीकरण लगभग साथ–साथ ही सम्पन्न हुआ।

जर्मनी का एकीकरण (1866–71)

जर्मनी मध्यकाल (लगभग 800 ई०) में शार्लमा के नेतृत्व में संगठित होकर लम्बे समय तक सुदृढ अवस्था में रहा। परन्तु आधुनिक युग के आते-आते जर्मनी पूरी तरह से विखंडित राज्य था जिसमें लगभग 300 छोटे-बड़े राज्य थे। उनमें राजनीतिक सामाजिक तथा धार्मिक विषमताएँ भी मौजूद थीं। उत्तर जर्मन राज्यों में जहाँ प्रोटेस्टेंट मतावलम्बियों की संख्या ज्यादा थी। वहाँ प्रशा सबसे शक्तिशाली राज्य था एवं अपना प्रभाव बनाए हुए था। दूसरी तरफ दक्षिण जर्मनी के कैथेलिक बहुल राज्यों की प्रतिनिधि सभा-'डायट' जिन्दा थी, जहाँ सभी मिलते थे। परन्तु उनमें जर्मन राष्ट्रवाद की भावना का अभाव था, जिसके कारण एकीकरण का मुद्दा उनके समक्ष नहीं था। वस्तुतः जर्मन एकीकरण की पृष्ठभूमि निर्माण का श्रेय नेपोलियन बोनापार्ट को दिया जाता है क्योंकि उसने 1806 ई० में जर्मन प्रदेशों को जीत कर राईन राज्य संघ का निर्माण किया था और यहीं से जर्मन राष्ट्रवाद की भावना धीरे-धीरे बढ़ने लगी थी।

इसी दौरान जर्मनी में बुद्धिजीवियों किसानों तथा कलाकारों जैसे हीगेल काण्ट, हम्बोल्ट, **अन्डर्ट, जैकब ग्रीम** आदि ने जर्मन राष्ट्रवाद को बढ़ावा दिया। **हीगल** ने ऐतिहासिक द्वंदवाद की व्याख्या करते हुए जर्मन राष्ट्रवाद के विकास में भूमिका निभाई। प्रशा का चांसलर विस्मार्क हीगेल के विचारों से, काफी प्रभावित था । अंडर्ट ने कविताओं के माध्यम से देशभक्ति जागृत की। हर्डेनवर्ग तथा नोवोलिस ने जर्मनी के गौरवमय अतीत को सामने रखा। चित्रकारों ने जर्मन संस्कृति को उजागर किया । उन्होंने नायक नायिकाओं की जीवंत चित्रों द्वारा भी राष्ट्रवाद को बढ़ावा दिया। इस प्रकार अब जर्मनी भी सामंतवादी व्यवस्था से पूरी तरह निकल कर आधुनिक युग में प्रवेश करने को तैयार हुआ। जर्मनी में राष्ट्रीय आन्दोलन में शिक्षण संस्थानों एवं विद्यार्थियों का भी योगदान था। शिक्षकों एवं विद्यार्थियों ने जर्मनी एकीकरण के उद्देश्य से ब्रूशेन शैफ्ट नामक सभा स्थापित की। वाइभर राज्य का येना विश्वविद्यालय राष्ट्रीय आन्दोलन का केन्द्र था। यद्यपि मेटरानिख ने इस आन्दोलन को कुचलने के लिए दमनकारी कानून कार्ल्सवाद के आदेश (Carlsbad Decrees) को जारी किया, परन्तु फिर भी जर्मनी के राष्ट्रीयता की प्रबल धारा प्रवाहित हो रही थी जिसने एकीकरण के काम को आगे बढ़ाने में सहायता प्रदान की।

इसी प्ररिपेक्ष्य में एकीकरण की आर्थिक परिस्थितियाँ भी निर्मित हो रही थीं। 1834 में जर्मन व्यापारियों ने आर्थिक व्यापारिक समानता के लिए प्रशा के नेतृत्व में **जालवेरिन** नामक आर्थिक संघ बनाया जिसके विषय में कहा जाता है कि उस संघ ने जर्मन क्षेत्रीय आदतों को कुचल कर राष्ट्रवादी प्रवृतियों को बढ़ावा दिया। इसके बावजूद जर्मन राष्ट्रवादी अभी तक संगठित नहीं

हो पाये थे। फ्रांस की 1830 की क्रांति ने जर्मन राष्ट्रवादी भावनाओं को कुछ हवा जरूर दी। सेक्सोनी, हनोवर आदि राज्यों में लोकतांत्रिक विद्रोह होने लगे थे परन्तु प्रशा और ऑस्ट्रिया ने मिलकर इसे कुचल डाला था।

1848 की फ्रांसीसी क्रांति ने जर्मन राष्ट्रवाद को एक बार फिर भड़का दिया। दूसरी तरफ इस क्रांति ने मेटरनिख के युग का अंत भी कर दिया था। इसी समय जर्मन राष्ट्रवादियों ने वान मार्च 1848 को पुराने संसद की सभा को फ्रैंकफर्ट में बुलाया। जहाँ यह निर्णय लिया गया कि प्रशा का शासक फ्रेडरिक विलियम जर्मन राष्ट्र का नेतृत्व करेगा और उसी के अधीन समस्त जर्मन राज्यों को एकीकृत किया जायेगा साथ ही लोकतांत्रिक वैधानिक राजत्व के शासन सिद्धान्त को अपनाया जायेगा। परन्तु फ्रेडरिक, जो एक निरंकुश एवं रूढ़िवादी विचार का शासक था, ने उस व्यवस्था को मानने से इंकार कर दिया। क्योंकि वह स्पष्ट रूप से ऑस्ट्रियाई संघर्ष से बचना चाहता था। जर्मनी के कुछ अन्य दक्षिणी राज्य भी एकीकरण के इस प्रस्ताव के विरोध में थे। इस गतिरोध से एकीकरण का मार्ग अवरूद्ध हो गया साथ ही जर्मन राज्यों में विद्रोह की स्थिति पैदा हो गयी जिसे ऑस्ट्रिया और प्रशा ने मिल कर दबा दिया।

प्रशा अब तक समझा चुका था कि जर्मनी का एकीकरण उसी के नेतृत्व में हो सकता है। इसलिए उसने अपनी सैन्य शक्ति बढ़ानी शुरू कर दी । इसी बीच फ्रेडरिक का देहान्त हो गया और उसका भाई विलियम प्रशा का शासक बना। विलियम राष्ट्रवादी विचारों का पोषक था। उसके सुधारों के फलस्वरूप जर्मनी में औद्योगिक क्रांति की हवा तेज हो गयी साथ ही आधारभूत संरचनाओं में भी काफी सुधार हुए। जिससे जर्मन राष्ट्रों को एकता के सूत्र में बांधने के प्रयास तेज हुए। विलियम ने एकीकरण के उद्देश्यों को ध्यान में रखकर महान कूटनीतिज्ञ विस्मार्क को अपना चांसलर नियुक्त किया।

बिस्मार्क :

बिस्मार्क जो जर्मन डायट में प्रशा का प्रतिनिधि हुआ करता था, प्रारम्भ से ही हीगेल के विचारों से प्रभावित था और जर्मन संसद (डायट) में अपनी सफल कूटनीति का लगातार परिचय देता आ रहा था। वह निरंकुश राजतंत्र का समर्थन करते हुए जर्मनी के एकीकरण के प्रयास में जुट गया। यह उसकी कूटनीतिक सफलता थी कि चाहे उदारवादी राष्ट्रवादी हों या कट्टरवादी राष्ट्रवादी सभी उसे अपने विचारों का समर्थक समझते थे। विस्मार्क जर्मन एकीकरण के लिए सैन्य शक्ति

के महत्व को समझता था। अत: इसके लिए उसने 'रक्त और लौह की नीति' का अवलम्बन किया। इसका तात्पर्य था कि सैन्य उपायों से ही जर्मनी का एकीकरण संभव था । उसने अपने देश में अनिवार्य सैन्य सेवा लागू कर दी । कालांतर में उसने 1830 के ऑस्ट्रिया-प्रशा संधि का विरोध करना शुरू किया । जिसमें प्रशा के नेतृत्व में जर्मनी का एकीकरण नहीं किया जाना था। इस कारण अब प्रशा के नेतृत्व में जर्मन एकीकरण की भावना जोर पकड़ने लगी।

बिस्मार्क

विस्मार्क ने अपनी नीतियों से प्रशा का सुदृढ़ीकरण किया और इस कारण प्रशा, ऑस्ट्रिया से किसी की मायने में कम नहीं रह गया। तब विस्मार्क ने ऑट्रिया के साथ मिलकर 1864 ई० में श्लेशविग और हॉलेस्टीन राज्यों के मुद्दे को लेकर डेनमार्क पर आक्रमण कर दिया। क्योंकि उन पर डेनमार्क का नियंत्रण था। जीत के बाद श्लेशविग प्रशा के अधीन हो गया और हॉलेस्टीन ऑस्ट्रिया को प्राप्त हुआ। चूँकि इन दोनो राज्यों में जर्मनों की संख्या अधिक थी अत: प्रशा ने जर्मन राष्ट्रवादी भावनाओं को भड़का कर विद्रोह फैला दिया। जिसे कुचलने के लिए ऑस्ट्रिया की सेना को प्रशा के क्षेत्र को पार करते हुए जाना था और प्रशा ने ऑस्ट्रिया को ऐसा करने से रोक दिया।

यद्यपि विस्मार्क की नीति के अंतर्गत ऑस्ट्रिया से युद्ध करना अवश्यम्भावी था, परन्तु, वह ऑस्ट्रिया को आक्रमणकारी साबित करना चाहता था। अत: पूर्व में ही उसने फ्रांस से समझौता कर लिया था कि ऑस्ट्रिया-प्रशा युद्ध में फ्रांस तटस्थ रहे। इसके लिए उसने फ्रांस को कुछ क्षेत्र भी देने का वादा किया। विस्मार्क ने इटली के शासक विक्टर इमैनुएल से भी संधि कर ली जिसके अनुसार ऑस्ट्रिया-प्रशा युद्ध में इटली ऑस्ट्रियाई क्षेत्रों पर आक्रमण कर देगा। अंतत: अपने अपमान से क्षुब्ध ऑस्ट्रिया ने 1866 ई० में प्रशा के खिलाफ **सेडोवा** में युद्ध की घोषणा कर दी और ऑस्ट्रिया दोनो तरफ से युद्ध में फँस कर वह बुरी तरह पराजित हो गया इस तरह ऑस्ट्रिया का जर्मन क्षेत्रों पर से प्रभाव समाप्त हो गया और इस तरह जर्मन एकीकरण का दो तिहाई कार्य पूरा हो गया।

शेष जर्मनी के एकीकरण के लिए फ्रांस के साथ युद्ध करना आवश्यक था। क्योंकि जर्मनी के दक्षिणी रियासतों के मामले में फ्रांस हस्तक्षेप कर सकता था। इसी समय स्पेन की राजगद्दी का मामला उभर गया। जिस पर प्रशा के राजकुमार की स्वभाविक दावेदारी थी। परन्तु फ्रांस ने इस दावेदारी का खुलकर विरोध किया और प्रशा से इस संदर्भ में एक लिखित वादा मांगा। विस्मार्क ने इस बात को तोड़-मरोड़ कर प्रेस में जारी कर दिया। फलस्वरूप जर्मन राष्ट्रवादियों ने इसका खुल कर विरोध करना शुरू कर दिया। इससे चिढ़ कर 19 जून 1870 को फ्रांस के शासक नेपोलियन ने प्रशा के खिलाफ युद्ध की घोषणा कर दी और **सेडॉन** की लड़ाई में फ्रांसीसियों की जबर्दस्त हार हुई। तदुपरांत 10 मई 1871 को फ्रैंकफर्ट की संधि द्वारा दोनो राष्ट्रों के बीच शांति स्थापित हुई। इस प्रकार सेडॉन के युद्ध में ही एक महाशक्ति के पतन पर दूसरी महाशक्ति जर्मनी का उदय हुआ। अंततोगत्वा जर्मनी 1871 तक एक एकीकृत राष्ट्र के रूप में यूरोप के राजनैतिक मानचित्र में स्थान पाया।

इस प्रकार राष्ट्रवाद ने सिर्फ दो बड़े राज्यों के उदय को ही सुनिश्चित नहीं किया बल्कि अन्य यूरोपीय राष्ट्रों में भी इसके कारण राजनैतिक उथल-पुथल शुरू हुए। वस्तुतः इसके मूल में राष्ट्रीयता की भावना एवं लोकतांत्रिक विचारो का उदय था। **हंगरी बोहेमिया** तथा **यूनान** में स्वतंत्रता आन्दोलन इसी राष्ट्रवाद का परिणाम था। इसी के प्रभाव ने **ऑटोमन** साम्राज्य के पतन की कहानी को अंतिम रूप दिया। बालकन क्षेत्र में राष्ट्रवाद के प्रसार ने स्लाव जाति को संगठित कर सर्बिया को जन्म दिया।

यूनान में राष्ट्रीयता का उदय :-

इसी संदर्भ में यूनानी राष्ट्रीय आन्दोलन को देखा जा सकता है। यूनान का अपना गौरवमयी अतीत रहा है। जिसके कारण उसे पाश्चात्य का मुख्य स्रोत माना जाता था। यूनानी सभ्यता की साहित्यिक प्रगति, विचार, दर्शन, कला, चिकित्सा विज्ञान आदि क्षेत्र की उपलब्धियाँ यूनानियों के लिए प्रेरणास्रोत थे। पुनर्जागरण के काल में इनसे प्रेरणा लेकर पाश्चात्य देशों ने अपनी तरक्की शुरू की। परन्तु इसके बावजूद भी यूनान तुर्की साम्राज्य के अधीन था।

फ्रांसीसी क्रांति से यूनानियों में राष्ट्रीयता की भावना की लहर जागी। क्योंकि धर्म, जाति और संस्कृति के आधार पर इनकी पहचान एक थी। फलतः तुर्की शासन से स्वयं को अलग करने के लिए आन्दोलन चलाये जाने लगे। इसके लिए

इसाई जगत ग्रीक आर्थोडॉक्स तथा रोमन कैथोलिक चर्च में विभक्त था । रूस तथा यूनान के लोग ग्रीक अर्थोडॉक्स चर्च के मानने वाले थे ।

इन्होने हितेरिया फिलाइक *(Hetairia Philike)* नामक संस्था की स्थापना ओडेसा नामक स्थान पर की। इसका उद्देश्य तुर्की शासन को यूनान से निष्कासित कर उसे स्वतंत्र बनाना था। क्रांति के नेतृत्व के लिए यूनान में शक्तिशाली मध्यम वर्ग का भी उदय हो चुका था।

यूनान सारे यूरोप वासियों के लिए प्रेरणा एवं सम्मान का पर्याय था। जिसकी स्वतंत्रता के लिए समस्त यूरोप के नागरिक अपनी सरकार की तटस्थता के बावजूद भी उद्यत थे । इंग्लैंड का महान कवि **लार्ड बायरन** यूनानियों की स्वतंत्रता के लिए यूनान में ही शहीद हो गया। इससे यूनान की स्वतंत्रता के लिए सम्पूर्ण यूरोप में सहानुभूति की लहर दौड़ने लगी। इधर रूस भी अपनी साम्राज्यवादी महत्त्वाकांक्षा तथा धार्मिक एकता के कारण यूनान की स्वतंत्रता का पक्षधर था।

यूनान में विस्फोटक स्थिति तब और बन गई जब तुर्की शासकों द्वारा यूनानी स्वतंत्रता संग्राम में संलग्न लोगों को बुरी तरह कुचलना शुरू किया गया। 1821 ई० में अलेक्जेंडर चिपसिलांटी के नेतृत्व में यूनान में विद्रोह शुरू हो गया। रूस का जार अलेक्जेंडर व्यक्तिगत रूप से तो यूनानी राष्ट्रीयता के पक्ष में था परन्तु ऑस्ट्रिया के प्रतिक्रियावादी शासक मेटरनिख के दबाव के कारण खुल कर सामने नहीं आ पा रहा था। जब नया जार निकोलस आया तो उसने खुल कर यूनानियों का समर्थन किया। अप्रैल 1826 ई० में ग्रेट ब्रिटेन और रूस में एक समझौता हुआ कि वे तुर्की–यूनान विवाद में मध्यस्थता करेंगें। फ्रांस का राजा चार्ल्स X भी यूनानी स्वतंत्रता में दिलचस्पी लेने लगा। 1827 में लंदन में एक सम्मेलन हुआ जिसमें इंग्लैंड, फ्रांस तथा रूस ने मिलकर तुर्की के खिलाफ तथा यूनान के समर्थन में संयुक्त कार्यवाही करने का निर्णय लिया। इस प्रकार तीनो देशों की संयुक्त सेना नावारिनो की खाड़ी में तुर्की के खिलाफ एकत्र हुई। तुर्की के समर्थन में सिर्फ मिस्र की सेना ही आयी। युद्ध में मिस्र और तुर्की की सेना बुरी तरह पराजित हुई और अंततः 1829 ई० में एड्रियानोपल की संधि हुई। जिसके तहत तुर्की की नाममात्र की प्रभुता में यूनान को स्वायत्तता देने की बात तय हुई। परन्तु यूनानी राष्ट्रवादियों ने संधि की बातों को मानने से इंकार कर दिया। उधर इंग्लैंड तथा फ्रांस भी यूनान पर रूस के प्रभाव की अपेक्षा इसे स्वतंत्र देश बनाना बेहतर मानते थे। फलतः 1832 में यूनान को एक स्वतंत्र राष्ट्र घोषित कर दिया गया। बवेरिया के शासक 'ओटो' को स्वतंत्र यूनान का राजा घोषित किया गया। इस तरह यूनान पर से रूस का प्रभाव भी जाता रहा।

हंगरी :

राष्ट्रवादी भावना के प्रसार का रूप हंगरी में भी नजर आता है। हंगरी पर आस्ट्रिया का पूर्ण प्रभुत्व था। 1848 की क्रांति के प्रभाव से यहाँ भी राष्ट्रीय आन्दोलन की शुरूआत हुई। जहाँ

आन्दोलन का नेतृत्व **'कोसूथ'** तथा **'फ्रांसिस डिक'** नामक क्रांतिकारी के द्वारा किया जा रहा था। कोसूथ लोकतंत्रिक विचारों का समर्थक था उसने वर्गहीन समाज *(Classless Society)* की अपने विचारों को जनता तक पहुँचाना शुरू किया, जिस पर प्रतिबंध लगा दिया गया। फ्रांस में लुई फिलिप के पतन का हंगरी के राष्ट्रवादी आन्दोलन पर विशेष प्रभाव पड़ा । कोसूथ ने आस्ट्रियाई आधिपत्य का विरोध करना शुरू किया तथा व्यवस्था में बदलाव की मांग करने लगा। इसका प्रभाव हंगरी तथा ऑस्ट्रिया दोनो देशों की जनता पर पड़ा। जिसके कारण यहाँ राष्ट्रीयता के पक्ष में आन्दोलन शुरू हो गए। अंततः 31 मार्च 1848 ई० को ऑस्ट्रिया की सरकार ने हंगरी की कई बातें मान ली। जिसके अनुसार स्वतंत्र मंत्रिपरिषद की मांग स्वीकार की गई । इसमें केवल हंगरी के सदस्य ही सम्मिलित किए गए। प्रेस को स्वतंत्रता दी गई तथा राष्ट्रीय सुरक्षा सेना की स्थापना की गई। सामंती प्रथा समाप्त कर दी गई तथा प्रतिनिंधि सभा (डायट) की बैठक प्रतिवर्ष राजधानी बुडापेस्ट में बुलाने की बात स्वीकार की गई। इस प्रकार इन आन्दोलनों ने हंगरी को राष्ट्रीय अस्मिता प्रदान की।

पोलैंड :

पोलैंड में भी राष्ट्रवादी भावना के कारण रूसी शासन के विरूद्ध विद्रोह शुरू हो गए। 1830 ई० की क्रांति का प्रभाव यहाँ के उदारवादियों पर भी व्यापक रूप से पड़ा थां परन्तु इन्हें इंग्लैंड तथा फ्रांस की सहायता नहीं मिल सकी। अतः इस समय रूस ने पोलैंड के विद्रोह को कुचल दिया।

बोहेमिया :

बोहेमिया जो आस्ट्रियाई शासन के अंतर्गत था में भी हंगरी के घटनाक्रम का प्रभाव पड़ा। बोहेमिया की बहुसंख्यक चैक जाति की स्वायत्त शासन की मांग को स्वीकार किया गया परन्तु आन्दोलन ने हिंसात्मक रूप धारण कर लिया। जिसके कारण आस्ट्रिया द्वारा क्रांतिकारियों का सख्ती से दमन कर दिया गया। इस प्रकार बोहेमिया में होने वाले क्रांतिकारी आन्दोलन की उपलब्धियाँ स्थायी न रह सकीं।

परिणाम :

यूरोप में राष्ट्रीयता की भावना का विकास तो फ्रांसीसी क्रांति के गर्भ से ही आरम्भ हुआ, जो मूर्त्त रूप में यूरोपीय राज्यों के एकीकरण के रूप में सामने आया। फलस्वरूप कई बड़े एवं

छोटे राष्ट्रों का उदय हुआ। राष्ट्रवादी प्रवृतियों का नकारात्मक पक्ष 19 वीं शताब्दी के अंतिम उत्तरार्द्ध तक 'संकीर्ण राष्ट्रवाद' के रूप में उभर कर सामने आया। प्रत्येक राष्ट्र की जनता और शासक के लिए उनका राष्ट्र ही सब कुछ हो गया। इसके लिए वे किसी हद तक जाने के लिए तैयार रहने लगे। इसके परिणमस्वरूप बाल्कन क्षेत्र के छोटे-छोटे राज्यों एवं जातीय समूहों में भी यह भावना जोर पकड़ने लगी। दूसरी तरफ बड़े यूरोपीय राज्यों यथा, जर्मनी, इटली, फ्रांस, इंग्लैंड जैसे देशों में राष्ट्रवाद की भावना इतनी बढ़ गई कि उनमें साम्राज्यवादी प्रवृतियों का प्रादुर्भाव होने लगा। हालाँकि इन साम्राज्यवादी प्रवृतियों के लिए यूरोप में होने वाली औद्योगिक क्रांति उतनी ही जिम्मेवार थी जितने कि अन्य कारण थे। इस प्रवृति ने सर्वप्रथम एशियाई एवं अफ्रीकी देशों को अपना निशाना बनाया। जहाँ यूरोपीय देशों ने अपने उपनिवेश स्थापित किये। इन उपनिवेशों के शोषण पर ही औद्योगिक क्रांति की आधारशिला टिकी थी। इस साम्राज्यवादी प्रवृति के कारण ही ऑटोमन साम्राज्य **ध्वस्त** हुआ और पूरा बाल्कन क्षेत्र युद्ध का अखाड़ा बन गया।

यूरोप में राष्ट्रवाद के इस प्रादुर्भाव ने यूरोप ही नहीं वरनृ पूरे विश्व को जागरूक बनाया। जिसके कारण अफ्रीकी एवं एशियाई उपनिवेशों में विदेशी सत्ता के खिलाफ मुक्ति के लिए राष्ट्रीयता की लहर उपजी। इसी परिप्रेक्ष्य में भारत में भी यूरोपीय राष्ट्रवाद के संदेश पहुँचने शुरू हो चुके थे। मैसूर का शासक टीपू सुल्तान स्वयं 1789 की फ्रांसीसी क्रांति से काफी प्रभावित था। इसी प्रभाव में उसने भी जैकोबिन क्लब की स्थापना करवाई तथा स्वयं उसका सदस्य बना। यह भी कहा जाता है कि उसने श्रीरंगपट्टम में ही स्वतंत्रता का प्रतीक 'वृक्ष' भी लगवाया था। दूसरी तरफ 19 वीं शताब्दी में चलने वाले सामाजिक धार्मिक सुधार आन्दोलनों के नेताओं ने भी भारत में राष्ट्रीय चेतना को जगाना शुरू किया। उदाहरणस्वरूप राजाराम मोहन राय स्वयं अंतर्राष्ट्रीय घटनाओं में काफी रूचि लेते थे। उन्होने स्वतंत्रता, जनवाद एवं राष्ट्रवाद संबधी अपने विचारों के कारण ही 1821 ई० की नेपल्स की क्रांति की विफलता पर काफी दुःख प्रकट किया एवं 1823 ई० की स्पेनिश स्वतंत्रता आन्दोलन की सफलता पर उत्सव भोज दिया। कालांतर में भारत में 1857 की क्रांति से ही राष्ट्रीयता के तत्व नजर आने लगे थे।

इस प्रकार यूरोप में जन्मी राष्ट्रीयता की भावना ने प्रथमतः यूरोप को एवं अंततः पूरे विश्व को प्रभावित किया। जिसके फलस्वरूप यूरोप के राजनैतिक मानचित्र में बदलाव तो आया ही साथ-साथ कई उपनिवेश भी स्वतंत्र हुए।

अभ्यास

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

नीचे दिये गए प्रश्नों के उत्तर रूप में चार विकल्प दिये गए हैं। जो आपके सर्वाधिक उपयुक्त लगे उनमें सही का चिन्ह लगावें।

(1) इटली एवं जर्मनी वर्तमान में किस महादेश के अंतर्गत आते है?

(क) उत्तरी अमेरिका (ख) दक्षिणी अमेरिका

(ग) यूरोप (घ) पश्चिमी एशिया

(2) फ्रांस में किस शासक वंश की पुर्नस्थापना वियना कांग्रेस द्वारा की गई थी?

(क) हैब्सबर्ग (ख) ऑर्लिया वंश

(ग) बूर्बो वंश (घ) जार शाही

(3) मेजनी का सम्बंध किस संगठन से था?

(क) लाल सेना (ख) कर्बोनरी

(ग) फिलिक हेटारिया (घ) डायट

(4) इटली एवं जर्मनी के एकीकरण के विरूद्ध निम्न में कौन था?

(क) इंग्लैण्ड (ख) रूस

(ग) ऑस्ट्रिया (घ) प्रशा

(5) 'काउंट काबूर' को विक्टर इमैनुएल ने किस पद पर नियुक्त किया?

(क) सेनापति (ख) फ्रांस में राजदूत

(ग) प्रधानमंत्री (घ) गृहमंत्री

(6) गैरीवाल्डी पेशे से क्या था?

(क) सिपाही (ख) किसान

(ग) जमिन्दार (घ) नाविक

(7) जर्मन राईन राज्य का निर्माण किसने किया था?

(क) लुई 18वां (ख) नेपोलियन बोनापार्ट

(ग) नेपोलियन III (घ) विस्मार्क

(8) ''जालवेरिन'' एक संस्था थी?

(क) क्रांतिकारियों की (ख) व्यापारियों की

(ग) विद्वानों की (घ) पादरी सामंतो की

(9) ''रक्त एवं लौह'' की नीति का अवलम्बन किसने किया था?

(क) मेजनी (ख) हिटलर

(ग) विस्मार्क (घ) विलियम–I

(10) फ्रैंकफर्ट की संधि कब हुई ?

(क) 1864 (ख) 1866

(ग) 1870 (घ) 1871

(11) यूरोप वासियों के लिए किस देश का साहित्य एवं ज्ञान-विज्ञान प्रेरणास्त्रोत रहा?

(क) जर्मनी (ख) यूनान

(ग) तुर्की (घ) इंग्लैंड

(12) 1829 ई० की एड्रियानोपुल की संधि किस देश के साथ हुई ?

(क) तुर्की (ख) यूनान

(ग) हंगरी (घ) पोलैंड

निम्नलिखित में रिक्त स्थानो को भरे:-

1. .... के युद्ध में ही एक महाशक्ति के पतन पर दूसरी यूरोपीय महाशक्ति जर्मनी का जन्म हुआ था।
2. सेडोवा का युद्ध .... और .... के बीच हुआ था।
3. 1848 ई० की फ्रांसीसी क्रांति ने .... युग का भी अंत कर दया।
4. बेटिकन सिटी के राजमहल जहाँ .... रहते थे जो इटली के .... से बचा रहा।
5. यूनान को एक स्वतंत्र राष्ट्र घोषित करने के बाद बवेरिया के शासक .... को वहाँ का राजा घोषित किया गया।
6. हंगरी की राजधानी .... है।

निम्नलिखित सूहों का मिलान करें:-

(i)

समुह 'अ'	समुह 'ब'
1. मेजनी	(क) दार्शनिक
2. हीगेल	(ख) इटली
3. विस्मार्क	(ग) राजनीतिज्ञ
4. विक्टर इमैनुएल	(घ) जर्मन चांसलर

(II)

समुह 'अ'	समुह 'ब'
1. वियना सम्मेलन	(क) 1871 ई०
2. मेटरनिक का पतन	(ख) 1870 ई०
3. इटली एकीकरण	(ग) 1848 ई०
4. सेडना युद्ध	(घ) 1815 ई०

(III)

समुह 'अ'	समुह 'ब'
1. कोसुथ	(क) 1863 ई०
2. एड्रियानोपल की संधी	(ख) हगंरियन राष्ट्रवादी नेता
3. यूनान की स्वतंत्रता	(ग) 1829 ई०
4. पोलैण्ड में आन्दोलन	(घ) 1832 ई०

अतिलघु उत्तरीय प्रश्न:- (20 शब्दो में उत्तर दें)

1. राष्ट्रवाद क्या है?
2. मेजनी कौन था?
3. जमर्नी के एकीकरण की बाधाएँ क्या थीं?
4. मेटरनिख युग क्या है?

लघु उत्तरीय प्रश्नः- (60 लगभग शब्दो में उत्तर दें)

1. 1848 के फ्रांसीसी क्रांति के कारण क्या थें?
2. इटली, जर्मनी के एकीकरण में ऑस्ट्रिया की भूमिका क्या थी?
3. यूरोप में राष्ट्रवाद को फैलाने में नेपोलियन बोनापार्ट किस तरह सहायक हुआ?
4. गैरीबाल्डी के कार्यो की चर्चा करे?
5. विलियम I के बगैर जर्मनी का एकीकरण विस्मार्क के लिए असंभव था कैसे?

दीर्घ उत्तरीय प्रश्नः- (लगभग 150 शब्दों में उत्तर दें)

1. इटली के एकीकरण में मेजिनी, काबुर और गैरीबाल्डी के योगदानों को बतावे?
2. जमर्नी के एकीकरण में विस्मार्क की भूमिका का वर्णन करें ?
3. राष्ट्रवाद के उदय के कारणों एवं प्रभाव की चर्चा करे?
4. जुलाई 1830 की क्रांति का विवरण दें?
5. यूनानी स्वतंत्रता आन्दोलन का संक्षिप्त विवरण दें?

वर्ग परिचर्चा

1. राष्ट्रवाद के कारण यूरोप के मानचित्र में आये बदलाव का अध्ययन करें।
2. शिक्षक के साथ राष्ट्रवाद के विकास की परिचर्चा कर पूरे विश्व में इसके प्रसार को समझाऐं।

इकाई : 2

समाजवाद एवं साम्यवाद

समाजवाद एक ऐसी विचारधारा है जिसने आधुनिक काल में समाज को एक नया आयाम दिया। उन्नीसवीं शताब्दी में औद्योगिक क्रांति के फलस्वरूप समाज में पूँजीपति वर्गों द्वारा मजदूरों का लगातार शोषण अपने चरमोत्कर्ष पर था। उन्हें इस शोषण के विरुद्ध आवाज उठाने तथा वर्ग विहीन समाज की स्थापना करने में समाजवादी विचारधारा ने अग्रणी भूमिका अदा की। समाजवाद उत्पादन में मुख्यत: निजी स्वामित्व की जगह सामूहिक स्वामित्व या धन के समान वितरण पर जोर देता है। यह एक शोषण उन्मुक्त समाज की स्थापना चाहता है। अत: समाजवादी व्यवस्था एक ऐसी अर्थव्यवस्था है जिसके अन्तर्गत उत्पादन के सभी साधनों, कारखानों तथा विपणन में सरकार का एकाधिकार हो। ऐसी व्यवस्था में उत्पादन निजी लाभ के लिए न होकर सारे समाज के लिए होता है।

समाजवाद की उत्पत्ति :

समाजवादी भावना का उदय मूलत: 18 वीं शताब्दी में औद्योगिक क्रांति के फलस्वरूप हुआ था। औद्योगिक क्रांति ने सभी देशों की आर्थिक व्यवस्था में आमूल परिवर्तन कर दिया था। कुटीर उद्योग धंधों के स्थान पर विशाल पैमाने पर बड़े उद्योगों के मशीनीकरण तथा पूँजीवादी भावना के विकास के फलस्वरूप यूरोप के विभिन्न देशों में धीरे-धीरे पूँजीपतियों के निहित स्वार्थों और मिल-मालिकों की श्रमिक विरोधी नीतियों के कारण सभी देशों के श्रमिकों का जीवन नारकीय बन गया था। उनकी आर्थिक और सामाजिक स्थिति निरन्तर गिरने लगी थी। श्रमिकों को कोई अधिकार नहीं था और उनका क्रूर शोषण हो रहा था।

इस प्रकार औद्योगिक क्रांति से प्रभावित देशों में दो परस्पर विरोधी तथ्य एक साथ दिखाई पड़ रहे थे। प्रथम, पूँजीवादी व्यवस्था दिन-प्रतिदिन मजबूत होती जा रही थी। मध्यम वर्ग आर्थिक

दृष्टि से निरन्तर समृद्धशाली होता जा रहा था। द्वितीय, श्रमिकों की आर्थिक स्थिति का तेजी से पतन हो रहा था। इस प्रकार उत्पादन की प्रक्रिया का एक महत्वपूर्ण घटक भूखे मरने का बाध्य था। मजदूरों को अपने श्रम-संगठन बनाने का भी अधिकार नहीं था। मजदूर वर्ग पूरी तरह पूँजीपतियो की दया पर जीवित था। इस प्रकार कहा जा सकता है कि आर्थिक दृष्टि से समाज का विभाजन दो वर्गों में हो गया था-

(1) पूँजीपति वर्ग (2) श्रमिक वर्ग

जिस समय श्रमिक जगत आर्थिक दुर्दशा और सामाजिक पतन की स्थिति से गुजर रहा था, उसी समय श्रमिकों को कुछ महत्वपूर्ण राष्ट्र-भक्तों, विचारकों और लेखकों का मार्गदर्शन प्राप्त हुआ। इन व्यक्तियों ने सामाजिक और आर्थिक क्षेत्र में एक नवीन विचारधारा का प्रतिपादन किया जिसे 'समाजवाद' के नाम से जाता है। इन विचारकों में सेन्ट साइमन, फौरियर, लुई ब्लां, राबर्ट ओवन, कार्ल मार्क्स एवं एंगेल्स का नाम विशेष उल्लेखनीय है। इन महान विचारकों ने यूरोपीय देशों में प्रचलित आर्थिक व्यवस्था की कड़ी आलोचना की तथा औद्योगिक संगठन और पूँजीपतियों एवं श्रमिकों के पारस्परिक सम्बन्धों के विषय में नवीन सिद्धांतों का प्रतिपादन किया।

ऐतिहासिक दृष्टि से आधुनिक समाजवाद का विभाजन दो चरणों में किया जाता है - मार्क्स से पूर्व का समाजवाद एवं मार्क्स के पश्चात् का समाजवाद। मार्क्सवादी विचारकों ने इन्हें क्रमशः यूटोपियन एवं वैज्ञानिक समाजवाद का नाम दिया। यूटोपियन समाजवादियों की दृष्टि आदर्शवादी थी तथा उनके कार्यक्रम की प्रकृति अव्यवहारिक थी। अधिकतर यूटोपियन विचारक फ्रांसीसी थे जो क्रांति के बदले शांतिपूर्ण परिवर्तन में विश्वास रखते थे अर्थात वे वर्ग संघर्ष के बदले वर्ग समन्वय के हिमायती थे।

यूटोपियन समाजवादी :

प्रथम यूटोपियन (स्वप्नदर्शी) समाजवादी, जिसने समाजवादी विचारधारा के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई, एक फ्रांसीसी विचारक सेंट साइमन था। उसका मानना था कि राज्य एवं समाज को इस ढंग से संगठित करना चाहिए कि लोग एक दूसरे का शोषण करने के बदले मिलजुल कर प्रकृति का दोहन करें, समाज को निर्धन वर्ग के भौतिक एवं नैतिक उत्थान के लिए कार्य करना चाहिए। उसने घोषित किया 'प्रत्येक को उसकी क्षमता के अनुसार तथा प्रत्येक को उसके कार्य के अनुसार'। आगे यही समाजवाद का मूलभूत नारा बन गया।

एक अन्य महत्वपूर्ण यूटोपियन विचारक चार्ल्स फौरियर था। वह आधुनिक औद्योगिकवाद

का विरोधी था तथा उसका मानना था कि श्रमिकों को छोटे नगर अथवा कस्बों में काम करना चाहिए। उसने किसानों के लिए एक फ्लांग्स बनाए जाने की योजना रखी। परन्तु यह योजना असफल हुई।

फ्रांसीसी यूटोपियन चिंतकों में एकमात्र व्यक्ति जिसने राजनीति में भी हिस्सा लिया, लुई ब्लां था। उसके सुधार कार्यक्रम अधिक व्यावहारिक थे। उसका मानना था कि आर्थिक सुधारों को प्रभावकारी बनाने के लिए पहले राजनीतिक सुधार आवश्यक है।

फ्रांस से बाहर सबसे महत्वपूर्ण यूटोपियन चिन्तक ब्रिटिश उद्योगपति राबर्ट ओवन था। उसने स्कॉटलैण्ड के न्यू लूनार्क नामक स्थान पर एक फैक्ट्री की स्थापना की थी। इस फैक्ट्री में उसने श्रमिकों को अच्छी वैतनिक सुविधाएँ प्रदान की और फिर उसने ऐसा महसूस किया कि मुनाफा कम होने के **बजाय** और बढ़ गया था। अतः वह इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि संतुष्ट श्रमिक ही वास्तविक श्रमिक है।

राबर्ट ओवन

परंतु उपर्युक्त चिंतकों ने प्रबुद्ध चिन्तकों की तरह मानव की मूलभूत अच्छाई एवं जगत की पूर्णता में विश्वास किया। इन्होंने वर्ग संघर्ष के बदले वर्ग समन्वय पर बल दिया। फिर भी, इन चिंतकों का अपना योगदान है। प्रथम, ये आरंभिक चिंतक हैं जिन्होंने पूँजी और श्रम के बीच संबंधों की समस्या का निराकरण करने का प्रयास किया। **द्वितीय**, मार्क्स ने इनकी विफलता से सबस लिया और फिर वह इनसे आगे बढ़ गया।

कार्ल मार्क्स (1818–1883) :

कार्ल मार्क्स का जन्म 5 मई, 1818 ई० को जर्मनी में राइन प्रांत के ट्रियर नगर में एक यहूदी परिवार में हुआ था। कार्ल मार्क्स के पिता हेनरिक मार्क्स एक प्रसिद्ध वकील थे, जिन्होंने बाद में चलकर ईसाई धर्म ग्रहण कर लिया था। मार्क्स ने बोन विश्वविद्यालय में विधि की शिक्षा ग्रहण की परन्तु 1836 में वे बर्लिन विश्वविद्यलय चले आये, जहाँ उनके जीवन को एक नया मोड़ मिला। मार्क्स हीगल के विचारों से प्रभावित था। 1843 में उसने बचपन की मित्र जेनी
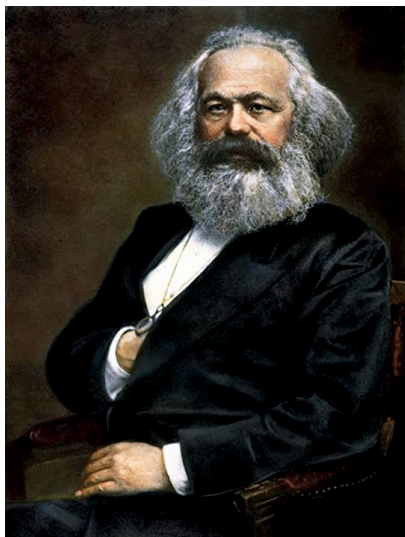
कार्ल मार्क्स

से विवाह किया । उसने राजनीतिक एवं सामाजिक इतिहास पर माण्टेस्क्यू तथा रूसो के विचारों का गहन अध्ययन किया। कार्ल मार्क्स की मुलाकात पेरिस में 1844 ई० में फ्रेडरिक एंगेल्स से हुई जिससे जीवन भर उसकी गहरी मित्रता बनी रही। एंगेल्स के विचारों एवं रचनाओं से प्रभावित होकर मार्क्स ने भी श्रमिक वर्ग के कष्टों एवं उसकी कार्य की दशाओं पर गहन विचार करना आरंभ कर दिया। मार्क्स ने एंगेल्स के साथ मिलकर 1848 ई० में एक 'साम्यवादी घोषणा पत्र' प्रकाशित किया जिसे आधुनिक समाजवाद का जनक कहा जाता है। उपर्युक्त घोषणा पत्र में मार्क्स ने अपने आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक विचारों को स्पष्ट रूप से व्यक्त किया है। मार्क्स विश्व के उन गिने-चुने चिंतकों में एक है, जिसने इतिहास की धारा को व्यापक रूप से प्रभावित किया है। मार्क्स ने 1867 ई० में 'दास-कैपिटल' नामक पुस्तक की रचना की जिसे '' समाजवादियों की बाइबिल'' कहा जाता है।

मार्क्स के सिद्धांत :

1. द्वंद्वात्मक भौतिकवाद का सिद्धांत
2. वर्ग-संघर्ष का सिद्धांत
3. इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या
4. मूल्य एवं अतिरिक्त मूल्य का सिद्धांत
5. राज्यहीन व वर्गहीन समाज की स्थापना

ऐतिहासिक भौतिकवाद :

कार्ल मार्क्स के द्वारा इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या प्रस्तुत की गई। उसने कहा कि इतिहास उत्पादनल के साधन पर नियंत्रण के लिए दो वर्गों के बीज चल रहे निरंतर संघर्ष की कहानी है। उसके अनुसार इतिहास की प्रत्येक घटना एवं परिवर्त्तन के मूल में आर्थिक शक्तियाँ हैं। उत्पादन प्रणाली के प्रत्येक परिवर्त्तन के साथ सामाजिक संगठन में भी परिवर्त्तन हुआ। इतिहास

के पाँच चरण अब तक दृष्टिगोचर है और छठा चरण आने वाला है। इस प्रकार कार्ल मार्क्स के अनुसार निम्नलिखित छः ऐतिहासिक चरण हैं।

(i) आदिम साम्यवादी युग (Age of Primitive Communism)

(ii) दासता का युग (Slave age)

(iii) सामन्ती युग (Feudal age)

(iv) पूँजीवादी युग (Capilalist age)

(v) समाजवादी युग (Socialist age)

(vi) साम्यवादी युग (Communist age)

मार्क्स तथा प्रथम अंतरराष्ट्रीय संघ :

समाजवादी आंदोलन के इतिहास की एक अत्यंत महत्वपूर्ण घटना थी–1864 में प्रथम अंतरराष्ट्रीय संघ (First International) की स्थापना। इस संघ की स्थापना का श्रेय मार्क्स को है। अपने उद्घाटन भाषण में मार्क्स ने मजदूरों को महत्वपूर्ण बात समझाने की चेस्टा की और कहा कि वे अपनी मुक्ति स्वयं ही और अपने प्रयत्नों द्वारा ही प्राप्त कर सकते हैं। जब तक कि उत्पादन के साधनों का स्वामित्व व्यक्तिगत हाथों में है, तब तक मशीनों का सुधार, उद्योग में विज्ञान के प्रयोग और उत्पादन कला में किसी भी सुधार से श्रमिकों की स्थिति में कोई सुधार नहीं हो सकता इसलिए उनका अंतिम लक्ष्य पूँजीवाद का विनाश होना चाहिए। इस सम्मेलन में नारा बुलंद किया गया– 'अधिकार के बिना कर्त्तव्य नहीं और कर्त्तव्य के बिना अधिकार नहीं'।

द्वितीय अंतरराष्ट्रीय संघ (Second international) :

विभिन्न देशों के समाजवादी दलों को एक अंतरराष्ट्रीय संगठन के तहत सूत्रबद्ध करने के लिए 14 जुलाई 1889 को पेरिस में एक सम्मेलन हुआ, जिसमें बीस देशों के 400 प्रतिनिधियों ने भाग लिया। इसे द्वितीय अंतरराष्ट्रीय संघ के नाम से जाना जाता है। इस संघ की स्थापना मार्क्सवादी समाजवाद के तेजी से फैलने का द्योतक था। इस सम्मेलन में यह निर्णय लिया गया

कि प्रत्येक वर्ष एक मई का दिन मजदूर वर्ग की एकता दिवस के रूप में मनाया जायेगा। मजदूरों के लिए आठ घंटे के कार्य-दिवस की माँग किया जाना भी तय किया गया। इसका अंतरराष्ट्रीय सचिवालय ब्रूसेल्स में स्थापित किया, तब से 1 मई 1890 को सारे यूरोप और अमेरिका में लाखों मजदूरों ने हड़ताल और प्रदर्शन किया, तब से 1 मई, अंतरराष्ट्रीय मजदूर दिवस के रूप में सारे संसार में मनाया जाता है। द्वितीय अंतरराष्ट्रीय संघ की सबसे बड़ी उपलब्धि थी - सैन्यवाद एवं युद्ध के विरुद्ध आंदोलन तथा सभी राष्ट्रों की बुनियादी समानता तथा राष्ट्रीय स्वतंत्रता के उनके अधिकार पर जोर।

इस प्रकार समाजवादी आंदोलन को अंतरराष्ट्रीय स्तर पर एक मजबूत आधार मिलने पर श्रमिकों में विश्वास एवं इस आशा का संचार हुआ कि इतिहास उनकी तरफ है तथा भविष्य में एक ऐसे संसार का निर्माण होना है, जो शोषण एवं उत्पीड़न से मुक्त होगा।

जार निकोलस II

1917 की बोल्शेविक क्रांति :

बीसवीं शताब्दी के इतिहास की एक महत्वपूर्ण घटना रूस की क्रांति थी। इस क्रांति ने रूस के सम्राट अथवा जार के एकतंत्रीय निरंकुश शासन का अंत कर मात्र लोकतंत्र की स्थापना का ही प्रयत्न नहीं किया, अपितु सामाजिक, आर्थिक और व्यावसायिक क्षेत्रों में कुलीनों, पूँजीपतियों और जमींदारों की शक्ति का अंत किया तथा मजदूरों और किसानों की सत्ता को स्थापित किया।

रूस की बोल्शेविक क्रांति सही मायने में नवंबर 1917 ई० में सम्पन्न हुई। इस क्रांति ने एक नई राजनीतिक, सामाजिक व्यवस्था-साम्यवाद-का आदर्श उपस्थित करने के साथ-साथ विश्व में सर्वप्रथम सर्वहारा वर्ग की सत्ता की स्वीकृति का भी प्रयास किया।
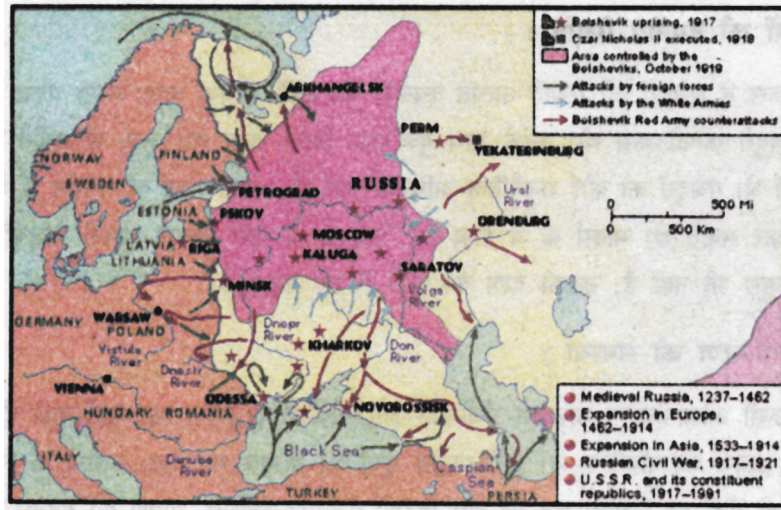
इस क्रांति के निम्नलिखित कारण थे :-

रूस का मानचित्र

1. जार की निरंकुशता एवं आयोग्य शासन :

1917 से पूर्व रूस में रोमनोव–राजवंश का शासन था। इस समय रूस के सम्राट को 'जार' कहा जाता था। रूस में एक कठोर राजनीतिक संरचना स्थापित थी। 19 वीं सदी के मध्य तक यूरोप की राजनीतिक संरचना परिवर्तित हो चुकी थी तथा राजतंत्र की शक्ति सीमित की जा चुकी थी। परंतु रूसी राजतंत्र अपना विशेषाधिकार छोड़ने के लिए तैयार नहीं था। जार निकोलस II, जिसके शासनकाल में क्रांति हुई, राजा के दैवी अधिकारों में विश्वास रखता था। उसे आम लोगों की सुख–दुख की कतई चिंता नहीं थी। जार ने जो अफसरशाही बनायी थी वह अस्थिर, जड़ और अकुशल थी। नियुक्ति का आधार योग्यता नहीं थी। अत: गलत सलाहकारों के कारण जार की स्वेच्छाचारिता बढ़ती गई और जनता की स्थिति बद से बदतर होती गई।

2. कृषकों की दयनीय स्थिति :

रूस में जनसंख्या का बहुसंख्यक भाग कृषक ही थे, परन्तु उनकी स्थिति अत्यन्त दयनीय थी। 1861 ई० में जार एलेक्जेंडर द्वितीय के द्वारा कृषि दासता समाप्त कर दी गई थी, परन्तु इससे किसानों की स्थिति में कोई सुधार नहीं हुआ था। उनके खेत बहुत छोटे–छोटे थे, जिन पर वे पुराने ढंग से खेती करते थें। उनके पास पूँजी का भी अभाव था तथा करों के बोझ से वे दबे हुए थे। ऐसे में किसानों के पास क्रांति के सिवाय कोई चारा नहीं था।

3. मजदूरों की दयनीय स्थिति :

रूस में मजदूरों की स्थिति अत्यंत दयनीय थी। उन्हें अधिक काम करना पड़ना था परन्तु उनकी मजदुरी काफी कम थी। उनके साथ दुर्व्यवहार किया जाता था। अत: वे अपनी स्थिति से संतुष्ट नहीं थे। मजदूरों को कोई राजनैतिक अधिकार नहीं थे। अपनी मांगों के समर्थन में वे हड़ताल भी नहीं कर सकते थे। मार्क्स के ये शब्द कि 'मजदूरों के पास सिवाय अपनी बेड़ियों के खोने के लिए कुछ भी नहीं है, उनकी दशा का सही चित्रण करता है'।

4. औद्योगीकरण की समस्या :

रूसी औद्योगीकरण पश्चिमी पूँजीवादी औद्योगीकरण से भिन्न था। यहाँ कुछ ही क्षेत्रों में महत्वपूर्ण उद्योगों का संकेद्रण था। राष्ट्रीय पूँजी का अभाव था। अत: अद्योगों के विकास के लिए विदेशी पूँजी पर निर्भरता बढ़ गई थी। विदेशी पूँजीपति आर्थिक शोषण को बढ़ावा दे रहे थे। अत: चारों ओर असंतोष व्याप्त था।

5. रूसीकरण की नीति :

सोवियत रूस विभिन्न राष्ट्रीयताओं का देश था। यहाँ मुख्यत: स्लाव जाति के लोग रहते थे। इनके अतिरिक्त फिन, पोल, जर्मन, यहूदी आदि अन्य जातियों के लोग भी थे। ये भिन्न-भिन्न भाषा बोलते थे तथा इनका रस्म-रिवाज भी भिन्न-भिन्न था। परन्तु रूस के अल्पसंख्यक समूह जार-निकोलस द्वितीय द्वारा जारी की गई रूसीकरण की नीति से परेशान था। इसके अनुसार जार ने देश के सभी लोगों पर रूसी भाषा, शिक्षा और संस्कृति लादने का प्रयास किया। इससे अल्पसंख्यकों में हलचल मच गई। 1863 ई० में इस नीति के विरुद्ध पोलो ने विद्रोह किया तो उनका निर्दयतापूर्वक दमन किया गया। इस प्रकार रूसी राजतंत्र के प्रति उनका आक्रोश बढ़ता जा रहा था।

6. विदेशी घटनाओं का प्रभाव :

(i) क्रीमिया का युद्ध : रूस की क्रांति में विदेशी घटनाओं की भूमिका भी अत्यधिक महत्वपूर्ण थी। सर्वप्रथम क्रीमिया के युद्ध में रूस की पराजय ने उस देश में सुधारों का युग आरम्भ किया। तत्पश्चात 1904-05 के रूस- जापान युद्ध ने रूस में पहली क्रांति को जन्म दिया और अंतत: विश्व युद्ध में बोल्शेविक क्रांति का मार्ग प्रशस्त हुआ।

(ii) जापान से पराजय तथा 1905 की क्रांति :- 1905 के ऐतिहासिक रूस-जापान युद्ध में रूस बुरी तरह पराजित हुआ। इससे पूर्व निरंकुश जारशाही विभिन्न मोर्चों पर अपनी विफलताओं को रूसी जनता से छिपाती रही। लेकिन उसके लिए सुदूर पूर्व की पराजय को जनता से छिपाना मुश्किल था। बचे-खुचे फटेहाल सैनिक जब वापस लौटे तो सारा देश स्तब्ध था। महानता का भ्रम टूट चुका था। रूस एशिया के छोटे से देश से पराजित हुआ था। वस्तुतः इस पराजय के कारण 1905 ई० में रूस में क्रांति हो गई। 9 जनवरी 1905 को लोगों का समूह 'रोटी दो' के नारे के साथ सड़कों पर प्रदर्शन करते हुए सेंट पीटर्सवर्ग स्थित महल की ओर जा रहा था। परन्तु जार की सेना ने इस निहत्थे लोगों पर गोलियाँ बरसाई जिसमें हजारों लोग मारे गए। इसलिए 22 जनवरी (पुराने कैलेंडर में 9 जनवरी 1905) को खूनी रविवार (लाल रविवार) के नाम से जाना जाता है। इस नरसंहार की खबर सुनकर पूरे रूस में सनसनी फैल गई। इस क्रांति में किसानों की व्यापक भागीदारी हुई। अंत में सरकार झुक गई तथा 1905

सेन्ट पीटर्सबर्ग

ड्यूमा

ई० में एक प्रतिनिध्यात्मक संस्था ड्यूमा का गठन हुआ। परन्तु 1906 ई० तक जैसे ही क्राँति की शक्ति कमजोर हुई, रूसी राजतंत्र ने ड्यूमा के कुछ अधिकार छिन लिए। यद्यपि 1905 की क्राँति विफल रही, परन्तु भीतर ही भीतर आग सुलगती रही जो 1917 ई० में एक महान क्राँति के रूप में प्रकट हुई।

7. रूस में मार्क्सवाद का प्रभाव तथा बुद्धिजीवियों का योगदान :

रूस की क्राँति से पूर्व एक वैचारिक क्राँति भी देखी जा सकती थी। लियो टॉलस्टाय (रचना-वारएंड पीस) दोस्तोवस्की, तुर्गनेव जैसे चिंतक इस नए विचार को प्रोत्साहन दे रहे थे। रूस के औद्योगिक मजदूरों पर कार्ल मार्क्स के समाजवादी विचारों का पूर्ण प्रभाव था। मार्क्सवादियों था ने मजदूरों के बीच काम करना शुरू कर दिया तथा उनका संगठन भी बढ़ रहा था। रूस का पहला साम्यवादी प्लेखानोव था जो रूस में जारशाही की निरंकुशता समाप्त करके साम्यवादी व्यवस्था की स्थापना चाहता था। उसने 1898 ई० में रशियन सोशल डेमोक्रेटिक पार्टी की स्थापना की। यह साम्यवादी दल का पूर्ववर्ती था। शीघ्र ही 1903 ई० में साधन एवं अनुशासन के मुद्दे पर पार्टी में फूट पड़ गई। इसके परिणामस्वरूप बहुमतवाला दल 'बोल्शेविक' कहलाया और अल्पमतवाला दल 'मेनशेविक'। मेनशेविक मध्यवर्गीय क्राँति के पक्षधर थे और बोल्शेविक सर्वहारा क्राँति के पक्षधर थे। इसके अतिरिक्त 1901 ई० में 'सोशलिस्ट रिवोल्यूशनरी पार्टी' का गठन हुआ जो किसानों की माँगों को उठाती थी। इस प्रकार मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित मजदूर एवं किसानो के संगठन रूस की क्राँति का एक महान कारण साबित हुए।

> **सर्वहारा वर्ग**
> **समाज का वैसा वर्ग जिसमें किसान, मजदूर एवं आम गरीब लोग शामिल हैं।**

8. तात्कालिक कारण-प्रथम विश्व युद्ध में रूस की पराजय :

प्रथम विश्व युद्ध 1914 से 1918 ई० तक चला। इस युद्ध में रूस भी मित्र राष्ट्रों की ओर से शामिल हुआ था। इस युद्ध में सम्मिलित होने का एकमात्र उद्देश्य था कि रूसी जनता आंतरिक असंतोष भूलकर बाहरी मामलों में उलझ जाए। परन्तु इस युद्ध में चारों तरफ रूसी सेनाओं की हार हो रही थी, न उनके पास अच्छे हथियार थे एवं न ही पर्याप्त भोजन की सुविधा थी। युद्ध के मध्य जार निकोलस II ने सेना का कमान अपने हाथों में ले लिया। परिणामस्वरूप दरबार खाली हो गया तथा उसकी अनुपस्थिति में जरीना (जारनिकोलस II की पत्नी) और उसके तथाकथित गुरु रासपुटिन (पादरी) को षड्यंत्र करने का मौका मिल गया, जिसके कारण राजतंत्र की प्रतिष्ठा और भी गिर गई।

मार्च की क्रांति एवं निरंकुश राजतंत्र का अंत :

7 मार्च 1917 ई० को (पुराने रूसी कैलेंडर के अनुसार 22 फरवरी, 1917) पेट्रोग्राड (वर्तमान लेनिनग्राद) की सड़कों पर किसान-मजदूरों ने जुलूस निकाला। उन्होंने ''रोटी दो'' के नारे लगाए। अगले दिन 8 मार्च को कपड़े की मिलों की महिला मजदूरों ने बहुत सारे कारखानों में 'रोटी' की मांग करते हुए हड़ताल का नेतृत्व किया, जिसमें अन्य मजदूर भी शामिल हो गए। जुलूस में लाल झंडों की भरमार थी। जब सेना की एक टुकड़ी से भीड़ पर गोली चलाने को कहा गया तो उसने भी विद्रोह कर दिया। अतः उससे हथियार छीनने पड़े जार की सबसे विश्वस्त टुकड़ी **'प्रैओब्राशेंसकी'** रेजीमेंट ने विद्रोह कर दिया। सैनिकों का विद्रोह बढ़ता गया। फलतः विवश होकर 12 मार्च 1917 को जार ने गद्दी त्याग दी। यह फरवरी की रूसी क्रांति थी क्योंकि पुराने रूसी कैलेंडर के अनुसार 27 फरवरी 1917 को यह घटना घटी थी। इस तरह रूस पर से रोमनोव-वंश का निरंकुश जारशाही का अंत हो गया। अब सर्वप्रथम लोबाव के नेतृत्व में 15 मार्च को एक बुर्जुआ सरकार का गठन हुआ। परंतु रूसी लोगों ने जिस स्वतंत्रता की आकांक्षा की थी, वह महज राजनीतिक स्वतंत्रता नहीं थी वरन् आर्थिक एवं सामाजिक स्वतंत्रता भी थी। अतः यह बुर्जुआ सरकार तात्कालिक परिस्थितियों के प्रतिकूल थी। अंत में बुर्जुआ सरकार गिर गई तथा केरेंसकी के नेतृत्व में एक उदार समाजवादियों की सरकार गठित हुई। इस सरकार का मुख्य उद्देश्य जनतांत्रिक एवं वैधानिक सरकार की स्थापना करना, मित्रराष्ट्रों के सहयोग से युद्ध चलाना, व्यक्तिगत संपत्ति की रक्षा करना, संविधान-सभा द्वारा भूमि की समस्या सूलझाना एवं रूस की समस्त संस्थाओं में वैधानिक उपायों द्वारा परिवर्तन लाना था। किंतु बोल्शेविकों ने इस सरकार को स्वीकार नहीं किया।

रूस क्रांति की तारीख :

रूस में 1 फरवरी 1918 तक जूलियन कैलेंडर का अनुसरण किया जाता था। इसके बाद रूसी सरकार ने ग्रेगोरियन कैलेंडर अपना लिया जिसका अब सब जगह इस्तेमाल किया जाता है। ग्रेगोरियन कैलेंडर जूलियन कैलेंडर से 13 दिन आगे चलता है। अतः इस प्रकार फरवरी क्रांति 12 मार्च को और अक्टूबर क्रांति 7 नवंम्बर को संपन्न हुई थी। इसी तरह 1905 की क्रांति 22 जनवरी को हुई थी।

सन् 1975 ई० में संयुक्त राष्ट्रसंघ द्वारा 8 मार्च को अन्तर्राष्ट्रीय महिला दिवस घोषित किया गया।

बोल्शेविक क्राँति (नवंम्बर 1917)

लेनिन

इसी समय रूस के राजनीतिक मंच पर लेनिन का प्रादूर्भाव हुआ । जार की सरकार ने उसे निर्वासित कर दिया था अत: वह स्वीटजरलैंड में निर्वासित जीवन व्यतीत कर रहा था। जब मार्च 1917 ई० में क्राँति हुई, वह जर्मनी की सहायता से रूस पहुँचा। अप्रैल 1917 में जब वह पेट्रोग्राद पहुँचा तब रूस की जनता का उत्साह बढ़ गया । लेनिन ने घोषित किया कि रूसी क्राँति पूरी नहीं हुई है अत: एक दूसरी क्राँति अनिवार्य है। उसने बोल्शेविक दल का कार्यक्रम स्पष्ट किया जो,'अप्रैल थीसिस' के नाम से प्रसिद्ध है। लेनिन ने तीन नारे दिए-भूमि, शांति और रोटी। लेनिन ने बल प्रयोग द्वारा केरेन्सकी सरकार को उलट देने का निश्चय किया। सेना और जनता दोनों ने उसका साथ दिया। 7 नवम्बर 1917 ई० (पुराने रूसी कैलेंडर के अनुसार 25 अक्टूबर, 1917) को बोल्शेविकों ने पेट्रोग्राद के रेलवे स्टेशन, बैंक, डाकघर, टेलीफोन-केन्द्र, कचहरी तथा अन्य सरकारी भवनों पर अधिकार कर लिया। केरेन्सकी रूस छोड़कर भाग गया। इस प्रकार रूस की महान बोल्शेविक क्रांति (इसे अक्टूबर क्रांति कहते हैं) सम्पन्न हुई। अब शासन की बागडोर बोल्शेविकों के हाथ में आ गई जिसका अध्यक्ष लेनिन को बनाया गया तथा ट्राटस्की इस सरकार का विदेश मंत्री बना। विश्व में पहली बार शासन सत्ता सर्वहारा वर्ग के हाथों में आ गई।

सत्ता पर कब्जा करने के पश्चात् लेनिन और बोल्शेविक दल का उत्तरदायित्व और भी बढ़ गया। सत्ता में आने के बाद लेनिन के समक्ष कई जटिल समस्याएँ थी। परन्तु उसने बहुत हद तक इन समस्याओं का निराकरण करने की कोशिश की। सर्वप्रथम उसने जर्मनी के साथ ब्रेस्टलिटोवस्क की संधि की। इस संधि में सोवियत रूस को लगभग एक चौथाई भू-भाग गँवाना पड़ा। परंतु लेनिन प्रथम विश्व युद्ध से बाहर हो गया तथा उसने अब आंतरिक समस्याओं पर अपना ध्यान केंद्रित किया। इसी समय रूस में गृहयुद्ध की समस्या भी उत्पन्न हुई। जिसमें अमेरिका, जापान, ब्रिटेन और फ्रांस ने

हस्तक्षेप करते हुए सोवियत रूस पर आक्रमण कर दिया, परन्तु लेनिन ने साहसपूर्वक इन विरोधियों का सामना किया। ट्रॉटस्की के नेतृत्व में एक विशाल लाल सेना गठित की गई लाल सेना ने सफलतापूर्वक विदेशी हमले का सामना किया। दूसरी तरफ, आंतरिक विद्रोहों को दबाने के लिए 'चेका' नामक गुप्त पुलिस संगठन बनाया गया। यह अचानक छापा मार कर विद्रोहियों को गिरफ्तार कर लेती थी। इस तरह, लेनिन आंतरिक विद्रोह को दबाने में सफल रहा।

लेनिन ने एक शक्तिशाली केंद्रीय सत्ता की स्थापना की। सन् 1918 में विश्व का पहला समाजवादी शासन स्थापित करने वाला देश रूस का नया संविधान बनाया गया। इसके द्वारा रूस का नाम 'सोवियत समाजवादी गणराज्यों का समूह' **(U.S.S.R.)** के रूप में परिवर्त्तित किया गया। लेनिन ने नए राज्य में प्रतिनिधि सरकार की व्यवस्था की। राजनैतिक संगठन के सबसे निचले स्तर पर 'सोवियत' नामक स्थानीय समितियाँ बनाई गयीं। सभी सोवियत के सदस्यों को मिलाकर एक राष्ट्रीय कांग्रेस का गठन किया गया, जिसकी कार्यकारिणी शक्ति एक केंद्रीय समिति को सौंपा गया। लेनिन इस समिति का अध्यक्ष था। मंत्रिमंडल के सदस्यों का चुनाव इसी समिति के द्वारा होना निश्चित हुआ।

लेनिन के नये संविधान के द्वारा 18 वर्ष से अधिक उम्रवाले वैसे सभी नागरिकों को मताधिकार प्रदान किया गया जो उत्पादक श्रम द्वारा अपनी जीविका चलाते थे। इस तरह काम करने के
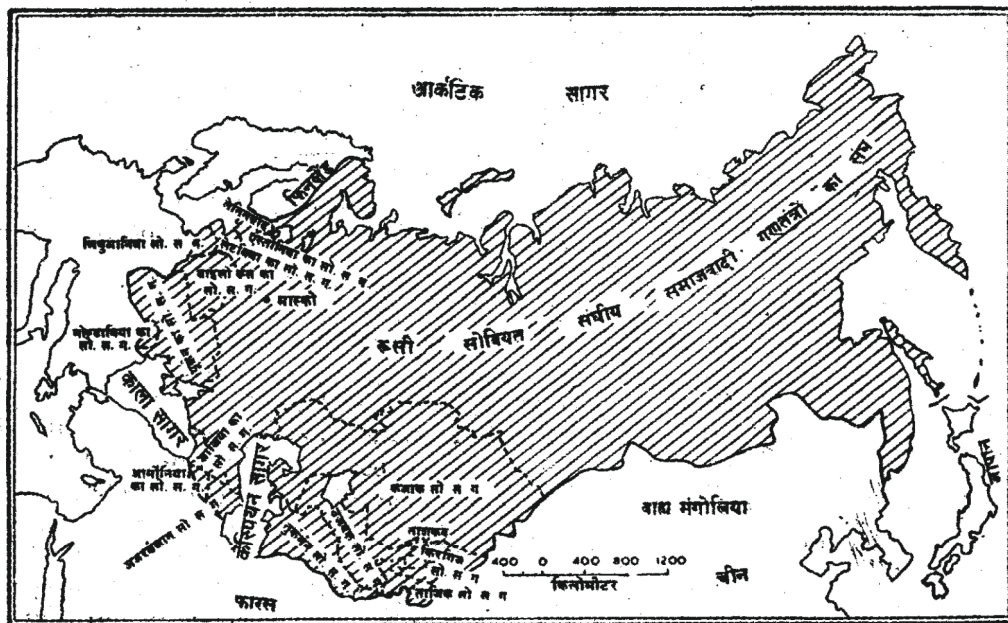
सोवियत समाजवादी गणराज्यों का संघ

के अधिकार को संवैधानिक अधिकार बनाया गया। उत्पादन के साधन पर निजी स्वामित्व समाप्त कर दिया गया और उद्योगों पर मजदूरों का नियंत्रण स्थापित किया गया। बैंकों, बड़े-बड़े उद्योगों, जल, परिवहन एवं रेलवे का राष्ट्रीयकरण किया गया। शिक्षा पर से चर्च का अधिकार समाप्त कर उसका भी राष्ट्रीयकरण कर दिया गया।

इसी तरह लेनीन ने शासन के नियमों में परिवर्त्तन करते के साथ ही वोल्शेविक दल का नाम बदलकर साम्यवादी दल कर दिया और लाल रंग के झंडे पर हँसुए और हथौड़े को सुशोभित कर देश का राष्ट्रीय झंडा तैयार किया गया। उसके बाद से यह झंडा साम्यवाद का प्रतीक बन गया।

ट्रॉटस्की

अब लेनिन के समक्ष एक अन्य समस्या भूमि के पुनर्वितरण की थी। उसने एक आदेश जारी किया जिसके तहत बड़े भूस्वामियों की भूमि किसानों के बीच पुनर्वितरित किया गया। हालांकि किसानों ने भूमि पर पहले से ही कब्जा जमा रखा था। इस आदेश द्वारा लेनिन ने उसे सिर्फ वैधता प्रदान की। लेनिन के इस कदम की आलोचना हुई क्योंकि समाजवादी अर्थव्यवस्था में भूमि पर राज्य का नियंत्रण होता है। लेकिन लेनिन ने यह जवाब दिया कि किसान बहुमत में थे जबकि बोल्शेविक दल अल्पमत में था।

उत्पादन की समस्या के निपटारे के लिए लेनिन ने युद्धरत साम्यवाद को लागू किया। लेनिन ने इसके तहत फैक्ट्री के तकनीकविदों पर नियंत्रण स्थापित किया एवं मजदूरों की सहायता से फैक्ट्री के उत्पादन पर भी नियंत्रण स्थापित किया। इसी तरह किसानों पर भी नियंत्रण लगाया गया एवं किसानों से बलपूर्वक अनाजों की वसूली की जाने लगी। फैक्ट्री में श्रमिक हड़ताल पर कड़ाई से प्रतिबंध लगाया गया। परन्तु युद्धरत साम्यवाद के विरुद्ध रूस में भयंकर प्रतिक्रिया हुई। जर्बदस्ती वसूली के भय से किसानों ने अपना अनाज जलाना शुरू किया। परिणामत: 1920-21 में उत्पादन का

स्तर काफी गिर गया। करोड़ों लोगों के सामने जीवन–मरण का प्रश्न आ खड़ा हुआ। कहीं–कहीं तो भुखमरी की स्थिति पैदा हो गई। राजकीय और विदेशी सहायता के बावजूद काफी लोग भूख और प्यास से मरने लगे। क्रांति विरोधी नारे भी सुनाई पड़ने लगे। अतः लेनिन ने अपनी नीति में संशोधन किया जिसका परिणाम था – नई आर्थिक नीति (NEP)।

नई आर्थिक नीति (NEP)
[NEW ECONOMIC POLICY]

लेनिन एक स्वप्नदर्शी विचारक नहीं, बल्कि वह एक कुशल सामाजिक चिंतक तथा व्यावहारिक राजनीतिज्ञ था। उसने यह स्पष्ट देखा कि तत्काल पूरी तरह समाजवादी व्यवस्था लागू करना या एक साथ सारी पूँजीवादी दुनिया से टकराना संभव नहीं है, जैसा कि ट्रॉटस्की चाहता था। इसलिए 1921 ई० में उसने एक नई नीति की घोषणा की जिसमें मार्क्सवादी मूल्यों से कुछ हद तक समझौता करना पड़ा। लेकिन वास्तव में पिछलं अनुभवों से सीखकर व्यावहारिक कदम उठाना इस नीति का लक्ष्य था। नई आर्थिक नीति में निम्नांकित प्रमुख बातें थीं –

1. किसानों से अनाज ले लेने के स्थान पर एक निश्चित कर लगाया गया। बचा हुआ अनाज किसान का था और वह इसका मनचाहा इस्तेमाल कर सकता था।
2. यद्यपि यह सिद्धांत कायम रखा गया कि जमीन राज्य की है फिर भी व्यवहार में जमीन किसान की हो गई।
3. 20 से कम कर्मचारियों वाले उद्योगों को व्यक्तिगत रूप से चलाने का अधिकार मिल गया।
4. उद्योगों का विकेन्द्रीकरण कर दिया गया। निर्णय और क्रियान्वयन के बारे में विभिन्न इकाइयों को काफी छूट दी गई।
5. विदेशी पूँजी भी सीमित तौर पर आमंत्रित की गई।
6. व्यक्तिगत संपत्ति और जीवन की बीमा भी राजकीय एजेंसी द्वारा शुरू किया गया।
7. विभिन्न स्तरों पर बैंक खोले गए।
8. ट्रेड यूनियन की अनिवार्य सदस्यता समाप्त कर दी गई।

इस नई आर्थिक नीति के द्वारा लेनिन ने उत्पादन की कमी को नियंत्रित किया। इसके परिणामस्वरूप कृषि एवं औद्योगिक उत्पादन में आशातीत वृद्धि हुई। हालांकि लेनिन की इस नीति की आलोचना की जाती है लेकिन लेनिन ने इसका जवाब देते हुए कहा कि तीन कदम आगे बढ़कर एक कदम पीछे हटना-फिर भी दो कदम आगे रहने के समान है।

स्टालिन

1924 ई० में जब लेनिन की मृत्यु हुई तो उत्तराधिकारी की समस्या आ खड़ी हुई। विभिन्न समूहों और अलग-अलग नेताओं के बीच सत्ता के लिए गंभीर संघर्ष चल रहे थे। इस संघर्ष में स्टालिन की विजय हुई। 1929 ई० में ट्रॉटस्की को निर्वासित कर दिया गया। 1930 के दशक में लगभग वे सभी नेता खत्म कर दिए गए जिन्होंने क्रांति में और उसके बाद के वर्षों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। राजनीतिक लोकतंत्र तथा भाषण और प्रेस की स्वतंत्रता नष्ट हो गयी। पार्टी के अन्दर भी मतभेदों को बर्दाश्त नहीं किया जाता था। स्टालिन कम्युनिस्ट पार्टी का महासचिव था और 1953 ई० में अपनी मृत्यु तक तानाशाही व्यवहार करता रहा। इन घटनाओं का सोवियत संघ में समाजवाद के निर्माण पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा और इसमें ऐसी विशेषताएँ उभरी जो मार्क्सवाद और क्रांति के मानवतावादी आदर्शों के विपरीत थी। स्वतंत्रता के सीमित हो जाने के कारण कला और साहित्य के विकास पर भी विपरीत प्रभाव पड़ा।

परन्तु दूसरी ओर स्टालिन के अथक प्रयास से रूस विश्व के मानचित्र पर एक शक्तिशाली देश के रूप में सामने आया। तीन पंचवर्षीय योजनाओं के फलस्वरूप रूस की औद्योगिक उन्नति शिखर पर पहुँच गई। कृषि का आधुनिकीकरण हुआ तथा विज्ञान की उन्नति हुई। द्वितीय विश्वयुद्ध समाप्त होने से पहले ही रूस को एक महान शक्ति माना जाने लगा था। युद्धकाल के सम्मेलनों में रूजवेल्ट और चर्चिल के साथ स्टालिन भी भाग लेता था। इस प्रकार तीन दशकों में ही तिरस्कृत, आक्रांत और कमजोर रूस विश्व की महान् शक्ति बन गया और वहाँ की मेहनतकश जनता में क्रांति ने स्थायी रूप से अपनी जड़ें जमा ली।

रूसी क्रांति का प्रभाव

1. इस क्रांति के पश्चात् श्रमिक अथवा सर्वहारा वर्ग की सत्ता रूस में स्थापित हो गई तथा इसने अन्य क्षेत्रों में भी आंदोलन को प्रोत्साहन दिया।

मिखाइल गोर्वाचोव 1985 ई० में राष्ट्रपति बने। इन्होंने पेरेस्त्रेइका (पुनर्गठन) तथा ग्लासनोस्त (खुलापन) की अवधारणा पेश की।

2. रूसी क्रांति के बाद विश्व विचारधारा के स्तर पर दो खेमों में विभाजित हो गया। साम्यवादी विश्व एवं पूँजीवादी विश्व। इसके पश्चात् यूरोप भी दो भागों में विभाजित हो गया। पूर्वी यूरोप एवं पश्चिमी यूरोप। धर्मसुधार आंदोलन के पश्चात् और साम्यवादी क्रांति से पहले यूरोप में वैचारिक आधार पर इस तरह का विभाजन नहीं देखा गया था।

सोवियत संघ का विघटन दिसम्बर 1991 ई० में हुआ।

3. द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् पूँजीवाद विश्व तथा सोवियत रूस के बीच शीतयुद्ध की शुरुआत हुई और आगामी चार दशकों तक दोनों खेमों के बीच शस्त्रों की होड़ चलती रही।

शीत युद्ध :
यह एक वैचारिक युद्ध था जिसमें पूँजीवादी गुट का नेता संयुक्त राज्य अमेरिका तथा साम्यवादी गुट का नेता सोवियत रूस था।

4. रूसी क्रांति के पश्चात् आर्थिक आयोजन के रूप में एक नवीन आर्थिक मॉडल आया। आगे पूँजीवाद देशों ने भी परिवर्तित रूप में इस मॉडल को अपना लिया। इस प्रकार स्वयं पूँजीवाद के चरित्र में भी परिवर्तन आ गया।

5. इस क्रांति की सफलता ने एशिया और अफ्रीका में उपनिवेश मुक्ति को भी प्रोत्साहन दिया क्योंकि सोवियत रूस की साम्यवादी सरकार ने एशिया और अफ्रीका के देशों में होने वाले राष्ट्रीय आंदोलन को वैचारिक समर्थन प्रदान किया।

अभ्यास

वस्तुनिष्ठ प्रश्न :

1. रूस में कृषक दास प्रथा का अंत कब हुआ ?

   (क) 1861 (ख) 1862

   (ग) 1863 (घ) 1864

2. रूस में जार का अर्थ क्या होता था ?

   (क) पीने का बर्तन (ख) पानी रखने का मिट्टी का पात्र

   (ग) रूस का सामन्त (घ) रूस का सम्राट

3. कार्ल मार्क्स का जन्म कहाँ हुआ था ?

   (क) इंग्लैण्ड (ख) जर्मनी

   (ग) इटली (घ) रूस

4. साम्यवादी शासन का पहला प्रयोग कहाँ हुआ ?

   (क) रूस (ख) जापान

   (ग) चीन (घ) क्यूबा

5. यूटोपियन समाजवादी कौन नहीं था।

   (क) लुई क्लां (ख) सेंट साइमन

   (ग) कार्ल मार्क्स (घ) रॉबर्ट ओवन

6. 'वार एंड पीस' किसकी रचना है ?

   (क) कार्ल मार्क्स (ख) टॉलस्टाय

   (ग) दोस्तोवस्की (घ) ऐंजल्स

7. बोल्शेविक क्राँति कब हुई ?

   (क) फरवरी 1917 (ख) नवंबर 1917

   (ग) अप्रैल 1917 (घ) 1905

8. लाल सेना का गठन किसने किया था ?

(क) कार्ल मार्क्स (ख) स्टालिन

(ग) ट्राटस्की (ग) केरेंसकी

9. लेनिन की मृत्यु कब हुई ?

(क) 1921 (ख) 1922

(ग) 1924 (ग) 1924

10. ब्रेस्टलिटोवस्क की संधि किन देशों के बीच हुआ था ?

(क) रूस और इटली (ख) रूस और फ्रांस

(ग) रूस और इंग्लैण्ड (ग) रूस और जर्मनी

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें :

(क) रूसी क्रांति के समय शासक ....था।

(ख) बोल्शेविक क्रांति का नेतृत्व ....ने किया था।

(ग) नई आर्थिक नीति .... ई० में लागू हुआ था।

(घ) राबर्ट ओवन .... का निवासी था।

(ङ) वैज्ञानिक समाजवाद का जनक .... को माना जाता है।

अति लघुउत्तरीय प्रश्न (20 शब्दों में उत्तर दें)

1. पूँजीवाद क्या है ?
2. खूनी रविवार क्या है ?
3. अक्टूबर क्रांति किसे कहते हैं ?
4. सर्वहारा वर्ग किसे कहते हैं ?
5. क्रांति से पूर्व रूसी किसानों की स्थिति कैसी थी ?

लघुउत्तरीय प्रश्न (60 शब्दों में उत्तर दें)

1. रूसी क्राँति के किन्हीं दो कारणों का वर्णन करें?
2. रूसीकरण की नीति क्राँति हेतु कहाँ तक उत्तरदायी थी?
3. साम्यवाद एक नई आर्थिक एवं सामाजिक व्यवस्था थी कैसे ?
4. नई आर्थिक नीति मार्क्सवादी सिद्धांतो के साथ समझौता था कैसे ?
5. प्रथम विश्व युद्ध में रूस की पराजय क्राँति हेतु मार्ग प्रशस्त किया कैसे ?

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न (150 शब्दों में उत्तर दें)

1. रूसी क्राँति के कारणों की विवेचना करें।
2. नई आर्थिक नीति क्या है ?
3. रूसी क्राँति के प्रभाव की विवेचना करें।
4. कार्ल मार्क्स की जीवनी एवं सिद्धांतों का वर्णन करें।
5. यूटोपियन समाजवादियों के विचारों का वर्णन करें ?

सुमेलित करें

(i) दास कैपिटल	(क) 1953
(ii) चेका	(ख) कार्ल मार्क्स
(iii) नई आर्थिक नीति	(ग) 1883
(iv) कार्ल मार्क्स की मृत्यु	(घ) गुप्त पुलिस संगठन
(v) स्टालिन की मृत्यु	(ङ) लेनिन

वर्ग परिचर्चा :

1. आज के संदर्भ में समाजवाद एवं साम्यवाद की आवश्यकता पर वर्ग में चर्चा शिक्षक की उपस्थिति में करें।
2. भारतीय शासन प्रणाली में समाजवाद का प्रभाव पर परिचर्चा आयोजित करें।

इकाई : 3

हिन्द-चीन में राष्ट्रवादी आन्दोलन

दक्षिण पूर्व एशिया में हिन्द-चीन देशों से अभिप्राय तत्कालीन समय में लगभग 3 लाख (2.80 लाख) वर्ग कि०मी० में फैले उस प्रायद्वीपीय क्षेत्र से है जिसमें आज के वियतनाम, लाओस और कम्बोडिया के क्षेत्र आते हैं। इनकी उत्तरी सीमा म्याँमार एवं चीन को छूती है तो दक्षिण में चीन सागर है और पश्चिम में म्याँमार के क्षेत्र पड़ते हैं।

तीसरी शताब्दी में शी-हुआंग टी का प्रभुत्व उसके बाद हान वंशीय राजा बू-ती ने पूनः इन क्षेत्रो पर कब्जा किया। फिर 15 वी शता० में मिंग वंशी सम्राट के युंग ली ने अधिकार किया था। 19 वीं शताब्दी में यह क्षेत्र मंचु शासन के अधिन था।

प्राचीन काल से ही वियतनाम के तोंकिन एवं अन्नाम में चीन का प्रभाव था और दोनो प्रांत कई शताब्दियों तक चीन के करद राज्य थे। वस्तुतः जब चीन में कोई शक्तिशाली शासक होता था, तब इन प्रांतो को अपने कब्जे मे ले लेता था एवं चीन की केन्द्रीय सत्ता के कमजोर पड़ते ही ये क्षेत्र स्वतंत्र हो जाते थे। यद्यपि चीनी प्रभुत्व के बावजूद भी इस क्षेत्र के लोग ने अपनी अलग सांस्कृतिक पहचान के साथ-साथ भाषा लिपि का भी विकास किया था। बौद्ध धर्म के साथ-साथ कंफ्यूशियस के दर्शन का भी पूरा प्रभाव उन क्षेत्रो पर था।

अंकोरवाट का मन्दिर

दूसरी तरफ लाओस-कम्बोडिया पर भारतीय संस्कृति का प्रभाव था। चौथी शताब्दी में कम्बुज राज्य की स्थापना हुई थी जहाँ का शासक भारतवंशीय था। कम्बुज भारतीय संस्कृति का प्रधान केन्द्र बना । 12 वी शतब्दी में राज **सूर्यवर्मा** द्वितीय ने अंकोर मंदिर का निर्माण करवाया था,

परन्तु 16 वीं शताब्दी में कंबुज का पतन हो गया था और मध्यकाल में आंतरिक संघर्ष की स्थिति उत्पन्न हो गयी थी।

इस प्रकार इस क्षेत्र के कुछ देशों पर चीन एवं कुछ पर हिन्दुस्तान के सांस्कृतिक प्रभाव के कारण ही यह हिन्द-चीन के नाम से जाना गया।

व्यापारिक कंपनियों का आगमन और फ्रांसीसी प्रभुत्व :

1498 ई० में वास्कोडिगामा ने भारत से जुड़ने की चाह में समुद्री मार्ग ढूंढ निकाला तब पुर्गगाली ही पहले व्यापारी थे जो भारत के साथ-साथ दक्षिणी-पूर्वी एशियायी देशों से जुड़े थे और 1510 ई० में मलक्का को व्यापारिक केन्द्र बना कर हिन्द-चीनी देशों के साथ व्यापार शुरू किया था। उसके बाद स्पेन, डच, इंग्लैड और फ्रांसीसियों का आगमन हुआ। इन कंपनियों में फ्रांसीसियों को छोड़कर किसी ने इन भू-भागों पर अपना राजनीतिक प्रभुत्व कायम करने का प्रयास नहीं किया, लेकिन फ्रांस शुरू से ही इसी दिशा में प्रयासरत रहा। 17 वीं शताब्दी में बहुत से फ्रांसीसी व्यापारी पादरी हिन्द-चीन पहुँच गए।

कंपनियों का आगमन

(i) पुर्तगाली	(ii) डच
(i) इंग्लैण्ड	(iv) फ्रांस

सन् 1747 ई० के बाद से ही फ्रांस अन्नाम में रुचि लेने लगा। 1787 ई० में कोचीन-चीन के शासक के साथ उसे संधि का मौका मिला। लेकिन अभी तक फ्रांसीसी अपनी ताकत का प्रभुत्व नहीं जमा पाए थे और 19 वीं शताब्दी में अन्नाम, कोचीन-चीन में फ्रांसीसी पादरियों की बढ़ती गतिविधियों के विरुद्ध उग्र आन्दोलन हो रहे थे । फिर भी, 1862 ई० में अन्नाम को सैन्य बल पर संधि के लिए बाध्य किया गया । उसके अगले वर्ष कम्बोडिया भी सरंक्षण में ले लिया गया और 1783 में तोकिन में फ्रांसीसी सेना का प्रवेश हुआ। इस तरह 20 वीं शताब्दी के आरंभ तक सम्पूर्ण हिन्द-चीन फ्रांस की अधीनता में आ गया।

फ्रांस द्वारा उपनिवेश स्थापना का उद्देश्य -

फ्रांस द्वारा हिन्द-चीन को अपना उपनिवेश बनाने का प्रारंभिक उद्देश्य डच एवं ब्रिटिश कंपनियों के व्यापारिक प्रतिस्पर्धा का सामना करना था। भारत में फ्रांसीसी कमजोर पड़ रहे थे। चीन में उनकी व्यापारिक प्रतिद्वन्द्विता, मुख्य रूप से इंग्लैण्ड से था। अत: सुरक्षात्मक आधार के रूप में उन्हें हिन्द-चीन क्षेत्र उचित लगा, जहाँ खड़े हो कर वे दोनों तरफ

1862	कोचीन चीन
1863	कम्बोडिया
1884	अन्नाम
1904	लाओस

भारत एवं चीन को कठिन परिस्थितियों में संभाल सकते थे। दूसरे, औद्योगीकरण के लिए कच्चे माल की आपूर्ति उपनिवेशों से होती थी एवं उत्पादित वस्तुओं के लिए बाजार भी उपलब्ध होता था। तीसरे, पिछड़े समाजों को सभ्य बनाना विकसित यूरोपीय राज्यों का स्वघोषित दायित्व था।

फ्रांसीसियों ने प्रारंभिक शोषण व्यापारिक नगरो एवं बंदरगाहो से शुरू किया था। उसके बाद उन्होंने भीतरी ग्रामीण इलाको में किसानो का शोषण करना शुरू किया। तोंकिन के जीवन का आधार लाल घाटी थी जबकि कम्बोडिया का मेकांग नदी का मैदानी क्षेत्र एव कोचीन-चीन का मेकांग का डेल्टा क्षेत्र। चीन से सटे राज्यों में खनिज संसाधन कोयला, टीन, जस्ता, टंगस्टन, क्रोमियम आदि मिलते थे। पहाड़ी इलाकों में रबर की खेती होती थी और मैदानी क्षेत्र में धान की।

सर्वप्रथम फ्रांसीसियों ने शोषण के साथ-साथ कृषि की उत्पादकता बढ़ाने के लिए नहरो का एव जल निकासी का समुचित प्रबंध किया और दलदली भूमि, जंगलो आदि में कृषि क्षेत्र को बढ़ाया जाने लगा। इन प्रयासो का ही फल था कि 1931 ई० तक वियतनाम विश्व का तीसरा बड़ा चावल निर्यातक देश बन गया। रबर बगानो फार्मो, खानो में मजदूरो से एकतरफा अनुबंध व्यवस्था पर काम लिया जाता था। जमींदारी अपने विकृत रूप में आ चुकी थी। हलांकि इसी दौरान पूरे उत्तर से दक्षिण हिन्द चीन तक संरचनात्मक विकास तीव्र गति पर रहा एवं एक विशाल रेल नेटवर्क एवं सड़क का जाल सा बिछ गया। परन्तु किसानो एवं मजदूरो का जीवन स्तर गिरता जा रहा था, क्योकि सारी व्यवस्था ही शोषण-मूलक थी।

एकतरफा अनुबंध व्यवस्था- एक तरह की बंधुआ मजदूरी थी वहाँ मजदूरों को कोई अधिकार प्राप्त नही था, जबकि मालिक को असिमित अधिकार प्राप्त था।

जहाँ तक शिक्षा का प्रश्न था अब तक परंपरागत स्थानीय भाषा अथवा चीनी भाषा में शिक्षा पा रहे लोगो को अब फ्रांसीसी भाषा में शिक्षा दी जाने लगी परन्तु इस क्षेत्र में बसने वाले फ्रांसीसियो को शिक्षा के प्रसार के साकारात्मक प्रभावो का डर था। अत: आमलोगो को शिक्षा से दूर रखने का प्रयास किया जाने लगा। इसके लिए स्कूल के अंतिम साल की परीक्षा में प्राय: अधिकतर स्थानीय बच्चो को फेल कर दिया जाता था। स्थानीय जनता एवं कोलोनो की सामाजिक स्थिति में आसमान-जमीन का अन्तर था और 1920 के दशक तक आते-आते छात्र छात्राएँ राजनीतिक पार्टियाँ बनाने लगे थे। हनोई विश्वविद्यालय का बंद किया जाना फ्रांसीसी शोषण की पराकाष्ठा थी।

हिन्द चीन में बसने वाले फ्रांसीसी कोलोन कहे जाते थे।

हिन्द-चीन में राष्ट्रीयता का विकास :

हिन्द-चीन में फ्रांसीसी उपनिवेशवाद को समय-समय पर विद्रोहों का सामना तो प्रारंभिक दिनों से ही झेलना पड़ रहा था, परन्तु 20 वीं शताब्दी के शुरू में यह और मुखर होने लगा। अब छोटे-छोटे मामले में भी लोग अपना असंतोष प्रकट करने लगे थे। उसी परिप्रेक्ष्य में 1903 ई० में **फान-बोई-चाऊ** ने **'दुई तान होई'** नामक एक क्रांतिकारी संगठन की स्थापना की जिसके नेता **कुआंग दें** थे। **फान-बोई-चाऊ ने ''द हिस्ट्री ऑफ द लॉस ऑफ वियतनाम''** लिख कर हलचल पैदा कर दी।

1905 में जापान द्वारा रूस को हराया जाना हिन्द-चीनियों के लिए प्रेरणा स्त्रोत बन गया साथ ही रूसो एवं माण्टेस्क्यू जैसे फ्रांसीसी विचारकों के विचार भी इन्हें उद्वेलित कर रहे थे। इसी समय एक दूसरे राष्ट्रवादी नेता **फान चू त्रिन्ह** हुए जिन्होंने राष्ट्रवादी आन्दोलन के राजतंत्रीय स्वरूप को गणतंत्रवादी बनाने का प्रयास किया। जापन में शिक्षा प्राप्त करने गए छात्र इसी तरह के विचारों के समर्थक थे। सन्यात से न के नेतृत्व में चीन में सत्ता परिवर्त्तन ने इन्हें और बढ़ावा दिया। इन्हीं छात्रों ने **वियेतनाम कुवान फुक होई** (वियतनाम मुक्ति एसोसिएशन) की स्थापना की।

हालांकि हिन्द-चीन में प्रारंभिक राष्ट्रवाद का विकास कोचीन-चीन, अन्नाम, तोंकिन जैसे शहरों तक ही सीमित था, परन्तु जब प्रथम विश्व युद्ध हुआ तो इन्हीं प्रदेशों के हजारों लोगों को सेना में भरती किया गया, हजारों मजदूरों को बेगार के लिए फ्रांस ले जाया गया। यहाँ के सैनिकों को युद्ध की प्रथम पंक्ति में रखा जाता था। अत: मारे जाने वाले में इनकी संख्या ज्यादा होती थी। इन सब बातों की प्रतिक्रिया हिन्द-चीनी लोगों पर हुई और 1914 ई० में ही देशभक्तों ने एक ''वियतनामी राष्ट्रवादी दल'' नामक संगठन बनाया, जिसका पहला अधिवेशन कैण्टन में हुआ। लेकिन सशंकित फ्रांसीसी सरकार ने इसे कुचल डाला। दूसरी तरफ, जनता की हालत निरंतर दयनीय होती जा रही थी। चीन का हिन्द-चीन के कृषि उत्पाद, व्यापार एवं मत्स्य व्यापार पर नियंत्रण था फिर भी ये मुख्य राजनीति से अलग रहते थे। इसी कारण जनता ने इनसे क्रुद्ध होकर 1919 में चीनी-बहिष्कार आन्दोलन किया था।

हिन्द-चीन में फ्रांसीसी प्रभुत्व की स्थापना के साथ ही शासन व्यवस्था पर ध्यान दिया गया। हालांकि कोचीन-चीन ही सीधे फ्रांसीसी प्रशासन में था जबकि अन्य चार प्रांत तोंकिन, अन्नामी, कम्बोडिया और लाओस में पुरातन राजवंश ही कायम रहे जिसके लिए रेजिडेन्टों की नियुक्ति होती थी। प्रथम विश्व युद्ध के बाद प्रशासन में कुछ उदार नीतियां अपनाई गयीं। कोचीन-चीन के लिए एक

हो-ची मिन्ह

प्रतिनिधि सभा का गठन किया गया और उसके सदस्यो के निर्वाचन की व्यवस्था की गयी थी। साथ ही असैन्य प्रशासन में स्थानीय लोगो को महत्व दिया जाना शुरू हुआ। कुछ हद तक राज घरानों ने भी अपने प्रशासन में सुधार का प्रयास किया, परन्तु इन नाम मात्र के सुधारों से जनता संतुष्ट नहीं हो सकती थी। इन्हीं परिस्थितियों में 1917 ई० में **''न्यूगन आई क्वोक''** (**हो-ची मिन्ह**) नामक एक वियतनामी छात्र ने पेरिस में ही साम्यवादियों का एक गुट बनाया। बाद में हो-ची मिन्ह शिक्षा प्राप्त करने मास्को गया और साम्यवाद से प्रेरित होकर 1925 में **''वियतनामी क्रांतिकारी दल''** का गठन किया, साथ ही कार्यकर्त्ताओं के सैनिक प्रशिक्षण की भी व्यवस्था कर ली। अंततः 1930 में वियतनाम के विखरे राष्ट्रवादी गुटों को एक जुट कर **'वियतनाम कांग सान देंग'** अर्थात वियतनाम कम्यूनिष्ट पार्टी की स्थापना की जो पूर्णतः उग्र विचारों पर चलने वाली पार्टी थी।

जोन्गुएन आई ने अनामी दल की स्थापना की थी। यह पार्टी पूर्णतः मास्को के कैन्टन से प्रभावित थी और आंतकी विचारों वाली पार्टी थी।

1930 के दशक की विश्वव्यापी मंदी ने भी राष्ट्रवाद के विकास में योगदान किया। चावल, रबर आदि के दाम गिर गए थे। हिन्द चीन में बेरोजगारी बढ़ती चली जा रही थी। इस स्थिति से परेशान किसान भी साम्यवाद को अपना रहे थे और राष्ट्रवादी आन्दोलन जोर पकड़ता जा रहा था। दूसरी तरफ फ्रांसीसी सरकार का दमन चक्र काफी तीव्र एवं क्रूर होता जा रहा था। विद्रोही जनता पर निर्ममता से गोलियां बरसायी जाती थीं। इससे भी आगे बढ़कर हवाई जहाज़ों से बमबारी भी की जाती थी। इस दमनचक्र में हजारो लोग मारे गए। आन्दोलन दब सा गया, परन्तु यह सोए हुए ज्वालामुखी के समान ही था जो अन्दर ही अंदर खौलता रहा और भूमिगत आन्दोलन की शुरूआत हो गयी।

द्वितीय विश्व युद्ध और वियतनामी स्वतंत्रता:

द्वितीय विश्वयुद्ध की परिस्थितियों ने वियतनामियों को एक निर्णायक रास्ता प्रदान किया। जून 1940 ई० में फ्रांस जर्मनी से हार गया और फ्रांस में जर्मन समर्थित सत्ता कायम हो गयी। एक संधि के तहत जापान को हिन्द–चीन में फौज भेजने का मौका मिल गया। इसका फायदा उठाते हुए जापान ने पहले तोंकिन फिर अन्नाम और अंततः पूरें हिन्द–चीन पर अपना राजनीतिक प्रभुत्व जमा लिया।

यह हिन्द–चीन में एक तरह का द्वैध शासन था जिसमें सत्ता जापानियों के हाथ थी एवं **प्रशासनिक** मुखौटा फ्रांसीसियों का था। इसके फलस्वरूम वियतनाम के गुप्त क्रांतिकारियों को अवसर मिल गया और वे जापानियों और फ्रांसीसियों दोनों के विरुद्ध कार्यवाही करने लगे।

जापान का हिन्द–चीन पर आक्रमण

फ्रांसीसी दमन के वावजूद साम्यवादी दल बचा हुआ था और लोगों का स्वभाविक झुकाव इस तरफ बढ़ रहा था। 'हो ची मिन्ह' के नेतृत्व में देश भर के कार्यकर्ताओं ने **'वियतमिन्ह' (वियतनाम स्वतंत्रता लीग)** की स्थापना कर पिड़ित किसानों, आतंकित व्यापारियों, बुद्धिजीवियों सभी को शामिल कर छापामार युद्ध नीति का अवलम्वन किया।

द्वितीय विश्व युद्ध के समय पर्ल हार्वर पर जापान के आक्रमण के साथ ही अमेरिका युद्ध में शामिल हो गया । 1944 में फ्रांस जर्मनी के आधिपत्य से निकल गया और जापान पर अमेरिकी परमाणु आक्रमण के पश्चात 'पोट्सड्म की घोषणा' के तहत जापान ने आत्मसमर्पण कर दिया। इस स्थिति में जापान की सेनाएँ वियतनाम से निकलने लगी और फ्रांस के पास इतनी शक्ति नहीं बची थी कि खुद को पुनः हिन्द चीन में स्थापित रख सके। इस का लाभ उठाते हुए वियतनाम के राष्ट्रवादियो ने वियतमिन्ह के नेत्त्व में लोकतंत्रीय गणराज्य सरकार की स्थापना 2 सितम्बर 1945 ई० को करते हुए वियतनाम की स्वतंत्रता की घोषणा कर दी। इस सरकार का प्रधान हो ची मिन्ह बनाए गए ।

चुंकि हिन्द चीन अनेक राज्यो में विभक्त था और जापानी सेनाएँ हिन्द चीन से निकल रही थी । कंबोडिया, लाओस, अन्नाम में पुनः प्राचीन राजवंशों को प्रतिष्ठिा मिली। इसी क्रम में अन्नाम का शासक बाओदायी बना। परन्तु इन शासकों का साम्यबादी राष्ट्रवादियो के समक्ष टिकना कठिन था। अत: बाओदाई ने 25 अगस्त 1945 को ही अपना पद छोड़ दिया और वियतनाम एक गणराज्य बन गया।

बाओदायी

हिन्द-चीन के प्रति फ्रांसीसी नीति :

द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात ब्रिटेन, हालैण्ड, अमेरिका और फ्रांस दक्षिण- पूर्व एशिया में अपने साम्राज्यों की पुनर्स्थापना में लग गए। फ्रांस भी हिन्द-चीन में अपने डूबे साम्राज्य को बचाना चाहता था। अत: उसने एक नये औपनिवेशिक तंत्र की योजना बनाई

फ्रांस की औपनिवेशिक योजना :- (i) फ्रांस के विशाल के विशाल सम्राज्य को एक यूनियन में बदल दिया जाएगा, जिसमें सभी अधीनस्थ उपनिवेश रहेंगे। (ii) हिन्द चीन इस फ्रांसीसी महासंघ का एक स्वशासित अंग होगा। (iii) हिन्द-चीन के संरक्षित राज्यों एवं कोचीन को मिलाकर एक संघ बनाया जाएगा। (iv) हिन्द चीनी संघ के विदेश नीति एवं सैन्य पर फ्रांस का नियंत्रण रहेगा।

फ्रांस ने घोषणा की कि 'फ्रांस के विशाल सम्राज्य को एक यूनियन बना दिया जाएगा, जिसमें अधीनस्थ उपनिवेश शामिल रहेंगें' । इस महासंघ का एक अंग हिन्द-चीन भी होगा। अधीनस्थ अपनिवेशों की सेना एवं विदेश नीति पर फ्रांस का नियंत्रण रहेगा। यह राष्ट्रमंडल का विस्तृत रूप जैसा था। परन्तु जापानी सेनाओं के हटते ही, फ्रांसीसी सेना जैसे ही सैगान पहुँची वियतनामी छापामारों ने भयंकर युद्ध किया और फ्रांसीसी सेना सैगान में ही फंसी रही। अंतत: 6 मार्च 1946 को हनोई-समझौता फ्रांस एवं वियतनाम के बीच हुआ जिसके तहत फ्रांस ने वियतनाम को गणराज्य के रूप में स्वतंत्र इकाई माना, साथ ही माना गया कि यह गणराज्य हिन्द-चीन संघ में रहेगा और हिन्द-चीन संघ फ्रांसीसी यूनियन में रहेगा। फ्रांसीसी सेना के तोंकिन में प्रवेश का अधिकार भी मान लिया गया।

फ्रांस की महत्वाकांक्षी नीति के कारण वियतनाम के साथ हिन्द-चीन संघ निर्माण पर समझौता नहीं हो पाया। फ्रांस चाहता था कि निर्मित संघ का अध्यक्ष उसके द्वारा नियुक्त हाई-कमिश्नर हो और वियतनामी नेताओं की मांग थी कि संघ के सभी राज्य स्वतंत्र हों। तभी फ्रांस ने कोचीन-चीन में एक पृथक सरकार स्थापित कर लिया जिससे हनोई समझौता टूट गया। फ्रांस को कुछ वियतनामी प्रतिक्रियावादी ताकतों का समर्थन मिल गया जिनके सहयोग से नवगठित सरकार चलने लगी। अब तक हो-ची-मिन्ह की ताकत इतनी नहीं हुई थी कि फ्रांसीसी सेना का प्रत्यक्ष मुकाबला कर सके। अत: पुन: गुरिल्ला युद्ध शुरू हो गया।

गुरिल्ला युद्ध का लाभ उठाते हुए फ्रांस ने पेरिस से बाओदाई को बुलाकर वियतनाम का शासक बना दिया। चूँकी फ्रांस को उम्मीद थी कि कम्युनिष्ट विरोधी वियतनामी बाओदाई का समर्थन करेगे। अब तक पूरा विश्व दो खेमों में बंट चुका था पूँजीवादी एवं साम्यवादी। पूँजीवादी देशों, यथा अमेरिका एवं ब्रिटेन का समर्थन भी फ्रांस को प्राप्त था। इससे हो ची मिन्ह को कुछ परेशानियाँ उठानी पड़ी क्योंकि अभी तक वह पूर्ण साम्यवादी सरकार का गठन नहीं कर पाया था। उसके संयुक्त मोर्चो में गैर साम्यवादी राष्ट्रवादी ताकतें भी थीं। परन्तु 1949 में हो ची मिन्ह ने खुले तौर पर जनवादी चीनी गणराज्य को अपना आदर्श स्वीकार कर लिया और पूर्णत: साम्यवादी बन गया। 1950 में रूस एवं चीन ने वियतनाम गणराज्य को मान्यता दे दी साथ ही अत्यधिक सैनिक एवं तकनीकि सहायता उपलब्ध कराना शुरू कर दिया।

दिएन वियेन फू के युद्ध में गोली चलाना वियतनामी सिपाही

सन् 1950 में हिन्द-चीन की स्थिति बहुत जटिल हो गयी क्योंकि उत्तरी वियतनाम में हो-ची-मिन्ह की सरकार थी, और दक्षिण वियतनाम में फ्रांस समर्थित बाओदाई की सरकार थी। लाओस, कम्बोडिया मे पुराने राजतंत्र थे जो फ्रांसीसी नियंत्रण में थे। लाओस एवं कम्बोडिया में स्वतंत्रता की मांग जोर पकड़ रही थी। गुरिल्ला **सैनिक** लाओस, **कंबोडिया** के रास्ते दक्षिणी वियतनाम पर धावा बोलते थे और पुनः जंगलों में छिप जाते थे। इसी क्रम में दिएन-विएन-फु पर गुरिल्ला सैनिकों ने भयंकर आक्रमण किया। इस युद्ध में फ्रांस बुरी तरह हार गया। लगभग 16000 फ्रांसीसी सैनिकों को आत्म समर्पण करना पड़ा एवं दिएन-विएन-फु पर साम्यवादियों का अधिकार हो गया।

अमेरिकी हस्तक्षेपः

अमेरिका जो अब तक फ्रांस का समर्थन कर रहा था, ने हिन्द-चीन में हस्तक्षेप की नीति अपनायी **और** साम्यवादियों के विरोध मे उसने इसकी घोषणा भी कर दी। चूंकि रूस एक पक्ष का पहले से समर्थन कर रहा था, अतः लग रहा था कि तृतीय विश्व युद्ध शुरू हो जाएगा। इन्हीं परिस्थितियों में मई 1954 में जेनेवा में हिन्द-चीन समस्या पर वार्ता हेतु सम्मेलन बुलाया गया, जिसे **जेनेवा समझौता** कहा जाता है। जेनेवा समझौता ने पूरे वियतनाम को दो हिस्सों में बाँट

होआ-होआ एक बौद्ध धार्मिक क्रान्तिकारी आन्दोलन था, जो 1939 में शुरू हुआ था जिसके नेता-हुइन्ह फू-सो था। क्रांतिकारी उग्रवादी घटनााओं को भी अंजाम देते थे, जिसमें आत्मदाह तक भी शामिल होता था।
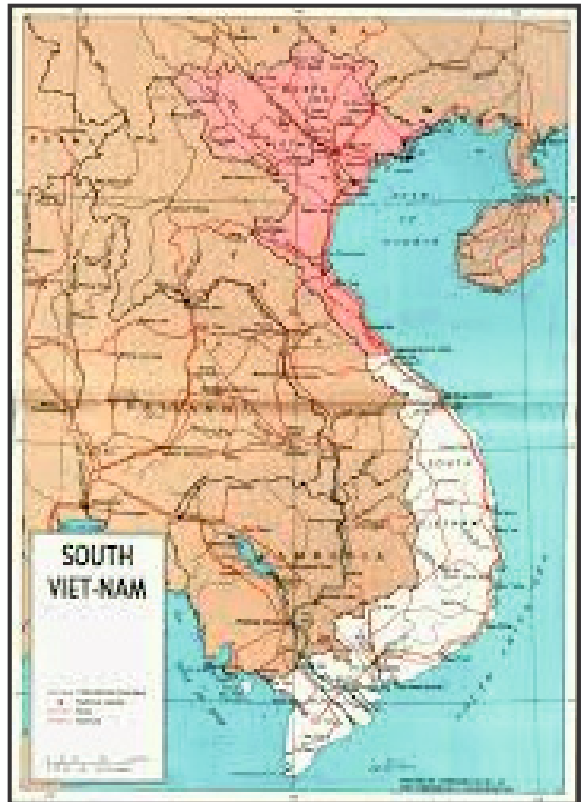
दिया। हनोई नदी से सटे उत्तर का क्षेत्र उतरी वियतनाम साम्यवादियों और उससे दक्षिण में दक्षिणी वियतनाम अमरिका समर्थित सरकार को दे दिया गया। यहाँ एक धार्मिक वर्ग भी आन्दोलित था, यह था– **होआ-होआ।** होआ–ओआ आन्दोलन काफी आक्रामक हो गया था। न्यो दिन्ह दियम ने बड़ी क्रुरता से इन आन्दोलनों को दबाना शुरू किया।

लाओस एव कम्बोडिया में जेनेवा समझौता के फलस्वरूप शासन व्यवस्था बदल गयी। वहाँ वैध राजतंत्र के रूप को स्वीकार किया गया और संसदीय शासन प्रणाली अपनाया गया। यद्यपि इन्हें तटस्थ देश माना गया था, परन्तु साम्यवादी प्रभाव इन देशों में बढ़ता जा रहा था। दूसरी तरफ अमेरिका इन क्षेत्रों को साम्यवादी पभाव में जाने से रोकने को कृत संकल्प था।

लाओस में गृह-युद्ध :-

लाओस की राजनीतिक सीमा पूरब में उतरी वियतनाम की सीमा को छुती थी। 1954 ई० मे ही स्पष्ट हो गया था कि उत्तरी लाओस के दो प्रांत फुंगसाली एव होऊअफ्रांस में साम्यवादियों का प्रभुत्व था और ये अपने विस्तार के लिए उद्धत थे। जब लाओस में राजतंत्र को हटाकर संसदीय प्रणाली अपनायी गयी तो वहाँ राजनीतिक अस्थिरता का दौर शुरू हुआ। लाओस एवं कम्बोडिया की पूर्ण स्वतंत्रता को मान लिया गया। यह भी व्यवस्था की गयी कि 1956 के मध्य के पहले सम्पूर्ण वियतनाम का चुनाव द्वारा एकीकरण कर एक सरकार का गठन किया जाए यदि जनता ऐसा चाहे। जेनेवा समझौता के क्रियान्वयन की देख भाल के लिए एक त्रिसदस्यीय अंतर्राष्ट्रीय निगरानी आयोग का गठन किया गया, जिसके सदस्य भारत, कनाडा एव पोलैण्ड थे।

जेनेवा समझौता ने तात्कालिक रूप से कुछ शांति अवश्य दी, परन्तु तुरन्त ही हिन्द–चीन में उथल–पुथल आरंभ हो गई, क्योंकि उत्तरी वियतनाम में हो–ची–मिन्ह की सरकार सुदृढ़ हो गयी और पूरे वियतनाम के एकीकरण पर विचार करने लगी, परन्तु दक्षिणी वियतनाम की स्थिति इसके विपरीत थी। अमेरिका समर्थित बाओदाई सरकार का संचालन **न्यो–दिन्ह–दियम** के हाथो में था।

इन दिनों दक्षिणी वियतनाम में साम्यवादियों के साथ–साथ अपदस्थ राजघराने के तीन सौतेले भाइयों ने लाओस पर अपनी राजनीतिक पकड़ के लिए अलग–अलग रास्ते अपना लिए थे, इनमें पहला राजकुमार **सुवन्न फूमा** तटस्थतावादी था, दूसरा राजकुमार **सुफन्न बोंग** जो **पाथेट लाओ** के नाम से विख्यात था और अपना सैन्य संगठन बनाकर समूचे लाओस में साम्यवादी व्यवस्था लाना चाहता था तथा तीसरा राजकुमार **फुमी नोसवान** दक्षिणपंथ का अनुसरण करने वाला था। इन तीनों के आपसी राजनीतिक वर्चस्व का संघर्ष ही लाओस की अस्थिरता का कारण था। उसपर रूस एवं अमेरिका दोनों गुटों का समर्थन एवं हस्क्षेप इसे और बढ़ा रहा था।

25 दिसम्बर 1955 ई० को लाओस में चुनाव के बाद राष्ट्रीय सरकार का गठन हुआ और सुवन्न फूमा के नेतृत्व में सरकार बनी। पाथेट लाओ ने इसका विरोध करते हुए गुरिल्ला युद्ध शुरू कर दिया, परन्तु 1957 में दोनों में समझौता हो गया और पाथेट लाओ की पार्टी **'नियो–लियो–हकसत'** (एन.एल.एच.एस.) के सदस्यों को भी सरकार में जगह मिल गयी। यह स्थिति अमेरिका के लिए असह्य थी। चूंकि माथेट लाओ वामपंथी था, अमेरिकी षड्यंत्र के कारण दोनों भाइयों में समझौता टूट गया और पुनः गुरिल्ला युद्ध शुरू हो गया। इसी बीच तीसरे भाई जेनरल फुमी नौसवान को मौका मिल गया। उसने निर्वाचित सरकार का तख्ता पलट कर दक्षिण पंथी सरकार बना ली। तीन माह बाद फिर तख्ता पलट हुआ और **कैप्टन कांगली** के नेतृत्व में सैनिक सरकार बनी। परन्तु तीनों भाइयों ने मिलकर कैप्टन कांगली को उत्तर की ओर भगा दिया। इस तरह लाओस एक भयंकर गृहयुद्ध में फंस गया।

लाओस के गृह युद्ध में अमेरिका–रूस की परोक्ष सहभागिता ने एक बार फिर विश्वशांति को खतरे में डाल दिया। तब भारत ने जेनेवा समझौता के अनुरूप अंतर्राष्ट्रीय नियंत्रण आयोग को पुनजीवित करने की मांग उठायी। अंततः इस समस्या पर 14 राष्ट्रों का एक सम्मेलन बुलाना तय हुआ, जिसमें लाओस के तीनों पक्षों की भागीदारी पर रूस अमेरिका भी सहमत थे। मई 1961 में यह सम्मेलन हुआ जिसमें सभी राजकुमारों ने संयुक्त मंत्रिमण्डल के गठन पर सहमति प्रदान

की और मंत्रिमण्डल भी बना, परन्तु अमेरिकी षडयंत्र के कारण लाओस के विदेश मंत्री की हत्या हो गयी और गृह युद्ध पुनः शुरू हो गया। चूंकि अमेरिका लाओस में साम्यवादी प्रसार नही चाहता था। अतः चुनाव द्वारा सुवन्न फूमा को प्रधानमंत्री बनाया गया और सुफन्न बोंग उप प्रधानमंत्री बना। इससे असंतुष्ट पाथेट लाओ ने सन् 1970 में लाओस पर आक्रमण कर **जार्स** के मैदान पर कब्जा कर लिया। हलांकि अमेरिका ने इस युद्ध में जम कर बमबारी किया परन्तु पाथेट लाओ के आक्रमण को रोका नही जा सका।

रूस ने लाओस पर आक्रमण और उसके बिगड़ती स्थिति की जिम्मेदारी अमेरिका पर सौंपा। अमेरिका के खुल कर युद्ध में आ जाने से यह जटिल स्थिति उत्पन्न हुई थी। 1917 में

हो चीन मिन्ह मार्ग पर बमबारी का चित्र

हजारों दक्षिणी सैनिकों ने लाओस में प्रवेश किया उनके साथ अमेरिकी सैनिक, युद्धक विमान एवं बमवर्षक हेलिकॉप्टर भी थे। इनका उद्देश्य हो–ची–मिन्ह मार्ग पर कब्जा करना था। पाथेट लाओ ने रूस और ब्रिटेन से अनुरोध किया कि वे अमेरिका पर दबाव डाल कर उन्हें रोकें। परन्तु चीन ने अमेरिका को धमकी दी। पहले अमेरिका को लगा कि वह युद्ध जीत लेगा, परन्तु हो–ची–मिन्ह मार्ग क्षेत्र पर जा कर उसकी सेनाएँ फंस गयी। लाओस के प्रबल प्रतिरोध के कारण उसके लिए वापस लौटना ही मात्र एक उपाय था। इस तरह अमेरिका अपने आक्रमण में वामपंथ के प्रसार को रोक नहीं पाया।

कंबोडियायी संकट :

सन् 1954 ई० में स्वतंत्र बनने के बाद कम्बोडिया में संवैधानिक राजतंत्र को स्वीकार कर राजकुमार नरोत्तम सिंहानुक को शासक माना गया। नरोत्तम सिंहानुक 1954 से ही कम्बोडिया में गुटनिरपेक्षता एवं तटस्थता की नीति पर कायम था। इसलिए कम्बोडिया दक्षिण पूर्व एशियाई सैन्य संगठन में शामिल नहीं हुआ। अमेरिका इन क्षेत्रों में अपना प्रभाव चाहता था, इसी कारण वह सिंहानुक से चिढ़ा हुआ था और थाईलैण्ड को उसका कर कम्बोडिया को तंग करवा रहा था। अमेरिका की इस कूटनीतिक चाल के कारण 1963 में सिंहानुक ने उससे भी किसी तरह की मदद लेने से इंकार कर दिया। यह बात अमेरिका के लिए अपमान जनक थी। मई 1965 में उसने वियतनाम के साथ कम्बोडिया के सीमावर्ती गांवों पर आक्रमण कर दिया। तब सिंहानुक ने अमेरिका से राजनयिक सम्बंध तोड़ लिए। आगे चलकर सन् 1969 में अमेरिका ने कम्बोडिया सीमा क्षेत्र में जहर की वर्षा हवाई जहाज से करवा दी, जिससे लगभग 40 हजार एकड़ भूमि की रबर की फसल नष्ट हो गयी। तब सिंहानुक ने मुआवजे की मांग अमेरिका से कि एवं रूस की ओर झुकाव दिखाते हुए पूर्वी जर्मनी से राजनयिक सम्बंध बढ़ाने शुरू किये।

नरोत्तम सिंहानुक

तत्कालीन दो गुटीय विश्व व्यवस्था में पूंजीवादी अमेरिका यह नहीं चाहता था कि कम्बोडिया साम्यवादी देशों के प्रति सहानुभूति रखे। अत: उसने कम्बोडिया के गुटनिरपेक्षता को एक पक्षीय मानते हुए यह आरोप लगाया कि सिंहानुक सरकार का सम्बन्ध उत्तरी वियतनाम एवं वियतकांगों से है। इसलिए अमेरिका सी०आई०ए० के माध्यम से कम्बोडियायी

दक्षिणपंथियों को संगठित कर सिंहानुक को सत्ताच्युत करना चाहता था। अमेरिका षड्यंत्र के कारण 1970 में दक्षिणपंथियों ने वियतनाम के दूतवास के समक्ष उग्र प्रदर्शन किया। इसी परिप्रेक्ष्य में सिंहानुक को वियतनाम के प्रति कठोर रूख अपनाना पड़ा। 18 मार्च 1970 को कम्बोडियायी राष्ट्रीय संसद ने नरोत्तम सिंहानुक को सर्वसम्मत प्रस्ताव द्वारा सत्ता से हटा दिया और जनरल लोन नोल के नेतृत्व में सरकार बनी। जिसे अमेरिका का समर्थन प्राप्त था।

नरोत्तम सिंहानुक ने पेकिंग में निर्वासित सरकार का गठन कर जनरल लोन नोल की सरकार को अवैध घोषित कर दिया साथ ही राष्ट्रीय संसद को भंग कर दिया और जनता से मौजूदा सरकार को अपदस्थ करने की अपील की। अप्रैल 1970 से सिंहानुक ने नयी सरकार के विरूद्ध युद्ध छेड़ दिया, जिसमें उत्तरी वियतनाम एव वियतकांग सैनिको से भरपूर मदद मिल रही थी। नरोत्तम सिंहानुक की सेना विजयी होती हुयी राजधानी नामपेन्ह की ओर बढ़ रही थी। अमेरिका ने तुरंत इसमें हस्तक्षेप किया। दक्षिणी वियतनाम से अमेरिकी फौज कम्बोडिया में प्रवेश कर गयी और व्यापक संघर्ष शुरू हो गया। यह युद्ध बड़ा ही भयंकर था।

अमेरिकी राष्ट्रपति की इस नीति का व्यापक विरोध अमेरिकी भी कर रहे थे। राष्ट्रपति **निक्सन** को अपनी सेनाए वापस बुलाने की घोषणा करनी पड़ी परन्तु दक्षिणी वियतनाम ने अपनी सेना कम्बोडिया में रहने देने की घोषणा कर स्थिति को और जटिल बना दिया। अब लग रहा था कि चीन भी कम्बोडिया मामले में हस्तक्षेप करेगा। इस तरह एक बार पुनः दक्षिण पूर्वी एशिया की सुरक्षा खतरे में पड़ गयी। स्थिति को भांपते हुए इन्डोनेशिया ने एशियायी देशो का सम्मेलन बुलाने का प्रस्ताव रखा। **16 मई 1970 को जकार्ता** में एक सम्मेलन बुलाया गया। यद्यपि यह सम्मेलन सफल रहा परन्तु कम्बोडिया की स्थिति में कोई परिवर्तन नही आया।

कम्बोडियायी छापामारों, अमेरिकी सेना के बीच युद्धो, बमबारी **नृशंस** हत्याओं के इस दौर में ही 9 अक्टूबर 1970 को कम्बोडिया को गणराज्य घोषित किया गया। परन्तु सिंहानुक एव लोन नोल की सेनाओ में संघर्ष चलता रहा। पांच वर्ष पश्चात सिंहानुक ने निर्णायक युद्ध का ऐलान किया और उनकी लाल खुमेरी सेना विजय करती आगे बढ़ती गयी अंततः लोन नोल को भागना पड़ा। अप्रैल 1975 में कम्बोडियायी गृह युद्ध समाप्त हो गया। नरोत्तम सिंहानुक पुनः राष्ट्राध्यक्ष बने परन्तु 1978 में उन्होंने राजनीति से संयास ले लिया।

अब कम्बोडिया का नाम बदल कर कम्पुचिया कर दिया गया। नरोत्तम सिंहानुक के बाद

खिऊ सम्फान एवं पोलपोट ने अपने मार्क्स-वादी विचारधारा के अनुरूप शासन शुरू किया। यह दौर पूरी तरह आतंक का दौर था, परन्तु 1979 में हेंग सामरिन ने एक संयुक्त मोर्चे का गठन कर खिऊ सम्फान एवं 'पोलपोट' को पराजित कर दिया। इस स्थिति में रूस-चीन आमने सामने आ गए और चीन ने वियतनाम पर आक्रमण कर दक्षिण पूर्वी एशिया में अपनी शक्ति का परिचय दिया। हालांकि अमेरिकी नीति कंपुचिया मामले में सफल नहीं रही और वह साम्यवाद को फैलने से नहीं रोक पाया, परन्तु दो साम्यवादी देशों रूस एवं चीन को आमने सामने लाने में उसकी नीति अवश्य सफल हो गयी।

वियतनामी गृह युद्ध और अमेरिका :

जेनेवा समझौता से दो वियतनामी राज्यों का जन्म तो अवश्य हो गया था, परन्तु स्थायी शांति की उम्मीद नहीं के बराबर ही थी, क्योंकि उत्तरी वियतनाम में जहाँ साम्यवादी सरकार थी वहीं दक्षिणी वियतनाम में पूँजीवाद समर्पित सरकार थी। जेनेवा समझौता में यह कहा गया था कि अगर जनता चाहे तो मध्य 1956 तक चुनाव कराकर पूरे वियतनाम का एकीकरण किया जाएगा। उसी समय से वियतनामी जनता उसके एकीकरण के पक्ष में आवाज उठाती रही थी, जिसे उत्तरी वियतनाम का पूर्ण समर्थन था, जबकि दक्षिणी वियतनाम की जनता शांतिपूर्ण प्रयासों से चूक गयी, तो 1960 में 'वियतकांग' (राष्ट्रीय मुक्ति सेना) का गठन कर अपने सरकार के विरुद्ध हिंसात्मक संघर्ष शुरू कर दी। 1961 ई० तक स्थिति इतनी विगड़ गयी कि दक्षिणी वियतनाम में आपात काल की घोषणा कर दी गयी और वहाँ गृह युद्ध शुरू हो गया।

अमेरिका जो दक्षिणी वियतनाम में साम्यवाद के प्रभाव को रोकना चाहता था, ने 1961 के सितम्बर में **''शांति को खतरा''** नाम से श्वेत पत्र जारी कर उत्तरी वियतनाम की हो-ची-मिन्ह सरकार को इस गृह युद्ध के लिए जिम्मेदार ठहराया और 1962 के शुरूआत में अपने 4000 सैनिकों को दक्षिणी वियतनाम के मदद के लिए सौगॉन भेज दियां वास्तविकता यह थी कि न्यो-दिन्ह-दियम की तानाशाही अत्याचारों से जनता तंग आ चुकी थी। बौद्ध जनता धार्मिक असहिष्णुता के कारण आत्म दाह कर रही थी। इसी को लेकर 1963 ई० में सेना ने विद्रोह कर न्यो-दिन्ह-दियम को मार दिया और सैनिक सरकार की स्थापना हुयी, परन्तु यह भी प्रतिक्रियावादी थी। इस तरह सरकारों का आना जाना लगा रहा मगर किसी की भी नीति नहीं बदली और वियतकांग का संघर्ष चलता रहा।

5 अगस्त 1964 को अमेरिका ने उत्तरी वियतनाम पर आक्रमण कर कुछ सैनिक अड्डे तबाह कर दिए। तब अमेरिका को चेतावनी भरी धमकियाँ रूस एवं चीन ने दिया, परन्तु इसका असर उस पर नही पड़ा। अमेरिका द्वारा शुरू किया गया यह युद्ध काफी हिंसक, बर्बर एव यातनापूर्ण था। इस युद्ध में खतरनाक हथियारों, टैको एव बमवर्षक विमानो का व्यापक प्रयोग किया गया था, साथ ही रासायनिक हथियारों नापाम, आरेंज एजेंट एव फास्फोरस बमो का जमकर इस्तेमाल किया गया था।

रासायनिक हथियार

नापाम यह एक तरह का आर्गेनिक कम्पाउड है जो अग्नि बमो में गैसोलिन के साथ मिलकर एक ऐसा मिश्रण तैयार करता थ जो त्वचा से चिपक जाता और जलता रहता था इसका व्यापक पैमाने पर वियतनाम में प्रयोग किया गया था।

यह युद्ध उत्तरी वियतनाम के साथ-साथ वियतकांग एव वियतकांग समर्थक दक्षणी वियतनामी जनता सभी से लड़ा गया था। निर्दोष ग्रामीणों की हत्या कर दी जाती थी। अंत में पूरे गांव को आग के हवाले कर दिया जाता था। 1967 ई० तक अमेरिका इसे इतना बम वियतनाम में **बरसाया** जितना द्वितीय विश्व युद्ध में जर्मनी ने इंग्लैण्ड के विरूद्ध नहीं गिराया था।

अमेरिका की इस तरह की कार्रवाइयों का विरोध राष्ट्रीय एवं अंतराष्ट्रीय स्तर पर होने लगा। प्रसिद्ध दार्शनिक **रसेल** ने एक अदालत लगा कर अमेरिका को वियतनाम युद्ध के लिए दोषी करार दे दिया। इसके आर्थिक कुपरिणाम भी परिलक्षित होने लगे । प्रतिवर्ष 2 से 2.5 अरब डालर का अमेरिकी खर्च में वृद्धि हुयी। इसे अमेरिकी अर्थव्यवस्था डाँवाडोल होने लगी। अंतराष्ट्रीय बाजार में डालर का मूल्य काफी नीचे गिर गया। परन्तु अमेरिका ने दक्षिणी वियतनाम को अपनी प्रतिष्ठा का प्रश्न बना लिया था और समझौते के सारे प्रयासो को विफल करता हुआ युद्ध को जारी रखे हुए था।

दूसरी तरफ वियतनामी अब साम्यवाद या किसी अन्य बातों के लिए नहीं बल्कि अपने अस्तित्व और अपने राष्ट्र के लिए लड़ रहे थे। यहाँ तक कि वियतनायी महिलाएं अपने पीठ पर बच्चे को बांधे फुलपैंट पहने हाथों में बंदूकों को लिए **गश्ती** लगातीं या सीधे युद्धों में शामिल होती देखी जा सकती थीं, या फिर हो-ची-मिन्ह मार्ग की मरम्मती करते देखी जा सकती थीं। प्राचीन

एजेन्ट-आरेंज

यह एक ऐसा जहर था जिससे पेड़ों की पत्तियाँ तुरंत झुलस जाती थी एवं पेड़ मर जाता था । जंगलों को खत्म करने के लिए इसका प्रयोग किया जाता था। इसका नाम आरेंज पट्टियों वाले ड्रमों में रखे जाने के कारण पड़ा। अमेरिका इनका इस्तेमाल जंगलों के साथ खेतों और आबादी दोनों पर जमकर किया। इस जहर का असर आज भी नजर आता है, जन्मजात विकलांगता के रूप में ।

नायिकाओं को आख्यानित कर स्त्रियों को प्रेरित भी किया जाता था। इसी संदर्भ में त्रि-अयू की कहानी भी सुनने को मिलता है जिसे इस समय देवी की तरह पूजा जाता था।

1968 के प्रारंभ में वियतकांग ने अमेरिकी शक्ति का प्रतीक पूर्वी पेंटागन सहित कई ठिकानें पर धावा बोल कर अमेरिकियों को काफी क्षति पहुँचाई। इन धावों ने यह स्पष्ट कर दिया कि वियतनाम के हौसले अभी भी काफी बुलंद है और यह भी स्पष्ट हो गया कि वियतनामियों को रसद पहुँचाने वाला मार्ग हो-ची-मिन्ह काफी मजबूत है, क्योंकि इसे बमबारियों से नष्ट नहीं किया जा सका था। वस्तुतः हो-ची-मिन्ह मार्ग हनोई से चलकर लाओस, कम्बोडिया के सीमा क्षेत्र से गुजरता हुआ दक्षिणी वियतनाम तक जाता था, जिससे सैकड़ों कच्ची पक्की सड़कें निकल कर जुड़ी थी। अमेरिका सैकड़ों बार इसे क्षतिग्रस्त कर चुका था, परन्तु वियतकांग एवं उसके समर्थित लोग तुरंत उसका मरम्मत कर लेते थे। इसी मार्ग पर नियंत्रण करने के उद्देश्य से अमेरिका लाओस एवं कम्बोडिया पर आक्रमण भी कर दिया था, परन्तु तीन तरफा संघर्ष में फंस कर उसे वापस होना पड़ा था।

अब अमेरिका भी शांति वार्त्ता चाहता था, परन्तु अपनी शर्तों पर। राष्ट्रमण्डल, संयुक्त राष्ट्रसंघ समेत कई शक्तियाँ इस प्रयास में थी कि वार्त्ता शुरू हो। अतः 1968 में **पेरिस** में शांति वार्त्ता शुरू

हुई। अमेरिकी हठ के कारण 6 माह तक वार्त्ता सफल नहीं हो सकी। वियतनामियों की मांग थी कि पहले बमबारी बंद हो फिर अमेरिका अपनी सेनाएँ हटाए। इसी क्रम में 7 जून 1969 को वियतनामी शिष्ट-मण्डल ने दक्षिणी वियतनाम के मुक्त क्षेत्र में वियतकांग के सरकार के गठन की घोषणा की, जिसे रूस एवं चीन ने तुरंत मान्यता दे दी। इसी दरम्यान वियतनामी राष्ट्रीयता के जनक हो-ची-मिन्ह की मृत्यु हो गयी। चूंकि उन्होंने अपने वसीयत में दक्षिणी वियतनाम के मुक्ति तक संघर्ष का आह्वान किया था, अतः संघर्ष जारी रहा।

राष्ट्रपति निक्सन

अमेरिकी असफलता और वियतनाम एकीकरण:

अब हॉलिवुड द्वारा अमेरिका के वियतनाम युद्ध को जायज ठहराने वाली फिल्मों के स्थान पर अमेरिका के अत्याचार पर फिल्में बनने लगी। दूसरी तरफ निक्सन अमेरिकी चुनाव में जीत हासिल कर नया राष्ट्रपति बना। वियतनाम समस्या का जल्द समाधान की जिम्मेवारी उस पर सौंपी गयी। अन्तर्राष्ट्रीय दबाव बढ़ता ही जा रहा था। इसी समय "माई ली गाँव" की एक घटना प्रकाश में आयी। अमेरिकी सेना की आलोचना पूरे विश्व में होने लगी। तब राष्ट्रपति निक्सन ने शांति के लिए पाँच सूत्री योजना की घोषणा की। (i) हिन्द-चीन की सभी सेनाएँ युद्ध बंद कर यथा स्थान पर रहे। (ii) युद्ध विराम की देख-रेख अंतरराष्ट्रीय पर्यवेक्षक करेंगे। (iii) इस दौरान कोई देश अपनी शक्ति बढ़ाने का प्रयत्न नहीं करेगा (iv) युद्ध विराम के दौरान सभी तरह की लड़ाईयाँ बंद रहेंगी (v) युद्ध विराम का अन्तिम लक्ष्य समूचे हिन्द-चीन में संघर्ष का अंत होगा।

परन्तु इस शांति प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया गया। अमेरिकी सेनाएँ पुनः बमबारी शुरू कर दी। लेकिन अमेरिकी अब जान चुका था कि उसे अपनी सेनाएँ वापस

अमेरिकी शर्तें

1. दक्षिण वियतनाम की स्वतंत्रता 2. अमेरिकी सेनाए उस क्षेत्र में ही रहेगी 3. जब तब वियतकांग संघर्ष करेगा, दक्षिण वियतनाम में अतंक मचाएगा बमबारी जारी रहेगा।

माई-ली-गांव

दक्षिणी वियतनाम में एक गांव था जहाँ के लोगों को वियतकांग समर्थक मान अमेरिकी सेना ने पूरे गाँव को घेर कर पुरुषों को मार डाला, औरतों-बच्चियों को बंधक बनाकर कई दिनों तक सामूहिक बलात्कार किया, फिर उन्हें भी मार कर पूरे गाँव में आग लगा दिया। लाशों के बीच दबा एक बूढ़ा जिन्दा बच गया था जिसने इस घटना को उजागर किया।

बुलानी ही पड़ेगी। निक्सन ने पुनः आठ सूत्री योजना रखी। वियतनामियों ने इसे खारिज कर दिया। अब अमेरिका चीन को अपने पक्ष में करने में लग गया। 24 अक्टूबर 1972 को वियतकांग, उत्तरी वियतनाम, अमेरिका एवं दक्षिणी वियतनाम में समझौता तय हो गया, परन्तु दक्षिणी वियतनाम ने आपत्ति जताई और पुनः वार्त्ता के लिए आग्रह किया। वियतकांग ने इसे अस्वीकार कर दिया। इस बार इतने बम गिराए गए जिनकी कुल विध्वंसक शक्ति हिरोशिमा में प्रयुक्त परमाणु बम से ज्यादा आंकी गयी। हनोई भी इस बमवारी से ध्वस्त हो गया, लेकिन वियतनामी डटे रहे। अंततः 27 फरवरी 1973 को पेरिस में वियतनाम युद्ध के समाप्ति के समझौते पर हस्ताक्षर हो गया। समझौते की मुख्य बातें थीं-युद्ध समाप्ति के 60 दिनों के अंदर अमेरिकी सेना वापस हो जाएगी, उत्तर और दक्षिण वियतनाम परस्पर सलाह कर के एकीकरण का मार्ग खोजेंगे, अमेरिका वियतनाम को असीमित आर्थिक सहायता देगा।

इस तरह से अमेरिका के साथ चला आ रहा युद्ध समाप्त हो गया एवं अप्रैल, 1975 में उत्तरी एवं दक्षिणी वियतनाम का एकीकरण हो गया।

इस प्रकार सात दशकों से ज्यादा चलने वाला यह अमेरिका वियतनाम युद्ध समाप्त हो गया। इस युद्ध में लगभग 9855 करोड़ डालर खर्च हुए। सर्वाधिक व्यय अमेरिका का था। उसके 56000 से अधिक सैनिक मारे गए। लगभग 3 लाख सैनिक घायल हुए। दक्षिणी वियतनाम के 18000 सैनिक मारे गए। अमेरिका के 4800 हेलिकाप्टर एवं 3600 अनगिनत टैंक नष्ट हो गए।

इन सारी घटनाओं के परिप्रेक्ष्य में धन-जन की बर्बादी के अलावे अमेरिकी साख को भी गहरा आघात पहुँचा। पूरे हिन्द-चीन में वह बुरी तरह असफल रहा। अंततः उसे अपनी सेनाएँ हिन्द-चीन से हटानी पड़ी और सभी देशों की संप्रभुता एवं अखण्डता को स्वीकार करना पड़ा।

अभ्यास

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. **हिन्द-चीन क्षेत्र में कौन से देश आते हैं ?**

    (अ) चीन, वियतनाम, लाओस

    (ब) हिन्द-चीन, वियतनाम, लाओस

    (स) कमबोडिया, वियतनाम, लाओस

    (द) कम्बोडिया,वियतनाम, चीन, थाइलैण्ड

2. **अंकोरवाट का मन्दिर कहाँ स्थित है ?**

    (क) वियतनाम (ख) थाइलैण्ड

    (ग) लाओस (ग) कमबोडिया

3. **हिन्द-चीन पहुँचने वाले प्रथम व्यापारी कौन थे ?**

    (क) इंग्लैण्ड (ख) फ्रांसीसी

    (ग) पुर्तगाली (ग) डच

4. **हिन्द-चीन में बसने वाले फ्रांसीसी कहे जाते थे ?**

    (क) फ्रांसीसी (ख) शासक वर्ग

    (ग) कोलोन (ग) जेनरल

5. **नरोत्तम सिंहानुक कहाँ के शासक थे ?**

    (क) वियतनाम (ख) लाओस

    (ग) थाइलैण्ड (ग) कम्बोडिया

6. "द हिस्ट्री ऑफ द लॉस ऑफ वियतनाम" किसने लिखा

(अ) हो-ची-मिन्ह (ब) फान-वोई-चाऊ

(स) कुआंग (द) त्रियु

7. मार्च 1946 में फ्रांस एवं वियतनाम के बीच होने वाला समझौता किस नाम से जाना जाता है।

(अ) जेनेवा समझौता (ब) हनोई समझौता

(स) पेरिस समझौता (द) धर्म निरपेक्ष समझौता

8. किस प्रसिद्ध दार्शनिक ने एक अदालत लगाकर अमेरिका को वियतनाम युद्ध के लिए दोषी करार दिया ?

(अ) रसेल (ब) हो ची मिन्ह

(स) नरोत्तम सिंहानुक (द) रूसो

9. हिन्द-चीनी क्षेत्र में अंतिम युद्ध समाप्ति के समय में अमेरिकी राष्ट्रपति कौन थे?

(अ) वाशिगंटन (ब) निक्सन

(स) जार्ज बुस (द) रुजवेल्ट

10. होआ-होआ आन्दोलन किस प्रकृति का था?

(अ) क्रांतिकारी (ब) धार्मिक

(स) सम्राज्यवादी समर्थक (द) क्रांतिकारी धार्मिक

11. रिक्त स्थानों को भरें-

i. 12वीं शताब्दी में राजा सुर्य वर्मा द्वितीय ने .... का निर्माण करवाया था।

ii. .... समझौते ने पूरे वियतनाम को दो हिस्से में बाँट दिया।

iii. हो ची मिन्ह का दूसरा नाम .... था।

vi. दिएन-विएन फु के युद्ध में .... बुरी तरह हार गए।

v. अनामी दल का संस्थापक .... था।

अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

(i) एक तरफा अनुबंध व्यवस्था क्या थी ?

(ii) बाओदायी कौन था ?

(iii) हिन्द–चीन का अर्थ क्या है ?

(iv) जेनेवा समझौता कब और किनके बीच हुआ ?

(v) होआ–होआ आन्दोलन की चर्चा करें ?

लघु उत्तरीय प्रश्न

(i) हिन्द–चीन मे फ्रांसीसी प्रसार का वर्णन करें ?

(ii) रासायनिक हथियारों एवं एजेन्ट ऑरेंज का वर्णन करें ?

(iii) हो–ची–मिन्ह के विषय में संक्षिप्त में लिखें ?

(iv) हो–ची–मिन्ह मार्ग क्या है, बतावें ?

(v) अमेरिका हिन्द–चीन मे कैसे धुसा, चर्चा करें ?

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. हिन्द–चीन मे उपनिवेश स्थापना का उद्देश्य क्या था ?
2. माई ली गाँव की घटना क्या थी ? इसका क्या प्रभाव पड़ा
3. राष्ट्रपति निक्सन के हिन्द–चीन में शांति के संबंध में पाँच सूत्री योजना क्या थी? इसका क्या प्रभाव पड़ा ?
4. फ्रांसीसी शोषण के साथ–साथ उसके द्वारा किये गये सकारात्मक कार्यों की समीक्षा करें।
5. हिन्द–चीन में राष्ट्रवाद के विकास का वर्णन करें।

वर्ग परिचर्चा

1. राष्ट्रवाद पर वर्ग में परिचर्चा।
2. हो–ची–मिन्ह मार्ग के संरचना बनावट और महत्व पर चर्चा करें।

इकाई : 4

भारत में राष्ट्रवाद

राष्ट्रवाद का शाब्दिक अर्थ होता है – ''राष्ट्रवाद चेतना का उदय'' । ऐसी राष्ट्रीय चेतना का उदय जिसमें राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक एकीकरण का आभास हो। 19 वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध तक भारत छोटे-छोटे राज्यों में विभक्त था। उस समय भारत को एकता के सूत्र में बाँधने वाले तत्वों का अभाव था। समान न्याय व्यवस्था का अभाव था। राष्ट्रीय एकता में कमी का अर्थ है उस अनुभूति का अभाव जो भारत में रहने वाले सभी लोगों को समान लक्ष्य एवं समान सरोकार से जोड़े । 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में कई ऐसे तत्व उभरे जिससे ये कमी दूर होती गयी एवं भारत एक सम्पूर्ण संगठित राष्ट्र का स्वरूप ग्रहण करने लगा। यही राष्ट्रवाद है एवं इसी राष्ट्रवाद की अभिव्यक्ति स्वतंत्रता संग्राम है।

19वीं शताब्दी में राष्ट्रीय चेतना का उदय मुख्य रूप से अंग्रेजी शासन व्यवस्था का परिणाम था। ब्रिटिश शासन ने जो परिवर्तन राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक क्षेत्र में किये थे उसके परिणामस्वरूप भारतीय जनता के सभी वर्गों का शोषण हुआ था, जिससे जनता के बीच असंतोष की भावना ने एक व्यापक रूप लिया। दूसरी तरफ अंग्रेजों ने डाक और तार व्यवस्था, रेल, छापेखाने, समरूप प्रशासनिक व्यवस्था आदि का विकास किया। यद्यपि इनका विकास एक सुचारु प्रशासन चलाने की दृष्टि से किया गया था, तथापि इन सभी ने राष्ट्रीय चेतना के उदय में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

राष्ट्रवाद के उदय के कारण :

भारत में राष्ट्रवाद का उदय विविध शक्यिों और कारणों के संयोग का परिणाम था, जिसे निम्नलिखित वर्गों में बाँटकर अध्ययन प्राप्त किया जा सकता है –

राजनीतिक कारण :

भारत में राष्ट्रीय चेतना जागृत करने में विभिन्न कारणों का योगदान रहा, परन्तु सभी किसी न किसी रूप मे ब्रिटिश सरकार की प्रशासनिक नीतियों से संबंधित थे। ब्रिटिश शासक साम्राज्यवादी

नीति के पोषक थे। सन् 1858 में महारानी विक्टोरिया के उद्घोषणा के साथ ही सभी देशी राज्य ब्रिटिश साम्राज्य के अधीन आ गए। इस घटना ने कुछ हद तक भारत को एक राष्ट्रीय स्वरूप प्रदान किया। उसके बाद भारत में राष्ट्रीयता की लहर आई, जिसको कुचलने के लिए सरकार ने कई दमन चक्र चलाए।

सन् 1878 में तत्कालीन वायसराय लार्ड लिटन ने 'वर्नाक्युलर ऐक्ट' पारित कर प्रेस पर कठोर प्रतिबन्ध लगाया तथा सन् 1879 में 'आर्म्स ऐक्ट' के द्वारा भारतीयों के लिए अस्त्र-शस्त्र रखना गैर कानूनी घोषित कर दिया गया। सन् 1883 में 'इलबर्ट बिल' का पारित होना भी राष्ट्र को बल दिया इस बिल का उद्देश्य भारतीय और यूरोपीय व्यक्तियों के फौजदारी मुकदमों की सुनवाई सामान्य न्यायालय में करना था और उस विशेषाधिकार को समाप्त करना था, जो यूरोप के निवासियों को अभी तक प्राप्त था और जिसके अन्तर्गत उनके मुकदमें सिर्फ यूरोपीय जज ही सुन सकता था। यूरोपीय जनता ने इसका विरोध किया और सरकार को इस बिल को वापस लेना पड़ा। इसी तरह सन् 1899 में लार्ड कर्जन ने 'कलकत्ता कारपोरेशन' ऐक्ट पारित किया जिससे नगर पालिका में निर्वाचित सदस्यों की संख्या में कमी और गैर निर्वाचित सदस्यों की संख्या में वृद्धि की गयी। सन् 1904 में विश्वविद्यालय अधिनियम द्वारा विश्वविद्यालयों पर सरकारी नियंत्रण बढ़ा दिया गया। सन् 1905 में बंगाल का विभाजन कर्जन ने साम्प्रदायिकता के आधार पर तर्क देते हुए कर दिया कि इससे प्रशासनिक सुविधा होगी। इससे भारतीयों में काफी रोष पैदा हुआ और राष्ट्रवादी भावना बलवती हुयी। आगे चलकर 1911 में ब्रिटिश सरकार को इसे रद्द करना पड़ा। सन् 1907 ई० का 'देश द्रोही सभा अधिनियम' सभाओं पर रोक लगाने के लिए तथा 1910 में 'इंडियन प्रेस ऐक्ट' उत्तेजित लेख छापने वाले को दंडित करने के लिए पारित किया गया।

डलहौजी की संरचनात्मक योजना के अन्तर्गत भारत में रेलवे, टेलीग्राफ लाइन एवं व्यवस्थित परिवहन व्यवस्था की शुरूआत हुयी। इन सबके द्वारा सम्पूर्ण भारत के क्षेत्रों के बीच की दूरियाँ घटने लगी, स्थानीयता समाप्त हुयी, एक केन्द्र दूसरे केन्द्र से जुड़ा, एक राज्य दूसरे राज्य से जुड़ा, और राष्ट्रवाद के विकास में सहायक बना।

भारत में अंग्रेजी शिक्षा नीति ने राष्ट्रवाद के उदय में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इससे प्रजातंत्र एवंधुनिक प्रगति की जानकारी मिली। मानवतावाद, व्यक्तिवाद, यूरोपीय पुर्नजागरण, फ्रांस की राज्य क्रांति एवं अमेरिकी स्वतंत्रता संग्राम की जानकारी मिली। लार्ड मान्टेस्क्यू एवं रूसो के विचार से भारतीय प्रभावित हुए। अब वे अपने उत्तरदायित्व एवं नवीन कानून से अवगत होकर अधिकार की बात करने लगे।

आर्थिक कारण :

भारत में अंग्रेजों ने जो आर्थिक नीतियाँ अपनायी इसके परिणामस्वरूप भारतीय कृषि और कुटीर उद्योगों को काफी धक्का लगा। ब्रिटिश आर्थिक नीतियों के परिणामस्वरूप किसानों, कामगारों और अन्य वर्गों की स्थिति निरन्तर बिगड़ती चली गयी। अंग्रेजी की कृषि नीति मुख्य रूप से अधिकतम भू-राजस्व (लगान) एकत्रित करने के उद्देश्य से प्रेरित थी। स्थायी बन्दोबस्त के द्वारा जमीन्दारों को एक निश्चित भू-राजस्व कर के रूप में सरकार को देना पड़ता था। जमीन्दार किसानों से उससे कहीं अधिक लगान वसूल करते थे, जितना कि इन्हें सरकार को देना होता था। जब भी किसान जमीन्दार या महाजनों द्वारा शोषण के विरुद्ध आवाज उठाते थे तब सरकार नगदी फसलों (नील, कपास, गन्ना आदि) की उगाही अपनी मनमानी कीमतों पर करती थी और इन फसलों का प्रयोग अंग्रेज अपने उद्योग में कच्चे माल के रूप में करते थे। कपास और नील उपजाने वाले किसान इस नीति से अधिक पीड़ित थे।

उद्योग के क्षेत्र में भी मजदूर, कामगारों को भी अनेक मुसीबतों का सामना करना पड़ रहा था। अंग्रेजों ने भारत में बने कपड़े के निर्यात पर कई प्रकार के प्रतिबन्ध लगा दिए थे, जबकि इंग्लैण्ड में मशीन से बने कपड़े की भारत में बिक्री पर किसी भी प्रकार का कर या प्रतिबन्ध नहीं था। सरकार द्वारा सन् 1882 में सूती वस्त्रों पर से आयात कर हटा लिया गया था। भारत में मशीन से बना सामान इंग्लैण्ड से आता था और यहाँ पर कारखाना लगाये जाने की प्रक्रिया अत्यन्त धीमी थी क्योंकि सरकार भारत में औद्योगीकरण के पक्ष में नहीं था। ऐसी परिस्थिति में कामगारों का बेरोजगार होना स्वाभविक था।

कृषि और उद्योग के संक्षिप्त विवरण से हमने यह देखा कि भारतीय समाज का प्रत्येक वर्ग अंग्रेजी शासन के अधीन कठिनाइयों का सामना कर रहा था। जनता में असंतोष की भावना एकाएक राष्ट्रीय चेतना को जन्म नहीं देती, वास्तव में यह असंतोष विभिन्न समयों पर विद्रोह के विभिन्न पहलुओं के रूप में उभरकर सामने आया। जब से कम्पनी का शासन प्रारम्भ हुआ तब से लेकर 1857 ई० के विद्रोह तक कई विद्रोह हुए। 1857 के बाद विद्रोह की बारम्बारता जिसमें नील विद्रोह एवं पवना विद्रोह प्रमुख है। 1857 ई० के विद्रोह ने इस ओर सोचने को बाध्य कर दिया कि आखिर सफलता के लिये आवश्यक योजना क्या है? भारतीय इस निष्कर्ष पर पहुँच गये कि लक्ष्य की स्पष्टता एवं मजबूत संस्था परिपक्व नेतृत्व, लड़ाई के तरीके में शुद्धता और सुनियोजित आन्दोलन के जरिये स्वतंत्रता प्राप्त की जा सकती है।

समााजिक कारण :

राष्ट्रवाद के उदय में ब्रिटिश सरकार की प्रजाति भेद की नीति भी महत्वपूर्ण कारक थी। अंग्रेज अपने को श्रेष्ठ समझते थे एवं भारतीयों को हेय दृष्टि से देखते थे। यहाँ तक कि विदेशों में भी भारतीयों के साथ अच्छा वर्त्ताव नहीं किया जाता था। दक्षिण अफ्रीका के भारतीयों पर कई तरह के कानूनी प्रतिबन्ध लगाये जा चुके थे। भारत में तो उनके साथ भारतीयों को रेल गाड़ी में यात्रा नहीं करने दिया जाता था। रेलगाड़ी में, क्लबों में, सड़कों पर और होटलों में अंग्रेज भारतीयों के साथ दुर्व्यवहार करते थे। इससे भारतीय जनता में अंग्रेजों के प्रति घृणा का भाव जागृत हुआ
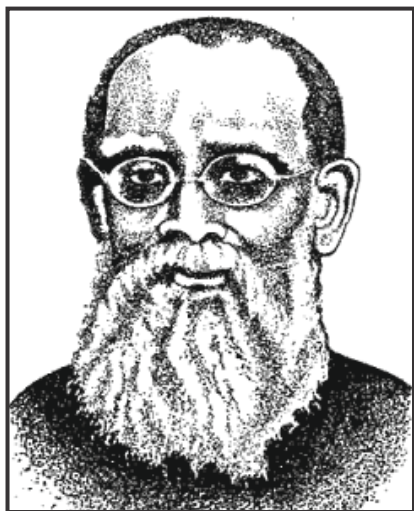
सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, प्रथम I.C.S

सरकारी सेवाओं में अंग्रेजों की पक्षपातपूर्ण नीति ने राष्ट्रवाद की भावना को प्रेरित किया। सरकार द्वारा ऊँचे-ऊँचे सरकारी पदों से भारतीयों को अलग रखनेका हर सम्भव प्रयास किया जाता था।

भारत का शासन भार अधिकतर इंडियन सिविल सर्विस के अधिकारियों के हाथ में था। सैद्धांन्तिक रूप से इस सेवा के चुनाव की प्रतियोगिता परीक्षा में भारतीय उम्मीदवार भी भाग ले सकते थे, किन्तु इस सेवा में भारतीयों का चुनाव बहुत कठिन था। परीक्षा का आयोजन इंगलैंड में होने के कारण अधिकतर भारतीयों के लिए उसमें सम्मिलित होना कठिन था। यदि कोई भारतीय सफल हो भी गया तो उसकी नियुक्ति में बाधा उत्पन्न करके उसे पदच्यूत करने की सरकार द्वारा कोशिश की जाती थी। सुरेन्द्रनाथ बनर्जी के साथ उन्होंने ऐसा ही वर्त्ताव किया। अतः भारतीय शिक्षित वर्ग एवं मध्यम वर्ग ने अंग्रेजी शासन के खिलाफ आवाज बुलन्द किया।

धार्मिक कारण :

विश्व में किसी भी देश में राष्ट्रवाद उत्पन्न करने में धर्म सुधार आन्दोलन ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा किया है। 19वीं शताब्दी में अनेक महापुरूषों ने सामाजिक और धार्मिक कुरीतियों के खिलाफ एक आन्दोलन की शुरूआत की। इन महापुरूषों में राजा राम मोहन राय, देवेन्द्र नाथ ठाकुर, ईश्वरचन्द विद्यासागर, स्वामी दयानन्द सरस्वती, रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द के नाम उल्लेखनीय हैं। इसके अलावा विलियम जोन्स, मैक्समूलर, चार्ल्स विलकिन्सन आदि यूरोपिय

विद्वानों ने भारतीय धर्मग्रन्थों का अंग्रेजी में अनुवाद किया। इससे भारतीयों के हृदय में अपने धर्म के प्रति निष्ठा की भावना जागृत हुयी। इन सुधारकों ने एकता, समानता एवं स्वतंत्रता का पाठ पढ़ाकर भारतीय जन जीवन में नई चेतना का मंत्र फूंक दिया, फलतः राष्ट्रवाद का उदय हुआ।

सन् 1885 में अखिल भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का गठन राष्ट्रवाद के उदय की परिणति थी। प्रारम्भ में यह संगठन सिर्फ सुधारों की मांग करता रहा, लेकिन 1914 ई० तक अंग्रेजह सरकार की दमनकारी नीतियों ने कांग्रेस के सदस्यों को उग्र बना दिया और बाल गंगाधर तिलक, बिपिन चन्द्र पाल तथा लाला लाजपत राय (बाल–पाल–लाल) के नेतृत्व में राष्ट्रीय आन्दोलन की शुरुआत हुयी। तभी 1914 में प्रथम विश्वयुद्ध आरम्भ हुआ और अंग्रेजी सरकार ने भारत को भी एक युद्धकारी देश घोषित किया।

प्रथम विश्वयुद्ध के कारण और परिणाम का भारत से अंतर्सम्बन्ध :

(क) प्रथम विश्वयुद्ध का संक्षिप्त परिचय – प्रथम विश्वयुद्ध विश्व इतिहास की एक महत्वपूर्ण घटना थी। यह प्रत्यक्षतः यूरोपीय देशों की औपनिवेशिक साम्राज्यवादी प्रतिस्पर्धा का परिणाम था। 1914 में प्रारंभ होनेवाला यह युद्ध दो गेटों, एक, फ्रांस, ब्रिटेन, रूस, (मित्र राष्ट्र) और 1917 के बाद उसका सहयोगी बना अमेरिका और दूसरे जर्मनी, ऑस्ट्रिया–हंगरी तथा इटली (केन्द्रीय शक्तियाँ) के बीच चार वर्षों तक लड़ा गया। इस युद्ध ने प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से सम्पूर्ण विश्व के राजनैतिक एवं आर्थिक स्थिति को प्रभावित किया।

(ख) कारणों के साथ भारत का अंतर्सम्बन्ध – प्रथम विश्वयुद्ध औद्योगिक क्रांति के परिणामस्वरूप उत्पन्न औपनिवेशिक व्यवस्था, भारत सहित अन्य एशियाई तथा अफ्रीकी देशों में उसकी स्थापना और उसे सुरक्षित रखने के प्रयासों के क्रम में लड़ा गया। ब्रिटेन के सभी उपनिवेशों मे भारत सबसे महत्वपूर्ण था और इसे प्रथम महायुद्ध के अस्थिर माहौल में भी हर हाल में सुरक्षित रखना

लाला हरदयाल

उसकी पहली प्राथमिकता थी । युद्ध आरंभ होते ही ब्रिटिश सरकार ने घोषणा की कि भारत में ब्रिटिश शासन का लक्ष्य यहाँ क्रमश: एक जिम्मेवार सरकार की स्थापना करना है । अत: 1916 में सरकार ने भारत में आयात शुल्क लगाया ताकि भारत में कपड़ा उद्योग का विकास हो सके और उसका फायदा अंग्रेजों को मिल सके।

(ग) प्रथम महायुद्ध के समय का भारतीय घटनाक्रम–विश्वयुद्ध के समय भारत में होनेवाली तमाम घटनाएँ युद्ध से उत्पन्न परिस्थितियों की ही देन थी । इसने भारत में एक नयी आर्थिक और राजनैतिक स्थिति पैदा की जिससे भारतीय राष्ट्रवाद ज्यादा परिपक्व हुआ। युद्ध प्रारम्भ होने के साथ ही तिलक और गांधी जैसे राष्ट्रवादी नेताओं ने ब्रिटिश सरकार के युद्ध प्रयासों में हर संभव सहयोग दिया, क्योंकि उन्हें सरकार के स्वराज सम्बन्धी आश्वासन पर भरोसा था । युद्ध के आगे बढ़ने के साथ ही भारतीयों का भ्रम टूटा । रक्षा व्यय में इजाफा के साथ ही भारतीयों पर कर का बोझ बढ़ाया गया, जिससे मंहगाई का दर भी काफी बढ़ा। तत्कालीन राष्ट्रवादी नेताओं ने सरकार पर स्वराज प्राप्ति के लिए दबाव बनाना शुरू किया सन् 1915-17 के बीच एनी बेसेन्ट और तिलक ने आयरलैण्ड से प्रेरित होकर भारत में होमरूल लीग आन्दोलन आरंभ किया । युद्ध के इसी काल में क्रांतिकारी आन्दोलन का भी भारत और विदेशी धरती दोनों जगह पर विकास हुआ । भारत में क्रांतिकारी संगठन बंगाल, महाराष्ट्र और पंजाब समेत सम्पूर्ण उत्तरी भारत तक फैल गया तो वही अमेरिका और कनाडा में बसे भारतीय क्रांतिकारियों ने लाला हरदयाल के प्रयास से 1913 में गदर पार्टी को स्थापित कर भारत में सशस्त्र क्रांति का प्रयास किया । प्रथम विश्वयुद्ध के वर्षों में ही 1916 में दो महत्वपूर्ण राजनैतिक घटनाएँ हुई, पहला, यह कि कांग्रेस के दोनों दल गरम और नरम दल एक हो गए । दूसरे कांग्रेस और मुस्लिम लीग के बीच साझा राजनैतिक आन्दोलन चलाने को लेकर समझौता हुआ । युद्ध काल में ही भारतीय राजनीति के रंगमंच पर महात्मा गांधी का उत्कर्ष उनके द्वारा संचालित तीन सफल सत्याग्रहों, चम्पारण, खेड़ा और अहमदाबाद आन्दोलन के बाद हुआ ।

(घ) प्रथम विश्वयुद्ध का भारत पर प्रभाव – महायुद्ध के बाद भारत की आर्थिक स्थिति बिगड़ी–पहले तो कीमतें बढ़ी और फिर आर्थिक गतिविधियाँ मंद होने लगी, जिससे नगरों में रहने वाले शिक्षित भारतीय लगातार बेरोजगार होने लगे। महंगाई अपने चरम पर पहुँच गया जिसने मजदेरों, दस्तकारों और किसानों को सबसे ज्यादा प्रभावित किया। युद्ध के दौरान इंग्लैंड की अर्थव्यवस्था संकट से घिर गया। भारत में होने वाला उनका आयात रुक गया, जिसके कारण भारतीय उद्योग फले–फुले थे। भारतीय उद्योगपतियों का एक वर्ग इस परिस्थिति में उदित हुआ। लेकिन जैसे ही युद्ध समाप्त हुआ, स्थितियाँ बदल गई । पुनः भारत में विदेशी पूंजी का प्रभाव बढ़ा। भारतीय उद्योगपति सरकार से चाहते थे कि विदेशी वस्तुओं के आयात पर सरकार भारी शुल्क लगाए ताकि उनका घरेलू उद्योग बढ़े, लेकिन ऐसा नहीं हुआ। इस परिस्थिति में उन्होंने महसूस किया कि एक मजबूत राष्ट्रीय आन्दोलन द्वारा दबाव बनाकर ही यह प्राप्त किया जा सकता है।

प्रथम महायुद्ध ने भारत सहित पूरे एशिया और अफ्रीका में राष्ट्रवादी भावना को प्रबल बनाया। युद्ध को समय मित्र राष्ट्रों ने दुनिया के सभी राष्ट्रों के लिए जनतंत्र तथा राष्ट्रीय आत्मनिर्णय का एक नया युग आरंभ करने का वचन दिया था। लेकिन युद्ध के बाद उन्होंने अपना उपनिवेश खत्म करने के **बजाय** उस पर और कठोर नियंत्रण स्थापित करने का प्रयास किया। भारत में इसका उदाहरण है रौलेट एक्ट का 1919 में पारित होना, जिसमें किसी भारतीय को बिना अदालत में मुकदमा चलाए जेल में बन्द किया जा सकता था। इसी कानून के विरोध के क्रम में 13 अप्रैल 1919 का प्रसिद्ध जालियांवाला बाग हत्याकांड हुआ और पूरे पंजाब में मार्शल लॉ लगा दिया गया जिसमें लोगों पर पाशविक अत्याचार किया गया।

महायुद्ध के बाद भारत में राष्ट्रवाद की जो लहर उठी उससे प्रभावित होकर भारत में ब्रिटिश सरकार ने शासन में कुछ सुधार करने का प्रयास अवश्य किया, जो 1919 के मांटेग्यू–चेम्सफोर्ड योजना या भारत सरकार अधिनियम के नाम से जाना गया। इस प्रस्ताव में प्रांतीय विधायी परिषदों का आकार बढ़ा दिया गया तथा निश्यित किया गया कि उनके अधिकांश सदस्य चुनकर आए। केन्द्र में दोनों सदनों लेजिस्लेटिव असेम्बली (निचले सदन) और कौंसिल ऑफ स्टेट्टस (उच्च सदन) में सदस्यों की संख्या बढ़ाई गई, मगर भारतीय राष्ट्रवादी इन मामूली छूटों से बहुत आगे बढ़ चुके थे और स्वराज या राजनीति की छाया मात्र से सन्तुष्ट होने वाले नहीं थे। अतः वे लोग निर्णायक राजनैतिक संघर्ष के लिए मानसिक रूप से तैयार हो गए।

प्रथम महायुद्ध का प्रत्यक्ष प्रभाव खिलाफत आन्दोलन के रूप में सामने आया। प्रथम महायुद्ध में ऑटोमन तुर्की जो इस्लामिक दुनिया का राजनैतिक और आध्यात्मिक नेता (खलीफा) था, की हार हो चुकी थी । ऐसी अफवाहें फैली कि ऑटोमन सम्राट पर एक सख्त शांति सन्धि थोपी जाएगी इससे भारतीय मुसलमानों में नाराजगी बढ़ी । उधर, 1916 में लीग कांग्रेस समझौता (लखनऊ समझौता) ने मुसलमानों और हिन्दुओं के लिए साझी राजनैतिक जमीन पहले ही तैयार कर दिया था । इस स्थिति में गांधीजी ने खिलाफत के प्रश्न को भावी राजनैतिक आन्दोलन के लिए एक महत्वपूर्ण मुद्दा बनाते हुए असहयोग आन्दोलन की रूपरेखा तैयार की ।

महायुद्ध का एक महत्वपूर्ण परिणाम यह भी हुआ कि गोरों की प्रतिष्ठा घटी। साम्राज्यवाद के आरंभ से ही यूरोपीय शक्तियों ने अपनी सत्ता बनाए रखने के लिए जातीय सांस्कृतिक श्रेष्ठता का विचार दिया था । लेकिन युद्ध के दौरान दोनों पक्षों ने एक-दूसरे के खिलाफ धुआंधार प्रचार किया तथा अपने विरोधियों द्वारा उपनिवेशों में बर्बर और असभ्य व्यवहार का पर्दाफाश किया। स्वाभाविक तौर पर उपनिवेशों (भारत) की जनता ने दोनों पक्षों पर विश्वास किया और गोरों की श्रेष्ठता का भय उनके मन से उठने लगा ।

प्रथम विश्वयुद्ध के बाद उत्पन्न परिस्थितियों ने राष्ट्रीय आन्दोलन में गांधीवादी चरण (1919-47) के लिए पृष्ठभूमि के निर्माण का कार्य किया । जनवरी 1915 में दक्षिण अफ्रीका से लौटने के बाद गांधीजी ने रचनात्मक कार्यों के लिए अहमदाबाद में साबरमती आश्रम की स्थापना की। चम्पारण एवं खेड़ा में कृषक आन्दोलन और अहमदाबाद में श्रमिक आन्दोलन का नेतृत्व प्रदान कर गांधीजी ने प्रभावशाली राजनेता के रूप में अपनी राष्ट्रीय पहचान बनाई। प्रथम विश्वयुद्ध के अन्तिम दौर में इन्होंने कांग्रेस, होमरूल एवं मुस्लिमलीग के नेताओं के साथ भी घनिष्ठ संबंध स्थापित किए। ब्रिटिश सरकार की उत्पीड़नकारी नीतियों एवं रौलेट एक्ट के विरोध में इन्होंने सत्याग्रह की शुरुआत की ।

रॉलेट एक्ट के विरोध में सत्याग्रह :

बढ़ती हुई क्रांतिकारी घटनाओं एवं असंतोष को दबाने के लिए लार्ड चेम्सफोर्ड ने न्यायाधीश सिडनी रौलेट की अध्यक्षता में एक समिति की नियुक्ति की। समिति ने क्रांतिकारी गतिविधियों को रोकने के लिए निरोधात्मक एवं दण्डात्मक दोनों प्रकार के विशेष विधेयकों का सुझाव दिया । समिति की अनुशंसा पर क्रांतिकारी एवं अराजकता अधिनियम को 21 मार्च 1919

महात्मा गाँधी

को केन्द्रीय विधान परिषद में पारित किया गया। इस अधिनियम के अन्तर्गत एक विशेष न्यायालय के गठन का प्रावधान था जिसके निर्णय के विरुद्ध कोई अपील नहीं की जा सकती थी। किसी भी व्यक्ति को अमान्य साक्ष्य और बिना वारंट के भी गिरफ्तार किया जा सकता था। महात्मा गांधी सरीखे नेताओं ने इसे अनुचित, स्वतंत्रता का हनन करनेवाला तथा व्यक्ति के मूल अधिकारों की हत्या करनेवाला बताया। इस रौलेट एक्ट के विरोध के लिए गांधी जी की अध्यक्षता में एक सत्याग्रह सभा आयोजित की गई और गिरफ्तारियाँ भी दी गई । 6 अप्रैल, 1919 ई० को देशव्यापी हड़ताल आयोजित की गई। कई जगहों पर आन्दोलन हिंसात्मक हो गया। विरोध की अन्तिम परिणति 13 अप्रैल 1919 ई० को जातियांवाला बाग हत्याकांड के रूप में हुआ।
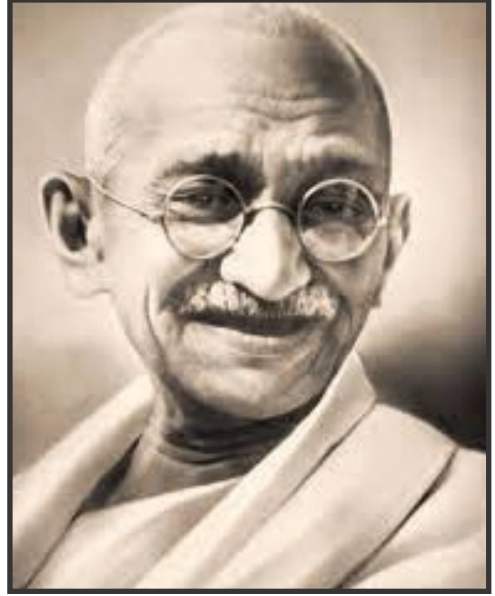
जालियांवाला बाग हत्याकांड :

विश्वयुद्ध जनित घटनाओं का प्रभाव पंजाब में विशेष रूप से परिलक्षित होने के कारण वहाँ का जनमानस आन्दोलित था। 6 अप्रैल की देशव्यापी हड़ताल के बाद 9 अप्रैल, 1919 को दो स्थानीय नेताओं डा० सत्यपाल एवं किचलू को गिरफ्तार कर लिया गया। ये दोनों कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशन के स्वागत समिति के सदस्य भी थे। इनकी गिरफ्तारी के विरोध में 13 अप्रैल 1919

इसी बीच भारतीय
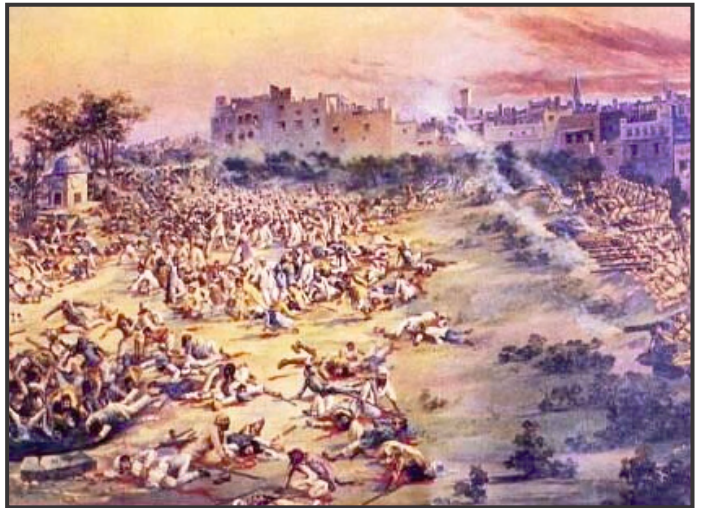
को जालियाँवाला बाग में एक सार्वजनिक सभा बुलाई गई थी। जहाँ जिला मजिस्ट्रेट जनरल ओ डायर ने बिना किसी चेतावनी के शांतिपूर्वक चल रही सभा पर गोलियां चलाकर लगभग 1000 लोगों की हत्या कर दी। बहुत से लोग घायल भी हुए। जालियाँवाला बाग नरसंहार के बाद पंजाब में मार्शल-लॉ लगाकर आतंक का माहौल कायम कर दिया गया।

इस नरसंहार के विरोध में रवीन्द्रनाथ टैगोर ने 'नाइट' की उपाधि त्याग दी। कांग्रेस के पूर्व अध्यक्ष शंकरन नायर ने वायसराय की कार्यकारिणी से त्याग पत्र दे दिया। गांधी जी ने कैसर-ए-हिन्द की उपाधि त्याग दी। जालियाँवाला बाग हत्याकांड ने राष्ट्रीय आन्दोलन में एक नई जान फूंक दी।

खिलाफत आन्दोलन :

प्रथम विश्वयुद्ध में ब्रिटेन के खिलाफ तुर्की की पराजय के फलस्वरूप ऑटोमन साम्राज्य को विघटित कर दिया गया था। तुर्की के सुल्तान को अपने शेष प्रदेशों में भी अपनी सत्ता के प्रयोग से वंचित कर दिया गया था। इसे मित्र राष्ट्रों द्वारा नियुक्त एक उच्चायोग के अधीन कर दिया गया था। चूंकि ऑटोमन साम्राज्य का शासक, तुर्की का सुल्तान इस्लामिक संसार का खलीफा हुआ करता था, अतः भारत के मुसलमानों को तुर्की के साथ किया जानेवाला यह दुर्व्यवहार पसन्द नहीं था। भारतीय मुसलमान प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान किए जानेवाले वादा खिलाफी को विश्वासघात के रूप में देखते थे। अतः 1920 के प्रारंभ में भारतीय मुसलमानों ने तुर्की के प्रति ब्रिटेन को अपनी नीति बदलने के लिए बाध्य करने हेतु जोरदार आन्दोलन प्रारंभ किया जिसे 'खिलाफत आन्दोलन' कहा गया।

महात्मा गांधी और भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अमृतसर अधिवेशन (दिसम्बर 1919) में समर्थन पाकर यह आन्दोलन काफी सशक्त हो गया। नवम्बर 1919 में ही महात्मा गांधी अखिल भारतीय खिलाफत आन्दोलन के अध्यक्ष बन चुके थे। इसे गांधी जी ने भी हिन्दू-मुस्लिम एकता के महान अवसर के रूप में देखा। खिलाफत आन्दोलनकारियों ने तीन सूत्री मांग पत्र तैयार किया-(i) तुर्की के सुल्तान (खलीफा) को पर्याप्त लौकिक अधिकार प्रदान किया जाए ताकि वह इस्लाम की रक्षा कर सके।

(ii) अरब प्रदेश को मुस्लिम शासन (खलीफा) के अधीन किया जाए।

(iii) खलीफा को मुसलमानों के पवित्र स्थलों का संरक्षक बनाया जाए।

17 अक्टूबर 1919 ई. को पूरे भारत में खिलाफत दिवस मनाया गया।

बीच भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के कलकत्ता अधिवेशन (सितम्बर, 1920) में गांधी जी की प्रेरणा से अन्यायपूर्ण कार्यों के विरोध में दो प्रस्ताव पारित कर असहयोग आन्दोलन चलाने का निर्णय लिया गया। प्रथम, खिलाफत मुद्दे पर ब्रिटिश सरकार का दृष्टिकोण एवं द्वितीय, पंजाब में निर्दोष लोगों की हत्या करनेवाले बर्बर पदाधिकारियों को दंडित करने मे सरकार की विफलता, इन्हीं दो मुद्दों पर विशेष रूप से इस अधिवेशन में चर्चा की गयी।

दिसम्बर 1920 ई० के कांग्रेस के नागपुर अधिवेशन में कलकत्ता अधिवेशन के प्रस्ताव की पुष्टि की गई तथा 'स्वशासन की जगह स्वराज' का लक्ष्य प्रस्तावित किया गया। इस अधिवेशन में कई रचनात्मक कार्यक्रम तैयार किए गए, जिससे कांग्रेस के लक्ष्य प्राप्ति को बल मिला।

असहयोग आन्दोलन (1920-22) :

असहयोग आन्दोलन महात्मा गांधी के नेतृत्व में प्रारंभ किया गया प्रथम जन आन्दोतन था। इस जन आन्दोलन के मुख्यत: तीन कारण थे -

(1) खिलाफत का मुद्दा (2) पंजाब में सरकार की बर्बर कार्रवाइयों के विरुद्ध न्याय प्राप्त करना और अंतत: (3) स्वराज की प्राप्ति करना ।

इस आन्दोलन में दो तरह के कार्यक्रम को अपनाया गया। प्रथमत: अंग्रेजी सरकार को कमजोर करने एवं नैतिक रूप से पराजित करने के लिए **निषेधात्मक** कार्य, जिसके अन्तर्गत उपाधियों एवं अवैतनिक पदों का त्याग करना, सरकारी तथा गैर सरकारी समारोहों का बहिष्कार करना तथा सरकारी स्कूलों एवं कॉलेजों का बहिष्कार करना, विधान परिषद के चुनावों का बहिष्कार तथा विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार के साथ-साथ मेसोपोटामिया में नौकरी से इनकार करना शामिल था।

द्वितीयत:, रचनात्मक कार्यों के अन्तर्गत, न्यायालय के स्थान पर पंचों का फैसला मानना, राष्ट्रीय विद्यालयों एवं कॉलेजों की स्थापना, ताकि सरकारी स्कूलों-कॉलेजों का बहिष्कार करनेवाले विद्यार्थी पढ़ाई जारी रख सकें, स्वदेशी को अपनाना, चरखा को लोकप्रिय बनाना, तिलक स्वराज कोष हेतु एक करोड़ रुपये इकट्ठा करना तथा 20 लाख चरखों का सम्पूर्ण भारत मे वितरण करना शामिल था।

आन्दोलन का आरंभ :

महात्मा गांधी के नेतृत्व मे 1 जनवरी सन् 1921 ई० में असहयोग आन्दोलन की शुरुआत हुई । सम्पूर्ण भारत में असहयोग आन्दोलन को अभूतपूर्व सफलता मिली। विदेशी कपड़ों का बहिष्कार एवं छात्रों द्वारा सरकारी स्कूलों-कॉलेजों का बहिष्कार जारी रहा । आन्दोलन के दौरान राष्ट्रीय विद्यालयों, जामिया-मिलिया इस्लामिया, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय और काशी विद्यापीठ जैसी शैक्षिक संस्थानों की स्थापना की गई । मोतीलाल नेहरू और चितरंजन दास जैसे बड़े-बड़े बैरिस्टरों ने अपनी चलती वकालत को छोड़ आन्दोलन में नेतृत्व प्रदान किया। प्रिंस ऑफ वेल्स का स्वागत 17 नवम्बर 1921 को मुम्बई में राष्ट्रव्यापी हड़ताल के साथ किया गया ।

सरकार ने आन्दोलन को गैरकानूनी करार देते हुए लगभग 30000 आन्दोलनकारियों को गिरफ्तार किया। गिरफ्तारी के विरोध में गांधीजी ने सरकार को सविनय अवज्ञा आन्दोलन की धमकी दी। लेकिन इसी बीच उत्तरप्रदेश के गोरखपुर जिले के चौरी-चौरा में राजनीतिक जुलूस पर पुलिस द्वारा फायरिंग के विरोध में भीड़ ने थाना पर हमला करके 5 फरवरी, 1922 ई. को 22 पुलिसकर्मियों की जान ले ली । गांधीजी समझ गए कि जनता अभी व्यापक सविनय अवज्ञा आन्दोलन के लिए तैयार नहीं है । फलतः 12 फरवरी 1922 को गांधीजी के निर्णयानुसार आन्दोलन को स्थगित कर दिया गया। गांधीजी को ब्रिटिश सरकार द्वारा मार्च 1922 ई. में गिरफ्तार करके 6 वर्षों के कारावास की सजा दी गई ।

असहयोग आन्दोलन के अचानक स्थगित करने और गांधीजी की गिरफ्तारी के फलस्वरूप खिलाफत के मुद्दे का भी अन्त हो गया । हिन्दू-मुस्लिम एकता भंग हो गई तथा सम्पूर्ण भारत में साम्प्रदायिकता का बोलबाला हो गया । न ही स्वराज की प्राप्ति हुई और न ही पंजाब के अन्यायों का निवारण हुआ । लेकिन इन असफलताओं के बावजूद इस आन्दोलन ने महान् उपलब्धि हासिल की। कांग्रेस एवं गांधी में सम्पूर्ण भारतीय जनता का विश्वास जागृत हुआ। समूचा देश पहली बार एक साथ आन्दोलित हो उठा । पूरे देश को एक सूत्र में पिरोने वाली भाषा के रूप में हिन्दी को मान्यता मिली तथा चरखा एवं करघा को भी बढ़ावा मिला ।

सविनय अवज्ञा आंदोलन :

ब्रिटिश औपनिवेशिक सत्ता के खिलाफ गांधीजी के नेतृत्व में 1930 ई. में छेड़ा गया सविनय अवज्ञा आन्दोलन दुसरा ऐसा जन-आंदोलन था जिसका सामाजिक आधार काफी विस्तृत था ।

असहयोग आंदोलन की समाप्ति के पश्चात् भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन में एक शून्यता की स्थिति पैदा हो गई थी। परन्तु इसी बीच कुछ ऐसे घटनाक्रम की पुनरावृत्ति हुई जिसने मृतप्राय राष्ट्रवाद को एक नया जीवन प्रदान किया। सविनय अवज्ञा आन्दोलन के कारणों को निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत समझा जा सकता है–

(1) साइमन कमीशन – 1919 के ऐक्ट को पारित करते सपय ब्रिटिश सरकार ने यह घोषणा की थीकि 10 वर्षों के पश्चात् पुनः इन सुधारों की समीक्षा होगी। परन्तु समय से पूर्व ही नवम्बर 1927 ई० में ब्रिटिश सरकार ने इंडियन स्टेट्यूटरी कमीशन का गठन किया जिसने आमतौर पर साइमन कमीशन कहा जाता है । यह आयोग 7 सदस्यीय था, जिसके सभी सदस्य अंग्रेज थे। सर जॉन साइमन को इसका अध्यक्ष बनाया गया था । इस कमीशन का उद्देश्य संवैधानिक सुधार के प्रश्न पर विचार करना था । परन्तु भारत में साइमन कमीशन के विरुद्ध त्वरित तथा तीव्र प्रतिक्रिया हुई । विरोध का मुख्य कारण कमीशन में एक भी भारतीय को नहीं रखा जाना तथा भारत के स्वशासन के संबंध में निर्णय विदेशियों द्वारा किया जाना था। 3 फरवरी, 1928 ई० को बम्बई पहुँचने पर साइमन कमीशन का स्वागत काले झंडों, हड़तालों और प्रदर्शनों से हुआ। प्रदर्शनकारियों ने साइमन वापस जाओ (Simon go Back) के नारे लगाए। इस प्रकार साइमन कमीशन विरोधी आंदोलन ने तात्कालिक रूप में एक व्यापक राजनीतिक संघर्ष को जन्म दिया। अब एक बार फिर देश संघर्ष के लिए कमर कस चुका था।

(2) नेहरू रिपोर्ट – साइमन कमीशन के बहिष्कार के समय तत्कालीन भारत सचिव लार्ड बिरकनहैड ने भारतीयों को एक ऐसे संविधान के निर्माण की चुनौती दी जो सभी दलों एवं ुटों को मान्य हो । भारत सचिव की चुनौती का जवाब देने के लिए कांग्रेस ने फरवरी 1928 में दिल्ली में एक सर्वदलीय सम्मेलन का आयोजन किया। इस सम्मेलन में मोतीलाल नेहरू को अध्यक्ष बनाया गया। इस समिति ने ब्रिटिश सरकार से 'डोमिनियन स्टेट' की दर्जा देने की मांग की जिससे कांग्रेस का एक वर्ग असहमत था। यद्यपि नेहरू रिपोर्ट स्वीकृत नहीं हो सका, लेकिन इसने अनेक महत्वपूर्ण निर्णय को जन्म दिया। सांप्रदायिकता की भावना जो अन्दर ही थी, अब

उभरकर सामने आ गई। मुस्लिम लीग और हिन्दू महासभा दोनों ने इसे फैलाने में सहयोग अतः गांधी जी ने इससे निपटने के लिए सविनय अवज्ञा का कार्यक्रम प्रस्तुत किया ।

(3) विश्वव्यापी आर्थिक मंदी का प्रभाव–1929-30 की विश्वव्यापी आर्थिक मंदी का प्रभाव भारत की अर्थव्यवस्था पर बहुत बुरा पड़ा । मूल्यों में बेतहाशा वृद्धि हुई । भारत का निर्यात कम हो गया लेकिन अंग्रेजों ने भारत से धन का निष्कासन बंद नहीं किया। अनेक कारखाने बंद हो गए और अनेक पूंजीपतियों की हालत खराब हो गई। किसान वर्ग तो पहले से ही गरीबी की मार झेल रहा था । पूरे देश का वातावरण सरकार के खिलाफ थी। इस प्रकार सविनय अवज्ञा आन्दोलन हेतु एक उपयुक्त अवसर दिखाई पड़ रहा था ।

(4) समाजवाद का बढ़ता प्रभाव – इस समय मार्क्सवाद एवं समाजवादी विचार तेजी से फैल रहे थे। कांग्रेस संगठन के अन्दर भी जबाव महसूस किया जा रहा था। इस दबाव की अभिव्यक्ति कांग्रेस के अन्दर वामपंथ के उदय के रूप मे हुई। इस नई प्रवृति के नेता जवाहरलाल नेहरू और सुभाषचन्द्र बोस थे। अतः वामपंथी दबाव को संतुलित करने हेतु आन्दोलन के नए कार्यक्रम की आवश्यकता थी।

(5) क्रांतिकारी आन्दोलनों का उभार– इस समय भारत की स्थिति विस्फोटक थी। मेरठ षड्यंत्र केश और 'लाहौर षड्यंत्र केस' ने सरकार विरोध विचारधारा को उग्र बना दिया था। बंगाल में भी क्रांतिकारी राष्ट्रवाद की

स्वतंत्रता घोषणा के कुछ महत्वपूर्ण अंश इस प्रकार थे–"हम भारतीय प्रजाजन भी अन्य राष्ट्रों की भाँति अपना जन्मसिद्ध अधिकार मानते हैं कि हम स्वतंत्र होकर रहें। हम यह भी मानते हैं कि यदि कोई सरकार अधिकार छीन लेती है और प्रजा को सताती है तो प्रजा को उस सरकार को बदल देने या मिटा देने का भी अधिकार है। भारत की अंग्रेजी सरकार ने भारत वासियों का अपहरण ही नहीं किया है बल्कि उसका आधार भी गरीबों के रक्त शोषण पर है और उसने आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक दृष्टि से भारत का नाश कर दिया है। अतः हमारा विश्वास है कि भारत को अंग्रेजों से सम्बन्ध विच्छेद कर लेना चाहिए। जिस शासन ने हमारे देश का इस प्रकार सर्वनाश किया है उसके अधीन रहना हमारी राय में मनुष्य और भगवान दोनों के प्रति अपराध है, किन्तु हम यह भी मानते हैं कि हमें हिंसा के द्वारा स्वतंत्रता नहीं मिलेगी। इसलिए हम ब्रिटिश सरकार से यथा सम्भव स्वेच्छापूर्ण किसी भी प्रकार का सहयोग न करने की तैयारी करेंगे और सविनय अवज्ञा एवं करबन्दी तक के साज सजायेंगे ....।"

गतिविधियाँ एक बार फिर उभरी। अप्रैल 1930 में चटगांव में सरकारी शस्त्रागार पर क्रांतिकारियों ने योजनाबद्ध ढ़ंग से एक छापा मारा जिसका नेतृत्व सूर्यसेन कर रहे थे। इनका उपनाम 'मास्टर दा' था।

(6) पूर्ण स्वराज्य की मांग–दिसम्बर 1929 ई0 में कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन लाहौर में जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता में हुआ । 31 दिसम्बर, 1929 ई. की मध्य रात्रि को रावी नदी के तट पर नेहरू ने तिरंगा झंडा फहराया तथा स्वतंत्रता की घोषणा का प्रस्ताव पढ़ा। 26 जनवरी 1930 को पूर्ण स्वतंत्रता दिवस मनाने की घोषणा की गई । इस प्रकार पूरे देश में उत्साह की एक नई लहर जागृत हुयी ।

(7) गांधी का समझौतावादी रूख- आंदोलन प्रारंभ करने से पूर्व गांधी ने वायसराय इरविन के समक्ष अपनी 11 सूत्रीय मांग को रखा और सरकार द्वारा इसे पूरा किये जाने की स्थिति में प्रस्तावित आंदोलन को स्थगित करने की बात कही । परन्तु इरविन ने मांग को मानना तो अलग गांधी से मिलने से भी इनकार कर दिया। इस बीच सरकार का दमनचक्र भी तेजी से चल रहा था । अत: बाध्य होकर गांधी ने अपना आंदोलन 'दांडी मार्च' से आरंभ करने का निश्चय किया।

दांडी यात्रा (12 मार्च से 6 अप्रैल 1930 ई०) :

दांडी यात्रा

गांधी ने सविनय अवज्ञा आंदोलन की शुरुआत दांडी यात्रा से की। 12 मार्च 1930 अनुयायियों के साथ दांडी समुद्र तट तक गांधी ने ऐतिहासिक यात्रा शुरू की । 24 दिनों में 250 कि.मी. की पदयात्रा के पश्चात् 5 अप्रैल को वे दांडी पहुँचे तथा 6 अप्रैल को समुद्र के पानी से नमक बनाकर कानून का उल्लंघन किया। आंदोलन का कार्यक्रम इय प्रकार था –

(i) हर जगह नमक कानून का उल्लंघन किया जाना ।

(ii) छात्रों द्वारा स्कूल एवं कॉलेजों का बहिष्कार करना ।

(iii) विदेशी कपड़ों को जलाया जाना चाहिए।

(iv) सरकार को कोई कर नहीं अदा किया जाना चाहिए ।

(v) औरतों को शराब की दुकानों के आगे धरना देना चाहिए ।

(vi) वकील अदालत छोड़ें तथा सरकारी कर्मचारी पदत्याग करें ।

(vii) हर घर में लोग चरखा कातें और सूत बनायें ।

(viii) इन सभी कार्यक्रमों में सत्य एवं अहिंसा को सर्वोपरि रखा जाए तभी हम पूर्ण स्वराज्य की प्राप्ति हो सकती है ।

नमक सत्याग्रह का प्रसार :

एक बार जब गांधीजी ने दांडी में नमक कानून तोड़कर इसकी रस्म पूरी कर दी तो नमक कानून तोड़ने का सत्याग्रह पूरे देश में प्रारंभ हो गया ।

- तमिलनाडु में तंजौर के समुद्री तट पर सी. राजगोपालाचारी त्रिचनापल्ली से वेदारण्य तक की नमक यात्रा की ।
- मालाबार में के. केलप्पन ने कालीकट से पोथान्नूर की नमक यात्रा की ।
- पेशावर में खान अब्दुल गफ्फार खान के सामाजिक एवं राजनीतिक सुधारों ने पठानों में राजनीतिक चेतना का प्रसार किया । इन्हें बादशाह खान या सीमांत गांधी के नाम से भी जाना जाता था । उन्होंने 'खुदाई खिदमतगार' नामक स्वयंसेवी संगठन की स्थापना की। इसे 'लाल कुर्ती' के नाम से भी जाना जाता था ।
- शोलापुर में गांधी जी की गिरफ्तारी के विरोध में प्रारंभ हुए आंदोलन ने भयंकर विद्रोह का रूप धारण कर लिया । यहाँ हड़ताल में हजारों मिल मजदूरों ने भाग लिया।
- नमक सत्याग्रह में सबसे तीव्र प्रतिक्रिया धरासणा में हुई । यहाँ सरोजिनी नायडू, इमाम साहब आदि के नेतृत्व में आंदोलन हुआ जिस दौरान व्यापक दमन का सहारा लिया गया।
- बंगाल में चौकीदारी एवं यूनियन बोर्ड विरोधी आंदोलन चलाया गया ।
- गुजरात के विभिन्न ताल्लुकों में कर बंदी आंदोलन प्रारंभ हुआ ।
- असम में कुख्यात 'कनिंघम सरकुलर' के विरोध में छात्रों ने एक शक्तिशाली आंदोलन चलाया ।
- मणिपुर एवं नगालैंड में रानी गैडिनल्यू ने प्रशंसनीय नेतृत्व प्रदान किया ।

बिहार में आंदोलन का प्रसार :

बिहार में समुद्र तट नहीं होने के कारण चौकीदारी कर के विरोध में आंदोलन प्रारंभ हुआ। सिवान जिले में चौकीदारी कर विरोधी आंदोलन का नेतृत्व गंगा प्रसाद राय ने किया। बाद के दिनों में यह आंदोलन गया, भागलपुर, मुंगेर, बाढ़, मोकामा, बड़हिया, बेगूसराय आदि क्षेत्रों में फैल गया। सविनय अवज्ञा आंदोलन के दौरान छपरा जेल के कैदियों ने विदेशी वस्त्र पहनने से इंकार कर दिया तथा नंगी हड़ताल का आयोजन किया। विदेशी वस्त्रों के बहिष्कार में पटना जिला के स्त्रियों ने बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया। इसका नेतृत्व श्रीमती हसन इमाम ने की जिसे विंध्यवासिनी देवी ने आगे बढ़ाया । गया में चन्द्रवती देवी ने चौकीदारी कर के विरोध में आंदोलन चलाया ।

गांधी-इरविन पैक्ट :

सविनय अवज्ञा आन्दोलन की व्यापकता ने अंग्रेजी सरकार को समझौता करने के लिए बाध्य किया । सरकार को गांधी के साथ समझौता वार्त्ता करनी पड़ी । जिसे 'गांधी- इरविन पैक्ट' के नाम से जाना जाता है। इसे दिल्ली समझौता के नाम से भी जाना जाता है, जो 5 मार्च 1931 को गांधीजी एवं लार्ड इरविन के बीच सम्पन्न हुई। इसके तहत गांधीजी ने आंदोलन को स्थगित कर दिया तथा वे द्वितीय गोलमेज सम्मेलन में भाग लेने हेतु सहमत हो गए। इरविन ने भी कुछ मांगों को स्वीकार किया। गांधी जी ने द्वितीय गोलमेज सम्मेलन में भाग लिया, परन्तु वहाँ किसी भी मुद्दे पर सहमति नहीं बन सकी। अतः वे निराश वापस लौट गए। दूसरी ओर ब्रिटिश सरकार ने दमन का सिलसिला तेज कर दिया था। तब गांधीजी ने दुबारा सविनय अवज्ञा आंदोलन को प्रारंभ किया। परन्तु इसमें पहले जैसा धार एवं उत्साह नहीं था, जिससे 1934 ई० में आंदोलन पूरी तरह से वापस ले लिया गया।

सविनय अवज्ञा आंदोलन के परिणाम :

(1) इस आंदोलन ने राष्ट्रीय आंदोलन के सामाजिक आधार का विस्तार किया। इस विस्तृत सामाजिक आधार को महिलाओं की भागीदारी, मजदूर वर्ग की भागीदारी, शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्रों के निर्धन व अशिक्षित लोगों की भागीदारी के अन्तर्गत देखा जा सकता है।

(2) इस आंदोलन ने समाज के विभिन्न वर्गों का राजनीतिकरण किया । समाज के नए वर्गों में अंग्रेज विरोधी भावनाएँ व्याप्त हुई।

(3) आंदोलन में महिलाओं की भागीदारी विशेष महत्व रखता है । पहली बार राष्ट्रीय आंदोलन के अन्तर्गत महिलाओं को प्रभावी भूमिका में देखा गया है । इस आन्दोलन में महिलाओं की भूमिका का दूसरा पहलू है–महिलाओं का सार्वजनिक जीवन में प्रवेश।

(4) इस आंदोलन के अन्तर्गत 'आर्थिक बहिष्कार' ने ब्रिटिश आर्थिक हितों को प्रभावित किया। भारत में ब्रिटिश वस्त्रों के आयात में गिरावट आई और इसने अन्य वस्तुओं के आयात को प्रतिकूल रूप से प्रभावित किया ।

(5) इस आंदोलन के दौरान संगठन के नए तरीकों का इस्तेमाल हुआ जो कि पूर्व आंदोलनों में अनुपस्थित था । इस आंदोलन के दौरान 'वानर सेना' एवं 'मंजरी सेना' संगठन को एक नया रूप प्रदान करता है । इस समय 'प्रभात फेरी' का आयोजन भी संगठनात्मक तरीकों के अन्तर्गत विशेष महत्व रखता है । पत्र-पत्रिकाओं का इस्तेमाल भी लोगों को संगठित करने का एक नया तरीका था ।

(6) सविनय अवज्ञा आन्दोलन ने श्रमिक एवं कृषक आंदोलन को भी प्रभावित किया।

(7) इस आंदोलन का एक मुख्य परिणाम ब्रिटिश सरकार द्वारा 1935 ई. का भारत शासन अधिनियम पारित किया जाना था ।

(8) पहली बार ब्रिटिश सरकार ने कांग्रेस से समानता के आधार पर बातचीत की।

इस तरह प्रथम विश्वयुद्ध (1914 ई०) के बाद राष्ट्रीय आन्दोलन की गति तेज हुई और अंग्रेजों के शोषणपूर्ण नीति के खिलाफ असहयोग आन्दोलन एवं सविनय अवज्ञा आन्दोलन हुए। इन आन्दोलनों ने भारत में किसान एवं मजदूर आन्दोलन को एक नया आयाम दिया। अंग्रेजों द्वारा शोषणकारी नीति अपनाये जाने के कारण भारतीय कृषक वर्ग में भी असंतोष की भावना व्याप्त थी। फलस्वरूप उनका विरोध एक आन्दोलन का रूप लेने लगा और आगे चलकर भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन का एक सहयोगी अंग बन गया।

किसान आन्दोलन :

19वीं सदी के उत्तरार्द्ध में भारतीय अर्थव्यवस्था बार-बार पड़ने वाले अकाल से त्रस्त थी। भूख से लाखों कृषक तथा अन्य कमजोर वर्ग के लोगों की मृत्यु हो रही थी । 1876-78, 1896-97 तथा 1899-1900 के भीषण दुर्भिक्षों से यह स्पष्ट होने लगा कि उत्पीड़क भूमि कर नीति का क्या फल होता है । भारत के भिन्न-भिन्न जगहों पर इसके खिलाफ किसानों ने आन्दोलन किए, जिसके

परिणामस्वरूप अंग्रेजी भूराजस्व नीतियों में परिवर्तन और विभिन्न टीनेंसी ऐक्ट पारित किए गये, परन्तु ये पर्याप्त नहीं थे।

कांग्रेस की स्थापना सन् 1885 के बाद प्रारम्भिक बीस वर्षों तक कृषक समस्याओं को लेकर कोई विशेष कार्य नहीं हो पाया था । हालांकि कांग्रेसी अपने हर अधिवेशन में इन विषयों पर ध्यान देने का प्रयास करते थे । महात्मा गांधी के भारतीय राजनीति में पदार्पण के साथ ही किसान आन्दोलन को एक नई दिशा मिली । भारत के विभिन्न जगहों पर हुए प्रमुख किसान आन्दोलन जिनहोंने राष्ट्रीय आन्दोलन का पथ प्रदर्शन किया, इस प्रकार थे :-

चम्पारण आन्दोलन (1917) :

बंगाल तथा बिहार के नील उत्पादक किसानों की स्थिति बहुत ही दयनीय थी। विशेषकर बिहार में नीलहे गोंरो द्वारा तीनकठिया व्यवस्था प्रचलित की गयी थी , जिसमें किसानों को अपनी भूमि के 3/20 हिस्से पर नीले की खेती करनी होती थी। यह सामान्यत: सबसे उपजाऊ भूमि होती थी । किसान नील की खेती नहीं करना चाहते थे क्योंकि इससे भूमि की उर्वरता कम हो जाती थी। यद्यपि 1908 ई० में तीनकठिया वयवस्था में कुछ सुधार लाने की कोशिश की गई थी, परन्तु इससे किसानों की गिरती हुई हालत में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। बागान मालिक किसानों को अपनी उपज एक निश्चित धनराशि पर केवल उन्हें ही बेचने के लिए बाध्य करते थे और यह राशि बहुत ही कम होती थी। इस समय जर्मनी के वैज्ञानिकों ने कृत्रिम नीले रंग का उत्पादन करना शुरू कर दिया था जिसके परिणामस्वरूप विश्व के बाजारों में भारतीय नील की मांग गिर गई। चम्पारण के अधिकांश बागान मालिक यह महसूस करने लगे कि नील के व्यापार में अब उन्हें अधिक मुनाफा नहीं होगा। इसलिए मुनाफे को बनाये रखने के लिए उन्होंने अपने घाटे को किसानों पर लादना शुरू कर दिया। इसके लिए जो रास्ते उन्होंने अपनाए उसमें किसानों से यह कहा गया कि यदि वे उन्हें एक बड़ा मुआवजा दे दें तो किसानों को नील की खेती से मुक्ति मिल सकती है। इसके अतिरिक्त उन्होंने लगान में अत्यधिक वृद्धि कर दी।

नीलहों के इस अत्याचार से चम्पारण के किसान त्रस्त थे। इसी समय 1916 ई० में कांग्रेस लखनऊ अधिवेशन में चम्पारण के ही एक किसान राजकुमार शुक्ल ने सबका ध्यान इस

समस्या की ओर आकृष्ट कराया तथा महात्मा गांधी से चम्पारण आने का अनुरोध किया। जब गांधी जी मोतिहारी (चम्पारण का जिला कार्यालय) पहुंचे तो उनकी उपस्थिति को जनशांति के लिए एक खतरा समझा गया। सरकार द्वारा उन्हें चम्पारण छोड़ने का आदेश दिया गया, परन्तु गांधीजी ने वहाँ की जनता के प्रति अपने दायित्व को समझते हुए इस आदेश को मानने से इनकार कर दिया । तत्काल ही उन्हें गिरफ्तार कर उन पर जिला न्यायालय में मुकदमा चलाया गया । परन्तु बिहार सरकार ने कमिश्नर और जिला न्यायालय को यह आदेश दिया कि इस मुकदमे को वापस ले लिया जाए । इसके साथ-साथ गांधीजी को भी किसी प्रकार के आन्दोलन करने से निषेध किया गया। परन्तु उन्हें किसानों के कष्टों के बारे में जानकारी हासिल करने की पूर्ण स्वतंत्रता भी दे दी गई। इस क्रम में गांधीजी ने पहली बार बिहार के किसानों की समस्याओं, विशेषकर चम्पारण के किसानों की समस्याओं को समझा।

गांधीजी के दबाव पर सरकार ने ''चम्पारण एग्रेरीयन कमेटी' का गठन किया । गांधीजी भी इस कमेटी के सदस्य थे । इस कमेटी ने यह सिफारिश दी कि 'तीनकठिया व्यवस्था' समाप्त कर दी जाए और इसके साथ ही अन्य कर भी समाप्त कर दिये जाएं, जो कि किसानों को देने पड़ते थे । बढ़ाये गए लगान की दरें में कमी की जाए और जो वसूली अवैध रूप से किसानों से की जा चुकी थी उसका 25% किसानों को लौटाया जाए । कमेटी के इन सिफारिशों को 1919 के चम्पारण एग्रेरीयन ऐक्ट के रूप में पारित किया गया। यद्यपि यह आंदोलन किसानों की समस्याओं से संबंधित था, परन्तु गांधीजी के अधिकांश सहयोगी जो शिक्षित मध्यम वर्ग से थे जैसे राजेन्द्र प्रसाद, आचार्य कृपलानी, गोरख प्रसाद, ब्रजकिशोर प्रसाद तथा धरनीधर प्रसाद आदि ने चम्पारण सत्याग्रह में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की । स्थानीय महाजनों और गांव के मुख्तियारों ने भी गांधीजी को सहयोग दिया । चूंकि गांधीजी ने इस आन्दोलन में अपने सिद्धान्तों सत्य और अहिंसा को आधार बनाया था। इसलिए इसे चम्पारण सत्याग्रह भी कहा जाता है ।

खेड़ा आन्दोलन :

देश के अन्य भागों में भी किसानों के आन्दोलन हुए। गुजरात के खेड़ा जिले में गाँधी जी ने लगान की माफी के लिए किसानों की मांग का समर्थन किया, क्योंकि सन् 1917 में अधिक वर्षा के कारण खरीफ की फसल को व्यापक क्षति पहुँची थी। लगान कानून के अर्न्तगत ऐसी स्थिति में लगान माफी का प्रावधान नहीं था। सरकार ने इस आधार पर यह मांग अस्वीकार कर दी कि किसानों को लगान नहीं देने के लिए बाहर के लोग भड़का रहे थे। सरकार का यह आरोप

निराधार था। 22 जून 1918 को यहाँ गाँधी जी ने सत्याग्रह का आह्वान किया, जो वस्तुतः एक महीने तक जारी रहा। इसी बीच रबी की अच्छी फसल होने और सरकार द्वारा भी दमनकारी उपाय समाप्त करने से स्थिति काफी बदली और गाँधी जी ने सत्याग्रह समाप्त करने की घोषणा कर दी। इस सत्याग्रह के द्वारा गुजरात के ग्रामीण क्षेत्र में भी किसानों में अंग्रेजों की शोषण मूलक कानूनों का विरोध करने का साहस जगा।

मोपला विद्रोह (1917) :

आधुनिक केरल राज्य के मालाबार तट पर भी किसानों का एक बड़ा विद्रोह हुआ, जिसे मोपला विद्रोह कहा जाता है। मोपला स्थानीय पट्टेदार और खेतीहर थे, जो इस्लाम धर्म के अनुयायी थे, जबकि स्थानीय 'नम्बूदरी' एवं 'नायर' भू-स्वामी उच्च जातीय हिन्दू थे। अन्य भूस्वामियों की तरह इन्हें भी सरकारी संरक्षण प्राप्त था और पुलिस एवं न्यायाय इनका समर्थन करती थी। 19वीं शताब्दी में मोपला किसानों का लगान का बोझ बढ़ा और भूमि संबंधी उनके अधिकार नियंत्रित किए जाने लगे। इससे उत्पन्न असंतोष ने किसानों एवं जमींदारों के बीच संघर्ष की स्थिति पैदा कर दी, जो दुर्भाग्यवश साम्प्रदासिक हिंसा में परिवर्तित हो गयी। सन् 1921 में एक नई स्थिति उत्पन्न हुई जब कांग्रेस ने किसानों के हित में भूमि एवं राजस्व सुधारों की मांग की और खिलाफत आन्दोलन को समर्थन दे दिया। इस नयी स्थिति से उत्साहित होकर मोपला विद्रोहियों ने एक धार्मिक नेता और सरकारी संस्थाओं पर हमले आरम्भ कर दिए। परिस्थिति की गंभीरता को देखते हुए अक्टूबर 1921 ई० मे विद्रोहियों के खिलाफ सैनिक कार्रवाई आरम्भ हुयी। दिसम्बर तक दस हजार से अधिक विद्रोही मारे गए और पचास हजार से अधिक बन्दी बना लिए गए। इस प्रकार यह विद्रोह धीरे-धीरे समाप्त हो गया।

सरदार बल्लव भाई पटेल

बालदोली सत्याग्रह :

फरवरी, 1928 में इसी प्रकार गुजरात के सूरत जिले के बारदोली ताल्लुक में भी लगान वृद्धि के खिलाफ किसानों में असंतोष की भावना जागृत हुयी। सरकार द्वारा गठित 'बारदोली जाँच आयोग' की सिफारिशों से भी किसान असंतुष्ट

रहे और उन्होंने सरकार के निर्णय के विरुद्ध आन्दोलन छेड़ा। इसमें बल्लभ भाई पटेल की निर्णायक भूमिका रही। इसी अवसर पर वे 'सरदार' भी कहलाये। उन्होंने किसानों की समस्या के प्रति बुद्धिजीवियों को भी जागृत किया और महिलाओं की भी इसमें भागीदारी का अवसर प्रदान किया। किसानों के समर्थन में बम्बई में रेलवे हड़ताल हुयी और के० एम० मुन्शी तथा लालजी नारंगी ने आन्दोलन के समर्थन में बम्बई विधान परिषद् की सदस्यता से भी त्यागपत्र दे दिया। फलस्वरूप सरकार को ब्लूमफील्ड और मैक्सवेल के नेतृत्व में नई जाँच समिति का गठन करना पड़ा, जिसमें इस वृद्धि को अनुचित माना गया और लगान की दर में सरकार ने कमी की। इस प्रकार यह आन्दोलन सफल ढंग से सम्पन्न हुआ।

किसान सभा का गठन :
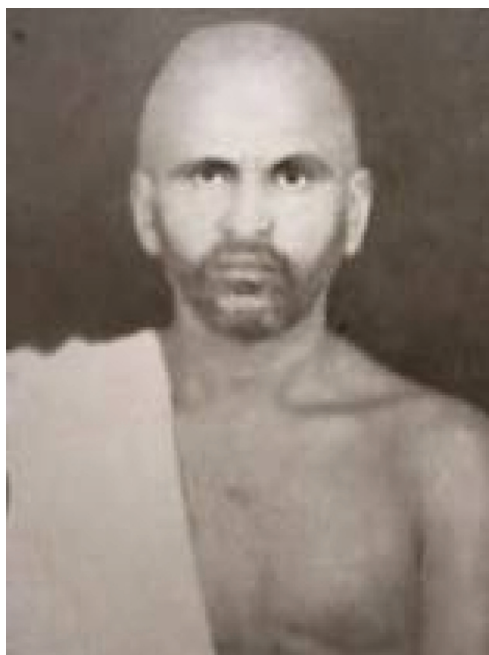
सहजानन्द सरस्वती

इन प्रारम्भिक आन्दोलनों ने किसानों को अपने अधिकारों के प्रति जागृत किया और उन्हें अपनी शक्ति का भी आभास कराया। अतः 1920 के दशक में बिहार, बंगाल, उत्तर प्रदेश एवं पंजाब में किसान सभाओं का गठन हुआ। बिहार में 1922-23 में मुंगेर में शाह मुहम्मद जुबैर के नेतृत्व में किसान सभा का गठन हुआ था, किन्तु इसे अधिक व्यापक एवं शक्तिशाली आधार 1928 ई० में प्राप्त हुआ, जब स्वामी सहजानन्द सरस्वती ने बिहटा में और पुनः 1929 में सोनपुर में किसान सभा की विधिवत स्थापना की। इसी वर्ष सरदार पटेल ने बिहार की यात्रा की। जिससे इस आन्दोलन को बल मिला। 11 अप्रैल 1936 को लखनऊ में 'अखिल भारतीय किसान सभा' का गठन हुआ। उस समय बिहार में बकास्त आन्दोलन आरम्भ हुआ, जिसे कांग्रेस द्वारा 1937 के अधिवेशन में प्रमुख मांग के रूप में स्वीकार किया गया। इसी के साथ किसानों की समस्याएं राष्ट्रीय आन्दोलन की मुख्य धारा के साथ समाहित हो गयीं।

मजदूर आन्दोलन :

यूरोप में औद्योगिकरण और मार्क्सवादी विचारों के विकास का प्रभाव अन्य देशों पर भी पड़ा और भारत में भी औद्योगिक प्रगति के साथ-साथ मजदूर वर्ग में चेतना जाग्रत हुयी। 20वीं

शाताब्दी के आरम्भिक वर्षों में सुग्रम्हण्य अय्यर ने मजदूरों के यूनियन के गठन की बात कही, तो दूसरी ओर स्वदेशी आन्दोलन का भी प्रभाव मजदूरों पर पड़ा सन् 1917 मे अहमदाबाद में प्लेग की महामारी के कारण मजदूरों को शहर छोड़कर जाने से रोकने के लिए मिल मालिकों ने उनके वेतन में वृद्धि की थी, जो महामारी खत्म होने पर समाप्त कर दी गयी। इससे मजदूर असंतुष्ट थे, क्योंकि प्रथम विश्वयुद्ध और उससे उत्पन्न महंगाई के कारण बोनस की कटौती उनके लिए कष्टदायक थी। गाँधी जी ने मजदूरों की मांग का समर्थन किया और मिल मालिकों के साथ मध्यस्थता का प्रयास किया। अन्ततः उन्हीं के सुझाव पर बोनस पुनः बहाल किया गया और इसकी दर 35% निर्धारित की गयी। सन् 1917 की रूसी क्रांति का कम्युनिस्ट इन्टरनेशनल तथा श्रम संगठन की स्थापना कुछ ऐसी विदेशी घटनाएँ थीं, जिनका प्रत्यक्ष प्रभाव भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन एवं मजदूर वर्ग दोनों पर ही पड़ा। 31 अक्टूबर 1920 को कांग्रेस पार्टी ने 'ऑल इंडिया ट्रेड यूनियन कांग्रेस, (AITUC) की स्थापना की। सी०आर०दास ने सुझाव दिया कि कांग्रेस द्वारा किसानों एवं श्रमिकों को राष्ट्रीय आन्दोलन मे सक्रिय रूप से शामिल किया जाय और इनकी मांगों का समर्थन किया जाय।

कालान्तर में वामपंथी विचारों की लोकप्रियता ने मजदूर आन्दोलन को अधिक सशक्त बनाया, जिससे ब्रिटिस सरकार की चिंता बढ़ी और मजदूरों के विरुद्ध दमनकारी उपाय भी किए गए। इस क्रम में मार्च 1929 में कुछ वामपंथी नेताओं के विरुद्ध 'मेरठ षड्यंत्र' के नाम पर देश द्रोह का मुकदमा चलाया गया। इसी बीच 1930 में सविनय अवज्ञा आन्दोलन प्रारम्भ हुआ, जिसे आरम्भ में मजदूरों का समर्थन प्राप्त रहा। लेकिन 1931 में ऑल इंडिया नेशनल ट्रेड यूनियन कांग्रेस 'हिन्द मजदूर संघ' और यूनाइटेड ट्रेड यूनियन कांग्रेस नामक तीन संगठनों में यह विभाजित हुआ। इसके बाद भी राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रमुख नेताओं-जवाहर लाल नेहरू, सुभाष चन्द्र बोस आदि द्वारा समाजवादी विचारों के प्रभावाधीन मजदूरों का समर्थन जारी रहा।

जनजातीय आन्दोलन :

भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन में जनजातीय आन्दोलन की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। 19वीं शताब्दी की तरह 20वीं शताब्दी में भी भारत के अनेक भागों मे आदिवासी विद्रोह एक स्थायी तत्व बने रहे। ये विद्रोह भारत के विभिन्न हिस्सों में हुए। जैसे - दक्षिण भारत के गोदावरी पहाड़ियों के पुराने रम्पा प्रदेश में भी अशांति थी, जहाँ 1916 ई० में विद्रोह हुआ। इसने 1922-24 में अलमूरी

सीताराम राजू के नेतृत्व में होने वाले बड़े विद्रोह की भूमिका का कार्य किय। साहूकारों द्वारा शोषण, झूम खेती और जमाने से चले आ रहे चराई संबंधी अधिकारों पर रोक लगाने वाले वन विभाग के खिलाफ आदिवासियों ने श्री राजू के नेतृत्व में छापामार युद्ध छेड़ रखा था । इस विद्रोह को दबाने के लिए मद्रास सरकार को काफी धन एवं सैन्य शक्ति खर्च करनी पड़ी । अंतत: 6 मई 1924 को राजू गिरफ्तार कर लिये गए और उन्हें गोली मार दी गई । सितम्बर 1924 में विद्रोह का दमन कर दिया गया ।

उड़ीसा की सामंतवादी रियासत दसपल्ला में अक्टूबर 1914 में खोंड विद्रोह हुआ। यह उत्तराधिकार विवाद से आरम्भ हुआ परन्तु शीघ्र ही इसने अलग रूप धारण कर लिया । अंग्रेजों को यह भय था कि खोंड विद्रोह का विस्तार पूर्वी घाट समूह की दुर्गम पर्वत श्रृंखलाओं कालाहांडी और बस्तर तक फैल जाएगा । अतएव अंग्रेजों ने इस विद्रोह का दमन शीघ्रता से करने का प्रयास किया। खोंडों के गांवों को जलाकर नष्ट किया जाने लगे ।

इस विद्रोह ने अंग्रेजों और आदिवासियों के मध्य एक युद्ध का माहौल बना दिया। जिसके अफवाह ने छोटानागपुर क्षेत्र के उरावों के बीच भी वैसा ही विद्रोह भड़का दिया । परन्तु यह आंदोलन अहिंसक था जो 1914 से 1920 ई. तक चला । इसका नेता जतरा भगत था। इस आन्दोलन में सामाजिक एवं शैक्षणिक सुधार पर विशेष बल दिया गया । जिसमें एकेश्वरवाद पर बल तथा मांस-मदिरा और आदिवासी नृत्यों से दूर रहने की बात की गयी।

1920 के गांधीवादी असहयोग आन्दोलन का यह आन्दोलन एक अभिन्न हिस्सा बन गया। इधर कांग्रेस के नेतृत्व में राष्ट्रवादी आन्दोलन का भी काफी अच्छा प्रभाव जनजातियों पर पड़ रहा था, जिससे वे राष्ट्रीय आन्दोलन में शामिल होते जा रहे थे । 1917 में मयूरभंज में संथालों ने एवं मणिपुर में 'थोडोई कुकियों' ने विद्रोह कर दिया । दो वर्षों तक छापामार युद्ध चलता रहा । इसमें 'पोथांग' प्रथा जिसमें बिना मजदूरी के अधिकारियों के सामान उठाने के लिए आदिवासियों को बाध्य किया जाता था तथा सरकार द्वारा झूम की खेती पर प्रतिबन्ध लगाए जाने की शिकायतें भी, प्रमुख कारक सिद्ध हुए ।

1930 ई. के सविनय अवज्ञा आन्दोलन के दौरान पश्चिमोत्तर सीमा प्रांत के जनजातियों में तीव्र राष्ट्रवादी भावना देखी गयी । इसी प्रकार भारत छोड़ो आंदोलन के दौरान दक्षिणी बिहार में आदिवासियों के बीच जबर्दस्त राष्ट्रीय चेतना उभरी ।

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस :

लैंड होल्डर्स सोसाइटी	-	1838
बंगाल ब्रिटिश इंडियन एसोसिएशन	-	1943
इस्ट इंडिया एसोसिएशन	-	1866
इंडियन एसोसिएशन	-	1876
पूना सार्वजनिक सभा	-	1870
इंडियन लिग	-	1875
मद्रास महाजन सभा	-	1884

भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन की शुरुआत 19वीं शताब्दी के अन्तिम चरण में 'भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस' की स्थापना से माना जाता है। यह संस्था भारत की पहली अखिल भारतीय राजनीतिक संस्था थी। इसकी स्थापना के बाद से ही भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन को नई दिशा एवं गति मिली।

हालांकि यह कोई अप्रत्याशित घटना नहीं थी। इसके पूर्व भारत में आधारभूत संरचनाओं के विकास, आधुनिक शिक्षा पद्धति के प्रसार, समाचार पत्रों के विकास, धार्मिक सुधार आन्दोलनों, मध्यमवर्गीय बुद्धिजीवियों के उत्थान एवं यूरोप में चलने वाले राष्ट्रीय आन्दोलनों ने भारतीयों में राष्ट्रीय चेतना जागृत करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। इसी परिप्रेक्ष्य में भारत में क्षेत्रीय स्तर पर कई संगठन भी स्थापित हो चुके थे।

कालांतर में भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन क्षेत्रीय स्तरों पर प्रतिदिन बढ़ता गया। प्रारंभ में ये आन्दोलन शिक्षित मध्यमवर्ग तक रहा, परन्तु आगे चलकर अनेक भारतीय वर्गों की सहानुभूति इसे प्राप्त होने लगी। इसी समय इंडियन एसोसिएशन द्वारा रेंट बिल का विरोध किया जा रहा था साथ ही लार्ड लिटन द्वारा बनाए गए प्रेस अधिनियम और शस्त्र अधिनियम वापस लेना पड़ा था। यद्यपि अभी कोई अखिल भारतीय राजनीतिक संगठन नहीं था, फिर भी यह विजय भारतीय राष्ट्रवादियों के लिए मार्ग–प्रशस्ती का काम किया । उन्हें लगने लगा कि संगठित होना अति आवश्यक है। लार्ड रिपन के काल में पास हुए इल्बर्ट बिल का यूरोपियनों द्वारा संगठित विरोध से प्राप्त विजय ने भारतीय राष्ट्रवादियों को संगठित होने का पर्याप्त कारण दे दिया।

अतः 1883 ई० के दिसम्बर में इंडियन एसोसिएशन के सचिव आनन्द मोहन बोस ने कलकत्ता में "नेशनल कांफ्रेंस" नामक एक अखिल भारतीय संगठन का सम्मेलन बुलाया

जिसका उद्देश्य बिखरे राष्ट्रवादी शक्तियों को एकजुट करना था । परन्तु दूसरी तरफ एक रिटायर्ड ब्रिटिश अधिकारी **ऐलेन ऑक्ट्रोविजन ह्यूम** ने इस दिशा में अपने प्रयास शुरू किए और 1884 में 'भारतीय राष्ट्रीय संघ' की स्थापना की । इसके बाद पूरे वर्ष **ह्यूम** भारतीय नेता एवं भारत के वायसराय लार्ड डफरिन से इस सम्बन्ध में विचार-विमर्श करते रहे । इन्हें ब्रिटिश पार्लियामेंटरी कमिटी का भी समर्थन प्राप्त था । **अन्ततः 25-28 दिसम्बर, 1885** को पूना में भारतीय राष्ट्रीय संघ का बैठक प्रस्तावित हुआ परन्तु दुर्भाग्यवश पूना में प्लेग फैलने के कारण इस बैठक का स्थान परिवर्तित कर दिया गया और तब यह बैठक **गोकुलदास तेजपाल संस्कृत कॉलेज बम्बई** में **सोमवार 28 दिसम्बर 1885** को हुआ और यहीं इस संगठन का नाम बदल कर **''अखिल भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस''** कर दिया गया। यह कांग्रेस शब्द उत्तरी अमेरिका के इतिहास से लिया गया जिसका अर्थ लोगों का समूह होता है । इस बैठक की **अध्यक्षता व्योमेशचन्द्र बनर्जी** ने की थी इसमें कुल 72 सदस्य शामिल हुए थे, जिसके प्रारंभिक उद्देश्य इस प्रकार थे-

(i) भारत के विभिन्न क्षेत्रों में राष्ट्रीय हित के काम से जुड़े लोगों के संगठनों के बीच एकता की स्थापना का प्रयास ।

(ii) देशवासियों के बीच मित्रता और सद्भावना का संबंध स्थापित कर धर्म, वंश, जाति या प्रांतीय विद्वेष को समाप्त करना ।

(iii) राष्ट्रीय एकता के विकास एवं सुदृढ़ीकरण के लिए हर संभव प्रयास करना ।

(iv) महत्वपूर्ण एवं आवश्यक विषयों के प्रश्नों पर भारत के प्रमुख नागरिकों के बीच चर्चा करना एवं उनके सम्बन्ध में प्रमाणों का लेखा तैयार करना ।

(v) प्रार्थना पत्रों तथा स्मार पत्रों द्वारा वायसराय एवं उनकी काउन्सिल से सुधारों हेतु प्रयास करना।

इस तरह कांग्रेस का प्रारम्भिक उद्देश्य शासन में सिर्फ सुधार लाना था। सन् 1905 में कर्जन द्वारा बंगाल विभाजन के बाद कांग्रेस में विरोध के स्वर उठने लगे और 1907 में इसमें फूट पैदा हो गयी, जिसके कारण कांग्रेस कुछ हद तक कमजोर पड़ गयी। गाँधी जी के भारतीय राजनीति में पदार्पण ने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस को मजबूती प्रदान की और आगे चलकर इसी पार्टी ने राष्ट्रीय एकता स्थापित करते हुए भारत को ब्रिटिश शासन की गुलामी से मुक्ति दिलाने में सर्वप्रमुख भूमिका आदा किया।

वामपंथ/कम्युनिस्ट पार्टी

वामपंथी शब्द का प्रथम प्रयोग फ्रांसीसी क्रांति में हुआ था परन्तु कालांतर में समाजवाद या साम्यवाद के उत्थान के बाद यह शब्द उन्हीं का पर्यायवाची बन गया।

20वीं शताब्दी के प्रारम्भिक काल में ही भारत में साम्यवादी विचारधाराओं के अन्तर्गत बम्बई, कलकत्ता, कानपुर, लाहौर, मद्रास आदि जगहों पर साम्यवादी सभाएँ बननी शुरू हो गई थीं। उस समय इन विचारों से जुड़े लोगों में मुजफ्फर अहमद, एस. ए. डांगे मौलवी बरकतुल्ला, गुलाम हुसैन आदि नाम प्रमुख थे। इन लोगों ने अपने पत्रों के माध्यम से साम्यवादी विचारों का पोषण शुरू कर दिया था। परन्तु रूसी क्रांति की सफलता के बाद साम्यवादी विचारों का तेजी से भारत में फैलाव शुरू हुआ। उसी समय 1920 में एम. एन. राय (मानवेन्द्र नाथ राय) ने ताशकंद में भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी की स्थापना की । लेकिन अभी भारत में ये लोग छिपकर काम कर रहे थे। असहयोग आन्दोलन के दौरान पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से उन्हें अपने विचारों को फैलाने का अच्छा मौका मिला। अब ये लोग **क्रांतिकारी** राष्ट्रवादी आन्दोलनों से भी जुड़ने लगे थे। इसलिए असहयोग आन्दोलन की समाप्ति के बाद सरकार ने इन लोगों का दमन शुरू किया और पेशावर षड्यंत्र केस (1922-23), कानपुर षड्यंत्र केस (1924) और मेरठ षड्यंत्र केस (1929-33) के तहत 8 लोगों पर मुकदमे चलाए गए। तब साम्यवादियों ने लोगों का ध्यान आकर्षित किया और राष्ट्रवादी ''साम्यवादी शहीद'' कहे जाने लगे। इसी समय इन्हें कांग्रेसियों का समर्थन मिला क्योंकि सरकार द्वारा लाए गए ''पब्लिक सेफ्टी बिल'' को कांग्रेसी पारित नहीं होने दिये थे। यह कानून कम्युनिस्टों के विरोध में था। इस तरह अब साम्यवादी आन्दोलन प्रतिष्ठित होता जा रहा था। दिसम्बर 1925 में सत्यभक्त नामक व्यक्ति ने भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी की स्थापना की। अब इंग्लैंड के साम्यवादी दल ने भी भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी में दिलचस्पी लेना शुरू किया।

हालांकि, अब तक कई मजदूर संघों का गठन हो चुका था। 1920 में AITUC की स्थापना हो गयी थी परन्तु 1926 में इसमें विभाजन हो गया और 1929 में एन. एम. जोशी ने AITUF का गठन कर लिया। इस तरह वामपंथ का प्रसार मजदूर संघों पर बढ़ रहा था। इसी समय किसानों को साम्यवाद से जोड़ने का प्रयास किया गया और विभिन्न स्थानों पर किसान मजदूर पार्टी की स्थापना की गयी। लेबर स्वराज पार्टी भारत में पहली किसान मजदूर पार्टी थी, लेकिल अखिल

भारतीय स्तर पर दिसम्बर, 1928 में अखिल भारतीय मजदूर किसान पार्टी बनी । अब तक कांग्रेसियों पर भी साम्यवाद का स्पष्ट प्रभाव नजर आने लगा था । इनमें जवाहरलाल नेहरू, सुभाष चन्द्र बोस, राममनोहर लोहिया, जयप्रकाश नारायण, अच्यूत पटवर्धन, नरेन्द्रदेव आदि प्रमुख थे । अतः अक्टूबर, 1934 में बम्बई में कांग्रेस समाजवादी दल की स्थापना की गयी। हाँलांकि 1931 में बिहार समाजवादी दल की स्थापना जयप्रकाश बाबू ने कर दिया था । फिर भी ये लोग कांग्रेस के अनुसंगी ही थे ।

सविनय अवज्ञा आन्दोलन के दौरान साम्यवादियों ने कांग्रेस का विरोध करना शुरू किया क्योंकि कांग्रेस उन उद्योगपतियों एवं जमींदारों के समर्थन से चल रही थी जो मजदूरों का शोषण करते थे । उन्होंने कांग्रेस के वामपंथी दलों की भी आलोचना करनी शुरू की और कांग्रेस से अपना संबंध तोड़ लिया । यह वह दौर था जिसमें समाजवादी अपने को इससे अलग नहीं रख पाए । साम्यवादियों के कारण कांग्रेस में फूट का खतरा मंडराने लगा जिसकी एक परिणति सुभाषचन्द्र बोस द्वारा फारवर्ड ब्लॉक की स्थापना के रूप में हुयी ।

मुस्लिम लीग :

मोहम्मद अली जिन्ना

1857 ई० के विद्रोह में **हिन्दू-मुस्लिम** एकता ने अंग्रेजों को अचम्भित कर दिया था। इस विद्रोह के बाद अंग्रेज सोचने पर मजबूर हुए कि भारत में जहॉ धार्मिक एवं जातीय विभाजन काफी कठोर है वहॉ दोनों सम्प्रदाय को आमने-सामने खड़ा कर आसानी से शासन चलाया जा सकता है। यही 'फूट डालो और शासन करो' की नीति की चरम परिणति थी। यही कारण था कि 1887 में ही लार्ड डफरिन ने कांग्रेस को हिन्दुओं की पार्टी कहकर सम्बोधित किया था, साथ ही विलियम हण्टंर नामक अंग्रेज ने अपनी पुस्तक में **अंग्रेज-मुस्लिम 'मित्रता'** पर काफी बल दिया था ।

दूसरी तरफ भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के नेतागण एवं अन्य राष्ट्रवादियों ने भारत में राष्ट्रीय चेतना के

प्रसार के लिए धर्म का सहारा लेना शुरू कर दिया था। इन सब बातों ले मुसलमानों में यह भाव पैदा कर दिया था कि कांग्रेस हिन्दू राज्य की स्थापना करना चाहती है।

इस तरह एक पृष्ठभूमि तैयार हो रही थी क्योंकि कुछ मुस्लिम संभ्रांत लोग भी अंग्रेजी समर्थन पाकर अपने समाज को उपेक्षा की स्थिति से बाहर निकाल विकास के रास्ते पर लाना चाहते थे। अत: मुस्लिमों में शिक्षा के प्रसार के प्रयास किये जाने लगे। जिनमें **अब्दुल लतिफ, आगा खां** एवं **सर सैयद अहमद खां** अग्रगण्य थे। **सर सैयद अहमद खां** ने 1877 में ही **मोहम्मडन एंग्लो ओरिएन्टल कॉलेज, अलीगढ़** में स्थापित किया। सन् 1905 में लार्ड कर्जन के बंगाल विभाजन की घोषणा द्वारा पूरे बंगाल को दो प्रांतों पूर्वी बंगाल एवं पश्चिमी बंगाम में बांट दिया गया। पूर्वी बंगाल को मुस्लिम प्रांत का नाम दिया गया।साथ ही मुसलमानों को समझाया गया कि यह विभाजन उनके हित में है, परन्तु इसका मुख्य लक्ष्य उभरते उग्र राष्ट्रवादी आन्दोलन को कमजोर करना था। सरकार की इस नीति का हिन्दू एवं मुसलमानों ने मिलकर इतना कड़ा विरोध किया कि अंतत: लार्ड हार्डिंग ने 1911 में बंगाल विभाजन वापस ले लिया।

बंगाल विभाजन के विरोध में हिन्दू-मुस्लिम एकता ने अंग्रेजों को जल्द ही कुछ ऐसा करने पर बाध्य किया जो मुसलमानों को कांग्रेस से अलग कर सके। इसी नीति पर लार्ड मिन्टो ने अमल करना शुरू किया और अपने निजी सचिव 'डनलप स्मिथ' एवं अलीगढ़ कॉलेज के प्रिंसिपल आर्कवाल्ड के माध्यम से मुस्लिम प्रतिनिधिमंडल से मिलने की बात कहीं इसी परिप्रेक्ष्य में नवाब मोहसिन-उल-मुल्क 35 प्रमुख मुस्लिम नेताओं का प्रतिनिधि मंडल लेकर सर आगा खां के नेतृत्व में अक्टूबर 1906 में उनसे मिला। इस तरह आगा खां ने मुस्लिम लीग की स्थापना की नींव डाली।

उसके बाद ढाका के नवाब सलीमुल्लाह खां ने ऑल इंडिया मुस्लिम ''कांफीडेंसी'' नामक संस्था का सुझाव दिया और इसका सम्मेलन ढाका में 30 दिसम्बर 1906 को बुलाया गया जहाँ इसका नाम बदलकर ''ऑल इंडिया मुस्लिम लीग'' रखा गया और एक अखिल भारतीय मुस्लिम संगठन की नींव पड़ी। इस मुस्लिम लीग पार्टी की स्थापना जिन उद्देश्यों की पूर्ति हेतु की गयी थी, उनमें मुसलमानों को सरकारी सेवाओं में उचित अनुपात में स्थान दिलाना एवं न्यायाधीशों के पदों पर भी मुसलमान को जगह दिलाना था। विधान परिषद के लिए अलग निर्वाचक मंडल बनाना एवं काउन्सिल की नियुक्ति में मुसलमानों के हितों की सुरक्षा करना इसका मुख्य उद्देश्य था। अंग्रेजों ने इस घटना को युगान्तकारी मानते हुए कहा था कि हमने लगभग 7 करोड़ लोगों को अपने पक्ष

में कर लिया। इसी को पुख्ता करने के लिए 1909 के सुधार अधिनियम में आंशिक रूप से मुस्लिम हितों को ध्यान में रखते हुए साम्प्रदायिकता का बीज बोया गया। परन्तु सन् 1916 में कांग्रेस और लीग में समझौता हो गया और राष्ट्रवादी मुसलमान नेताओं यथा हकीम अजमल खां, डा. अन्सारी, डा. किचलू, मौलाना अबुल कलाम आजाद, मौलाना मजहरूल हक आदि को कांग्रेस के साथ मिलकर आन्दोलन को आगे बढ़ाया। विभिन्न चुनावों में मुस्लिम लीग को उचित सफलता नहीं मिलना यही प्रमाणित करता है कि लीग का आधार मुस्लिम जनता में बहुत व्यापक नहीं हो पाया था और कांग्रेस ही देश को नेतृत्व देने वाली एकमात्र पार्टी थी। आगे चलकर मोहम्मद अली जिन्ना के नेतृत्व में मुस्लिम लीग ने कांग्रेस से अलग होकर शासन में अलग प्रतिनिधित्व एवं प्रतिनिधि क्षेत्र की मांग रखनी शुरू की, जिसने भारत विभाजन का मार्ग प्रशस्त किया। अंग्रेजों की इसमें महत्वपूर्ण भूमिका थी।

स्वराज पार्टी :

असहयोग आन्दोलन की एकाएक वापसी से उत्पन्न निराशा और क्षोभ का प्रदर्शन 1922 में हुए कांग्रेस के गया अधिवेशन में हुआ जिसके अध्यक्ष चित्तरंजनदास थे। चित्तरंजन दास एवं मोतीलाल नेहरू आदि नेताओं का विचार था कि कांग्रेस के रचनात्मक कार्यक्रम के साथ ही कांग्रेसी देश के विभिन्न निर्वाचनों में भाग लेकर व्यावसायिक सभाओं एवं सार्वजनिक संस्थाओं में प्रवेश कर सरकार के कामकाज में अवरोध पैदा करे। इसी प्रश्न पर एक प्रस्ताव गया अधिवेशन में लाया गया, परन्तु पारित नहीं हो पाया। तब चित्तरंजन दास एवं मोतीलाल नेहरू ने अपने कांग्रेस पद त्याग दिये और स्वराज पार्टी की स्थापना कर डाली और इन्हीं दोनों के अथक प्रयास के फलस्वरूप मार्च, 1923 में प्रथम स्वराज दल का सम्मेलन इलाहाबाद में हुआ।

हालांकि स्वराज दल का मुख्य उद्देश्य भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस से भिन्न नहीं था, क्योंकि ये भी स्वराज चाहते थे परन्तु इनके रास्ते थोड़े अलग थे। ये भारत में अंग्रेजों द्वारा चलाई गयी सरकारी परम्पराओं का अंत चाहते थे। ये लोग 1919 के सुधार अधिनियम में सुधार या उसका अन्त चाहते थे। धारा सभाओं में प्रवेश कर कांग्रेस का असहयोगात्मक रवैया अपनाए रखना चाहते थे। ये धारा सभाओं में जाते एवं विभिन्न मुद्दों पर बहस करने के बाद उसका विरोध करते हुए बाहर निकल जाते थे। इनकी नीति थी नौकरशाही की शक्ति को कमजोर कर दमनकारी कानूनों का विरोध और राष्ट्रीय शक्ति का विकास करना एवं आवश्यकता पड़ने पर पदत्याग कर सत्याग्रह में भाग लेना था।

हालांकि, स्वराजवादी अपने प्रारम्भिक नीतियों पर अमल करते हुए अपने लक्ष्यों की प्राप्ति में काफी हद तक सफल रहे- यथा बजट प्रस्तावों को अस्वीकार करना, 1919 सुधार अधिनियम पर जांच समिति गठित करवाना आदि। परनतु सी. आर. दास के मृत्यु के बाद केलकर एवं पुपूल जयकर जैसे नेताओं ने सरकार से सहयोग का रास्ता चुना। यही वह समय था जब स्वराजवादी हिन्दू राष्ट्रवादी नेताओं के करीब हो गए, क्योंकि चुनावों में हिन्दू सम्प्रदायवाद का सहारा लिया जाता था। बनारस जैसे स्थानों में तो स्वराज पार्टी एवं हिन्दू महासभा में कोई फर्क नहीं थी। यही कारण था कि कभी-कभी मोतीलाल नेहरू को साम्प्रदायिक अपीलों का सहारा लेना पड़ता था। संभवतः अपनी नीतियों पर दृढ़तापूर्वक नहीं टिके रहने एवं साम्प्रदायिकता से अपनी दूरी नहीं रखने के कारण ही स्वराज पार्टी 1926 तक पंगु होकर सीमित हो गया।

राष्ट्रीय स्वंय सेवक संघ (आर०एस०एस०)

आर.एस.एस. अर्थात् '' राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ'' जिसकी मुख्य अवधारणा हिन्दू-हिन्दूत्व, हिन्दू राष्ट्र की थी, की स्थापना सन् 1925 ई० में हुयी थी। ऐसा नहीं है कि यह पार्टी एकाएक उभर कर सामने आयी थी, बल्कि इसके स्वरूप तो पहले ही दिखाई पड़ने लगे थे। इसी काल में हिन्दू पुनरुत्थान की शुरुआत हुयी, जिसके तहत हिन्दू परम्पराओं का पक्षपोषण एवं महिमामंडन करना सम्मानजनक माना गया। इसका प्रभाव तत्कानीन नेतृत्व वर्ग, धार्मिक सुधार आन्दोलन के नेताओं एवं साहित्यों में भी नजर आता है। हालांकि 1830 में ही कलकत्ता के राधाकान्त ने धर्मसभा स्थापित कर धर्म सुधारों को शुरू किया था। परन्तु 1875 में बम्बई में स्वामी दयानन्द सरस्वती ने आर्य समाज की स्थापना कर 'वेदों की ओर लौटो' का नारा दिया। यह हिन्दू पुनरुत्थान वाद का प्रारंभिक दौर था। इस काल में वेदों की सर्वोच्चता की बात की जा रही थी तथा हिंदू धर्म के सनातन रूप को स्थापित किया जा रहा था।

दूसरी तरफ भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के 10-15 वर्षों के कार्य से युवा नेता सन्तुष्ट नहीं थे और उग्र रूप अपनाना चाहते थे। इन्होंने राष्ट्रीय चेतना के प्रसार में हिन्दू धर्म का सहारा लेना शुरू कर दिया जिसमें ''बाल, पाल, लाल'' मुख्य थे। अन्य नेता भी इस राह पर चल दिए। यह स्वाभाविक भी था क्योंकि तत्कालीन भारतीय समाज धर्मभीरू समाज था और धार्मिक उदाहरणों से आम जनता को आसानी से समझाया और जगाया जा सकता था। इसी समय 1909 में लाला जगत राय के सहयोग लाला लालचन्द ने कांग्रेस की आलोचना करते हुए कहा कि

प्रत्येक हिन्दू पहले हिन्दू हैं भारतीय बाद में । अब हिन्दू धर्म के रूढ़िवादी धर्म सभाओं, सनातन धर्म सभाओं, कुंभ मेलों आदि के माध्यम से संगठित होने लगे, जिसका परिणाम 1915 में पं. मदन मोहन मालवीय द्वारा हरिद्वार में हिन्दू महासभा की स्थापना के रूप में परिलक्षित हुआ।

परन्तु गांधी के पदार्पण के साथ ही दोनों पक्ष की साम्प्रदायिक पार्टियां नेपथ्य में चली गयी। जब असहयोग आन्दोलन वापस लिया गया तब पुनः उग्र राष्ट्रवादियों में विरोध पैदा हुआ और सम्प्रदायवाद की हवा एकबार पुनः तेज हो गयी। हिन्दू महासभा वाले हिन्दुस्तान को हिन्दी एवं हिन्दुओं से जोड़ने का प्रचार करते रहे, इस कारण इनका प्रभाव क्षेत्र बढ़ता जा रहा था। इसी समय बालगंगाधर के अनुयायी **श्री के. बी. हेडगेवार** ने 1925 में नागपुर में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की स्थापना की, जिसका मुख्य उद्देश्य भारतीय हिन्दू नवयुवकों को अनुशासित एवं चारित्रिक रूप से मजबूत कर राष्ट्र का निर्माण करना था । अतः यह एक सामाजिक संस्था के रूप में उभरनी शुरू हुई । इसमें राष्ट्र धर्म के साथ कट्टर हिन्दुत्व की शिक्षा दी जाती थी ।

इस प्रकार उपरोक्त लिखित बातों से इस तथ्य की जानकारी प्राप्त होती है कि ब्रिटिश सरकार की विभिन्न प्रशासनिक, आर्थिक एवं सामाजिक नीतियों ने भारत में राष्ट्रवाद को जन्म दिया। सन् 1914 से लेकर 1930 के बीच भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन अपनी चरम सीमा पर था, जिसमें गाँधी जी के नेतृत्व में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की महत्वपूर्ण भूमिका रही। इसी समय किसान सभा एवं कई मजदूर संगठनों की नींव पड़ी, जिसने अपने अधिकारों के लिए आन्दोलन की शुरूआत की, जो आगे चलकर राष्ट्रीय आन्दोलन में समाहित हो गया। इसी अवधि में भारत में विभिन्न दलों जैसे–साम्यवादी दल, स्वराज पार्टी एवं आर० एस० एस० का गठन हुआ और कांग्रेस पार्टी तथा मुस्लिम लीग की गतिविधियाँ तेज हुयी। सन् 1930 के बाद इन सभी दलों के द्वारा अंग्रेजों की नीतियों के विरूद्ध गए आन्दोलन ने भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन को तीव्र गति प्रदान की।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न :

1. **गदर पार्टी की स्थापना किसने और कब की ?**

(क) गुरदयाल सिंह, 1916 (ख) चन्द्रशेखर आजाद,1920

(ग) लाला हरदयाल, 1913 (ग) सोहन सिंह भाखना, 1918

2. **जालियाँवाला बाग हत्याकांड किस तिथि को हुआ ?**

(क) 13 अप्रैल 1919 ई० (ख) 14 अप्रैल 1919 ई०

(ग) 15 अप्रैल 1919 ई० (ग) 16 अप्रैल 1919 ई०

3. **लखनऊ समझौता किस वर्ष हुआ ?**

(क) 1916 (ख) 1918

(ग) 1920 (ग) 1922

4. **असहयोग आन्दोलन का प्रस्ताव कांग्रेस के किस अधिवेशन में पारित हुआ ?**

(क) सितम्बर 1920, कलकत्ता (ख) अक्टूबर 1920, अहमदाबाद

(ग) नवम्बर 1920, फैजपुर (ग) दिसम्बर 1920, नागपुर

5. **भारत में खिलाफत आंदोलन कब और किस देश के शासन के समर्थन में शुरू हुआ?**

(क) 1920 तुर्की (ख) 1920 अरब

(ग) 1920 फ्रांस (ग) 1920 जर्मनी

6. **संविनय अवज्ञा आंदोलन कब और किस यात्रा से शुरू हुआ ?**

(क) 1920 भुज (ख) 1930 अहमदाबाद

(ग) 1930 दांडी (ग) 1930 एल्बा

7. **पूर्ण स्वराजय की माँग का प्रस्ताव कांग्रेस के किस वार्षिक अधिवेशन में पारित हुआ?**

(क) 1929 लाहौर (ख) 1931 कराँची

(ग) 1933 कलकत्ता (ग) 1937 बेलगाँव

8. राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की स्थापना कब और किसने की ?

(क) 1923, गुरू गोलवलकर (ख) 1925, के० बी० हेडगेवार

(ग) 1926, चितरंजन दास (घ) 1928 लालचंद

9. बल्लभ भाई पटेल को सरदार की उपाधि किस किसान आंदोलन के दौरान दी गई ?

(क) बारदोली (ख) अहमदाबाद

(ग) खेड़ा (घ) चंपारण

10. रम्पा विद्रोह कब हुआ ?

(क) 1916 (ख) 1917

(ग) 1918 (घ) 1919

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें :

1. बाल गंगाधर तिलक और .... ने होमरूल लीग आन्दोलन को शुरू किया।
2. .... भारत में खिलाफत आन्दोलन के नेता थे।
3. .... फरवरी .... को .... आन्दोलन स्थगित हो गया।
4. साइमन कमीशन के अध्यक्ष .... थे।
5. .... में .... कर के विरोध में आन्दोलन आरंभ हुआ।
6. भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस के पहले अध्यक्ष .... थे।
7. .... अप्रैल .... को अखिल भारतीय किसान सभा का गठन .... हुआ।
8. उड़िसा में .... में .... विद्रोह हुआ।

अतिलघुउत्तरीय प्रश्न (20 शब्दों में उत्तर दें) :

1. खिलाफत आन्दोलन क्यों हुआ ?
2. रॉलेट एक्ट से आप क्या समझते हैं ?
3. दांडी यात्रा का क्या उद्देश्य था ?
4. गाँधी इरविन पैक्ट अथवा दिल्ली समझौता क्या था ?
5. चम्पारण सत्याग्रह का संक्षिप्त विवरण दें।

6. मेरठ षड्यंत्र से आप क्या समझते हैं ?
7. जतरा भगत के बारे में आप क्या जानते हैं, संक्षेप में लिखें।
8. ऑल इंडिया ट्रेड यूनियन कांग्रेस की स्थापना क्यों हुई ?

सुमेलित करें :

(i) गाँधीवादी चरण	(क) 5 फरवरी, 1922
(ii) चौरी-चौरा हत्याकांड	(ख) 1919-47
(iii) कांग्रेस के प्रथम अध्यक्ष	(ग) 1915
(iv) बंगाल विभाजन वापस	(घ) केरल
(v) हिन्द महासभा	(ङ) 1911
(vi) मोपला विद्रोह	(च) व्योमेशचन्द्र बनर्जी

लघुउत्तरीय प्रश्न (60 शब्दों में उत्तर दें) :

1. असहयोग आन्दोलन प्रथम जन आंदोलन था,कैसे ?
2. सविनय अवज्ञा आंदोलन के क्या परिणाम हुए ?
3. भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना किन परिस्थितियों में हुई ?
4. बिहार के किसान आंदोलन पर एक टिप्पणी लिखें ?
5. स्वराज पार्टी की स्थापना एवं उद्देश्य की विवेचना करें ।

दीर्घउत्तरीय प्रश्न (150 शब्दों मं उत्तर दें) :

1. प्रथम विश्व युद्ध का भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के साथ अंतर्संबंधों की विवेचना करें ।
2. असहयोग आंदोलन के कारण एवं परिणाम का वर्णन करें।
3. सविनय अवज्ञा आन्दोलन के कारणों की विवेचना करें।
4. भारत में मजदूर आनदोलन के विकास का वर्णन करें।
5. भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में गाँधीजी के योगदान की विवेचना करें।
6. भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में वामपंथियों की भूमिका को रेखांकित करें।

●●●

इकाई : 5

अर्थ-व्यवस्था और आजीविका

किसी भी राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था का मूल आधार कृषि एवं उद्योग होता है, जिस पर लोगों की आजीविका निर्भर करती है। आधुनिक युग में कृषि की तुलना में उद्योगों का महत्व बहुत अधिक बढ़ा है और देश की अर्थव्यवस्था में इनके योगदान में भी समानुपातिक वृद्धि हुई है। अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में ब्रिटेन विश्व का पहला देश बना, जहाँ कृषि क्षेत्र एवं उद्योग जगत में मशीनीकरण प्रारंभ हुआ और औद्योगीकरण के एक नये युग का सूत्रपात हुआ।

औद्योगीकरण अथवा उद्योगों की वृहत् रूप में स्थापना उस औद्योगीक क्रांति की देन है, जिसमें वस्तुओं उत्पादन मानव श्रम के द्वारा न होकर मशीनों के द्वारा होता है। इसमें उत्पादन वृहत् पैमाने पर होता है और जिसकी खपत के लिए बड़े बाजार की आवश्यकता होती है। किसी भी देश के आधुनिकीकरण का एक प्रेरक तत्व उसका औद्योगीकरण होता है। नये-नये मशीनों का आविष्कार एवं तकनीकी विकास पर ही औद्योगीकरण निर्भर करता है। इसके प्रेरक तत्व के रूप मे मशीनों के अलावे पूँजी निवेश एवं श्रम का भी महत्वपूर्ण स्थान है। साधारणयता औद्योगीकरण ऐसी प्रक्रिया है, जिसमें मशीनों द्वारा कारखानों में होता है। इस प्रक्रिया के तहत ही ब्रिटेन में सर्वप्रथम घरेलू उत्पादन पद्धति का स्थान कारखाना पद्धति ने ले लिया।

कुटीर उद्योग

कारखानें में मशीनी उद्योग

सन् 1750 ई० तक ब्रिटेन मुख्य रूप से कृषि प्रधान देश था। देश की 80% जनसंख्या गाँवों में निवास करती थी। अपना और अपने आश्रितों का भरण-पोषण वह कृषि द्वारा करती थी। सूत उद्योग, ऊन उद्योग, काँच, लोहा और मिट्टी के बर्त्तन का उद्योग गाँवों में कृषकों द्वारा किया जाता था। इन उद्योगों में काम करने वाले कारीगर अपने हाथ से अथवा हाथ से चलाये जानेवाले यंत्रों से वस्तुओं का उत्पादन करते थे। इन उद्योगों में प्रमुख कपड़ा उद्योग था। यूरोप के अन्य देशों के साथ-साथ ब्रिटेन में भी अन्तर्राष्ट्रीय बाजार के लिए बड़े पैमाने पर उत्पादन होता था, जो प्राय: घरों में मानव चालित यंत्रों के द्वारा होता था। सतरहवीं-अठारहवीं शताब्दी में शहरों में गिल्ड प्रथा का प्रचलन था। गिल्ड से जुड़े उत्पादक निपुणता एवं विशिष्टता के लिए प्रसिद्ध थे। उनका व्यापार पर एकाधिपत्य था। अत: बढ़ती हुई मांगों की वजह से ये व्यापारी गाँवों की तरफ रूख करने लगे। उन्होंने गाँव के किसानों एवं मजदूरों से काम लेना शुरू किया। उन्हें प्रशिक्षण देकर वे अपने नियंत्रण में रखने लगे। उत्पादित वस्तुओं की बढ़ती हुई मांगों ने गाँवों में भी रोजगार के अवसर प्रदान किए और कुटीर-उद्योग का बहुत अधिक विकास हुआ, जिसमें पुरूषों के साथ महिलाओं एवं बच्चों की भी भागीदारी बढ़ी। ब्रिटेन के गाँवों में रंगाई एवं छपाई का काम भी होता था। इसके बाद उसका निर्यात उपनिवेशों के बाजार में कर दिया जाता था। इस तरह औद्योगीकरण, जिसमें उत्पादन का मशीनीकरण हुआ, के पहले भी औद्योगिक विकास का दौर जारी था, जिसमें घरों में मानव श्रम से कुटीर उद्योग के द्वारा उत्पादन किया जाता था और कुटीर उद्योग विकासोन्मुख था। यह दौर आदि-औद्योगीकरण (Proto Industrialisation) के नाम से जाना जाता है।

औद्योगीकरण के कारण : ब्रिटेन में स्वतंत्र व्यापार (Free Trade) और अहस्तक्षेप की नीति (Policy of Lasissez faire) ने ब्रिटिश व्यापार को बहुत अधिक विकसित किया। उत्पादित वस्तुओं की मांग बढ़ने लगी। तात्कालिक ढाँचे के अन्तर्गत व्यापारियों के लिए उत्पादन में अधिक वृद्धि कर पाना असम्भव सा था। एक तरफ बुनकरों को धागे के अभाव में काफी समय तक बेकार बैठे रहना पड़ता था तो दूसरी तरफ सूत कातने वाले हमेशा ही व्यस्त रहते थे। पूरे समय काम करने वाला एक बुनकर 6 सूत कातने वाले लोगों द्वारा तैयार किए गए धागों का उपयोग कर सकता था। ऐसी स्थिति में ऐसे परिवर्तन की आवश्यकता महसूस की जा रही थी, जिससे सूत का उत्पादन

कारण

1. **आवश्यकता आविष्कार की जननी**
2. **नये-नये मशीनों का आविष्कार**
3. **कोयले एवं लोहे की प्रचुरता**
4. **फैक्ट्री प्रणाली की शुरूआत**
5. **सस्ते श्रम की उपलब्धता**
6. **यातायाता की सुविधा**
7. **विशाल औपनिवेशक स्थिति**
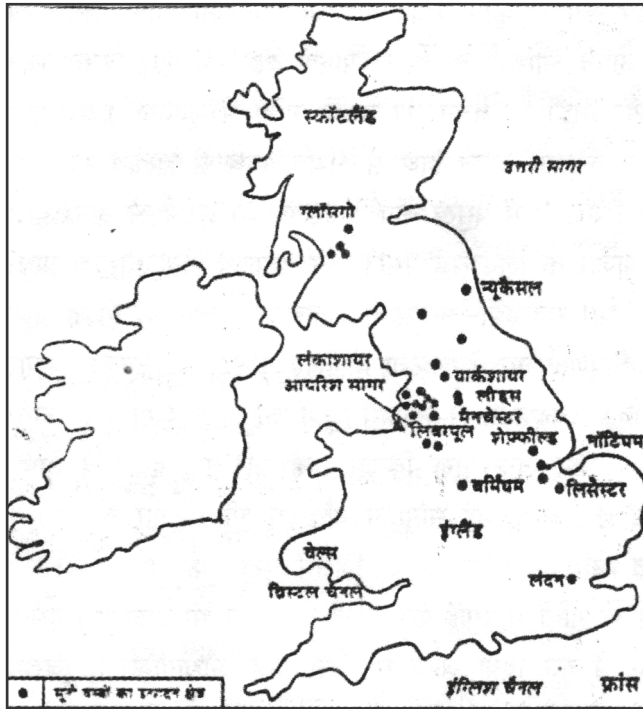
मानचित्र-ब्रिटेन में सूती वस्त्रों के उत्पादन क्षेत्र

उत्पादन काफी बढ़ सके। यही वह सबसे प्रमुख कारण था, जिसकी वजह से ब्रिटेन में औद्योगीकरण के आरम्भिक वर्षों में आविष्कारों की जो एक शृंखता बनी, वह सुती वस्त्र उद्योग के क्षेत्र से अधिक सम्बंधित थी।

अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध मे ब्रिटेन में नये-नये यंत्रों एवं मशीनों के आविष्कार ने उद्योग जगत में ऐसी क्रांति का सूत्रपात किया, जिससे औद्योगीकरण एवं उपनिवेशवाद दोनों का मार्ग प्रशस्त हुआ। सन् 1769 में बॉल्टन निवासी रिचर्ड आर्कराइट ने सूत कातने की स्पिनिंग फ्रेम (Spinning Frame) नामक एक मशीन बनाई जो जलशक्ति से चलती थी। सन् 1770 में स्टैंडहील निवासी जेम्स हारग्रीब्ज ने सूत कातने की एक अलग मशीन **'स्पिनिंग जेनी'** (Spinning Jenny) बनाई। इसमें सोलह तकुए एक पहिये के घूमने से चलते थे, अतः इसकी सहायता से आठ सूत एक साथ काता जा सकता था। सन् 1773 में लंकाशायर के जॉन के ने **'फ्लाइंग शट्ल'** (Flying Shuttle) का आविष्कार किया, जिसके द्वारा जुलाहे बड़ी तेजी से काम करने लगे और धागे की मांग बढ़ गयी। सन् 1779 में सैम्यूल क्राम्पटन ने **'स्पिनिंग म्यूल'** (Spinning Mule) बनाया, जिससे बारीक सूत काता जा सकता था। सन् 1785 में एडमंड कार्टराइट ने वाष्प से चलने वाला **'पावरलुम'** (Power&Loom) नामक करघा तैयार किया। इसी समय बेनर नामक व्यक्ति ने कपड़ा छापने का एक यंत्र बनाया। टॉमस बेल के **'बेलनाकार छपाई'** (Cylindrical Printing) के आविष्कार ने तो सूती वस्त्रों की रंगाई एवं छपाई में नई क्रांति ला दी। इन आविष्कारों के फलस्वरूप सन् 1820 ई० तक ब्रिटिश सूती वस्त्र उद्योग में काफी वृद्धि हुई। इन उद्योगों में सन् 1769 मे जेस्म वॉट द्वारा बनाये गये वाष्प इंजन की भी महत्वपूर्ण भूमिका थी।

चूँकि वस्त्र उद्योग की प्रगति कोयले एवं लोहे के उद्योग पर बहुत अधिक निर्भर करती है, इसलिए अंग्रेजों ने इन उद्योगों पर बहुत अधिक ध्यान दिया। ब्रिटेन में कोयले एवं लोहे की खानें थी। वाष्प इंजन बनने के बाद अपने देश के लिए तथा निर्यात करने के लिए रेलवे इंजन तैयार होने लगे। सन् 1815 में हम्फ्रीडेवी ने खानों में काम करने लिए एक 'सेफ्टी लैम्प' (Safety-Lamp) का आविष्कार किया। इसी तरह सन् 1815 ई० में हेनरी बेसेमर ने एक शक्तिशाली भट्टी विकसित करके लौह उद्योग को और भी बढ़ावा दिया।

मशीनों एवं नये-नये यंत्रों के आविष्कार ने फैक्ट्री प्रणाली को विकसित किया, फलस्वरूप उद्योग तथा व्यापार के नये-नये केन्द्रों का जन्म हुआ। लिवरपुल में स्थित लंकाशायर सूती वस्त्र उद्योग का केन्द्र बन गया। मैनचेस्टर भी सूती वस्त्र उद्योग का बड़ा केन्द्र बना। सन् 1805 के बाद न्यू साउथ वेल्स ऊन उत्पादन का केन्द्र बना और बड़े-बड़े भेड़ फार्मों की स्थापना हुई। रेशम उद्योग तथा सन् उद्योग (Linen Industry) का भी ब्रिटेन में बहुत विकास हुआ।

औद्योगीकरण में ब्रिटेन में सस्ते श्रम की आवश्यकता की भूमिका भी अग्रणी रही है। अठारहवीं शताब्दी के अन्तिम वर्षों में बाड़ाबन्दी प्रथा की शुरूआत हुई, जिसमें जमींदारों ने छोटे-छोटे खेतों को खरीदकर बड़े-बड़े फार्म स्थापित कर लिए। अपनी जमीन बेच देने वाले छोटे

मानचित्र ब्रिटेन में लोहा एवं कोयला उत्पादक क्षेत्र

किसान भूमिहीन मजदूर बन गए। ये आजीविका उपार्जन के लिए काम धंधों की खोज में निकटवर्ती शहर चले गए। इस तरह मशीनों द्वारा फैक्ट्री में काम करने के लिए असंख्य मजूदर कम मजदूरी पर भी तैयार हो जाते थे। सस्ते श्रम ने उत्पादन के क्षेत्र में सहायता पहुँचाई।

फैक्ट्री में उत्पादित वस्तुओं को एक जगह से दूसरे जगह पर ले जाने तथा कच्चा माल को फैक्ट्री तक लाने के लिए ब्रिटेन में यातायात की अच्छी सुविधा उपलब्ध थी। रेलमार्ग शुरू होने से पहले नदियों एवं समुद्र के रास्ते व्यापार होता था। नदी पोतों द्वारा लाया जाने वाला माल सरलतापूर्वक तटपोतों (Coaster) अर्थात् समुद्री जहाजों तक ले जाया जाता था। जहाजरानी उद्योग में यह विश्व में अग्रणी देश था और सभी देशों के सामानों का आयात-निर्यात मुख्यतया ब्रिटेन के व्यापारिक जहाजी बड़े से ही होता था, जिसका आर्थिक लाभ औद्योगीकरण की गति को तीव्र करने में सहायक बना।

औद्योगीकरण की दिशा में ब्रिटेन द्वारा स्थापित विशाल उपनिवेशों ने भी योगदान दिया। इन उपनिवेशों से कच्चा माल सस्ते दामों में प्राप्त करना तथा उत्पादित वस्तुओं को वहाँ के बाजारों में महंगे दामों पर बेचना ब्रिटेन के लिए आसान था।

उपनिवेशवाद : मशीनों के आविष्कार तथा फैक्ट्रियों की स्थापना से उत्पादन में काफी वृद्धि हुई। उत्पादित वस्तुओं की खपत के लिए ब्रिटेन तथा आगे चलकर यूरोप के अन्य देशों को जहाँ कारखानों की स्थापना हो चुकी थी, बाजार की आवश्यकता पड़ी। इससे उपनिवेशवाद को बढ़ावा मिला। इसी क्रम में भारत ब्रिटेन के एक विशाल उपनिवेश के रूप में उभरा। संसाधन की प्रचुरता ने उन्हें भारत की तरफ व्यापार करने के लिए आकर्षित किया। भारत सिर्फ प्राकृतिक एवं कृत्रि संसाधनों में ही सम्पन्न नहीं था, बल्कि यह उनका एक वृहत् बाजार भी साबित हुआ।

अठारहवीं शताब्दी तक भारतीय उद्योग विश्व में सबसे अधिक विकसित थे। भारत विश्व का सबसे बड़ा कार्यशाला था, जो बहुत ही सुन्दर एवं उपयोगी वस्तुओं का उत्पादन करता था। जब तक मशीनों का आविष्कार नहीं हुआ था, भारतीय हस्तकला, शिल्प उद्योग तथा व्यापार पर ब्रिटिस नियंत्रण कायम था। शिल्पकारों को दी जाने वाली मजदूरी इतनी कम होती थी कि कई बार उन्हें न्यूनतम जीवन निर्वाह योग्य मजदूरी भी नहीं दी जाती थी। अंग्रेज व्यापारी एजेंट की मदद से यहाँ के कारीगरों को पेशगी रकम देकर उत्पादन करवाते थे। ये एजेंट 'गुमाश्ता' कहलाते थे। ये गुमाश्ता शिल्पकारों से सामान भी मनमाने दामों पर खरीदते थे और उनका निर्यात इंग्लैंड

करते थे। सन् 1813 ई० में ब्रिटिश संसद द्वारा पारित 'चार्टर एक्ट' (Charter Act) व्यापार पर से इस्ट इंडिया कम्पनी का एकाधिपत्य समाप्त कर दिया और स्वतंत्र व्यापार की नीति (Policy of Free Trade) का मार्ग प्रशस्त किया गया।

सन् 1850 ई० के बाद ब्रिटिश सरकार ने अपने उद्योगों को विकसित करने के लिए अनेक ऐसे कदम उठाए, जिनकी वजह से इस अवधि में एक के बाद एक देशी उद्योग लगातार खत्म होने लगे। ब्रिटिश सरकार द्वारा अपनाई गयी मुक्त व्यापार की नीति की वजह से भारत में निर्मित वस्तुओं पर ब्रिटेन में ब्रिकी के लिए भारी कर लगा दिया गया। भारत से कच्चा माल का निर्यात किया जाने लगा। भारतीय वस्तुओं के निर्यात पर सीमा शुल्क और परिवहन कर भी लगाया जाने लगा। अब भारत में रहने वाले अंग्रेजों को विशेष सुविधाएँ प्रदान की गयीं तथा यहाँ आयात -निर्यात की सुविधा के लिए रेलवे का निर्माण किया गया। धीरे-धीरे ब्रिटिश पूँजी से भारत में कारखानों की स्थापना की जाने लगी। सूती वस्त्रों का आयात भी किया जाने लगा। सन् 1850 के बाद मैनचेस्टर से भारी मात्रा में वस्त्र आयात शुरू हो गया था। भारत में अब कुटीर-उद्योग के शिल्पकारों एवं कास्तकारों को कच्चा माल के लाले पड़ गये । उन्हें मनमानी कीमत पर कच्चा माल खरीदना-पड़ता था । अतः धीरे-धीरे कुटीर उद्योग बन्द कर ये शिल्पकार एवं कारीगर खेती करने को मजबुर हो गये । 1850 के बाद जब भारत में कारखानों की स्थापना होनी शुरू हुई तब यही बेरोजगार लोग गाँवों से शहरों की तरफ पलायन कर गए, जहाँ उन्हें मजदूर के रूप में रख लिया जाता था । एक तरफ जहाँ मशीनों के अविष्कार ने उद्योग एवं उत्पादन में वृद्धि कर औद्यौगीकरण की प्रक्रिया की शुरूआत की थी, वहीं भारत में कुटीर उद्योग बन्द होने की कगार पर पहुँच गया था । भारतीय इतिहासकारों ने इसे भारत के उद्योग के लिए निरूद्योगीकरण (Deindustrialisation) की संज्ञा दी है ।

भारत में फैक्ट्रियों की स्थापना

औद्योगिक उत्पादन से भारत में कुटीर उद्योग तो बन्द हो गए, लेकिन वस्त्र उद्योग के लिए कई बड़ी-बड़ी फैक्ट्रियाँ देशी एवं विदेशी पूँजी लगाकर खोली गयीं, जिससे कारखाना उद्योग को बढ़ावा मिला । कारखानों की स्थापना के क्रम में सन् 1830-40 के दशक में बंगाल में द्वारकानाथ टैगोर ने 6 संयुक्त उद्यम कंपनियाँ लगा ली थीं । सर्वप्रथम सूती कपड़े की मिल की नींव 1851

ई० में बम्बई में डाली गयी। यहाँ पारसी, गुजराती और बोहरा मुसलमान आदि जातियों के लोग सूती धागे और सूती कपड़ा तैयार करने वाले आधुनिक कारखाने के निर्माण में लग गए थे। पारसी कावस-जी-नाना-जी-दाभार ने सन् 1854 में पहला कारखाना निर्मित किया और तभी से इस उद्योग का इतिहास भारत में शुरू हुआ।

बम्बई का कपड़ा मिल
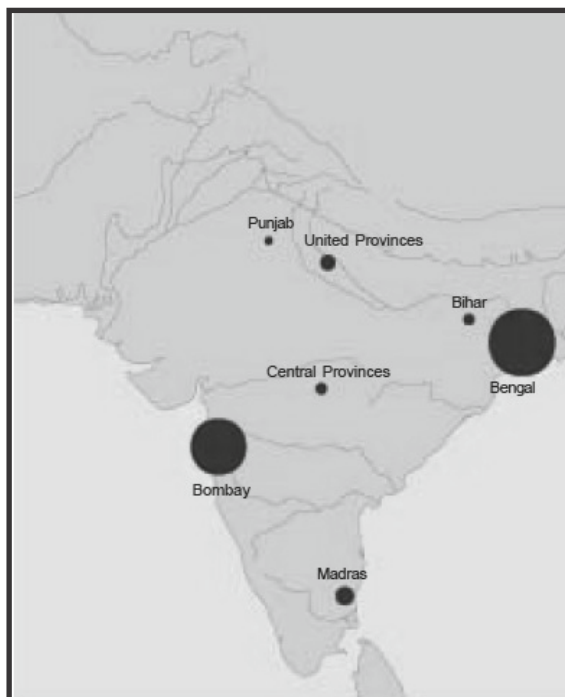
भारत में बड़े पैमाने पर उद्योग वाले क्षेत्र

सन् 1854 से 1880 तक तीस कारखानों का निर्माण हुआ, जिसमें तेरह पारसियों द्वारा बनाए गए थे। सन् 1869 में स्वेज-नहर के खुल जाने से बम्बई के बन्दरगाह पर इंग्लैंड से आने वाला सूती कपड़ों का आयात बढ़ने लगा। इसके बावजूद भी सन् 1880 से 1895 तक सूती कपड़ों के मिलों की संख्या उनचालिस से अधिक हो गई। इसने मैनचस्टर के कपड़ा उद्योग को चिंता में डाल दिया, जिसकी वजह से ब्रिटिश सरकार वहाँ से आयात किए जाने वाले माल पर से आयात शुल्क समाप्त कर दिया। इससे भारतीय बाजारों में वहाँ का सामान अपेक्षकृत कम मूल्यों में बिकने लगा। इस समय सस्ता मशीनों का आयात करके भारत में सूती वस्त्र उद्योग को बहुत बढ़ाया गया। सन् 1895 से 1914 तक के बीच सूती मिलों की संख्या 144 तक पहुँच गयी थी और भारतीय सूती धागे का निर्यात चीन को होने लगा था।

सन् 1917 में कलकत्ता में देश की पहली जूट मिल एक मारवाड़ी व्यवसायी हुकुम चंद ने स्थापित किया। सन् 1918 में पहले पहल एक लिमिटेड कम्पनी के रूप में बिड़ला ब्रदर्स की स्थापना हुई। सन् 1919 में बिड़ला जूट कम्पनी और 1920 में ग्वालियर में जियाजी राव सूती कारखाना खुला । घनश्याम दास बिड़ला ने अंग्रेजी-कम्पनियों से अनेक चालू कारखाने खरीदकर अपने व्यापार को बढ़ाया, जैसे-एंडविल से केशवराव कॉटन मिल और मार्टिन से चीनी के कारखाने।

घनश्याम दास बिड़ला

जमशेद जी टाटा

सन् 1907 ई० में जमशेद जी टाटा ने झारखण्ड के साकची नामक स्थान पर टाटा आयरन एण्ड स्टील कम्पनी (Tisco) की स्थापना की । जमशेद जी टाटा एक ऐसे भारतीय थे, जिनमें भारतीय उद्योग की काफी सूझ-बूझ थी और 1910 ई० में उन्होंने टाटा हाइड्रो-इलेक्ट्रीक पावर स्टेशन की स्थापना की । स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् लौह उद्योग ने काफी प्रगति की । 1955 में भिलाई, राउर केला और दुर्गापुर में इस्पात कारखाना खोलने की सहमति रूस, पश्चिम जर्मनी और ब्रिटेन के समझौतों के आधार पर ली गयी । अभी भारत में 30 से अधिक हैं । जिसमें प्रमुख हैं-

1. इंडियन-आयरन एण्ड स्टील कम्पनी, हीरापुर
2. टाटा आयरन एण्ड स्टील कम्पनी, जमशेदपुर
3. विशेश्वरैया आयरन एण्ड स्टील कम्पनी, भद्रावती (कर्नाटक)
4. राउरकेला स्टील प्लांट, राउरकेला

5. भिलाई स्टील प्लांट, भिलाई

6. दुर्गापुर स्टील प्लांट, दुर्गापुर

7. बोकारो स्टीन प्लांट, बोकारो
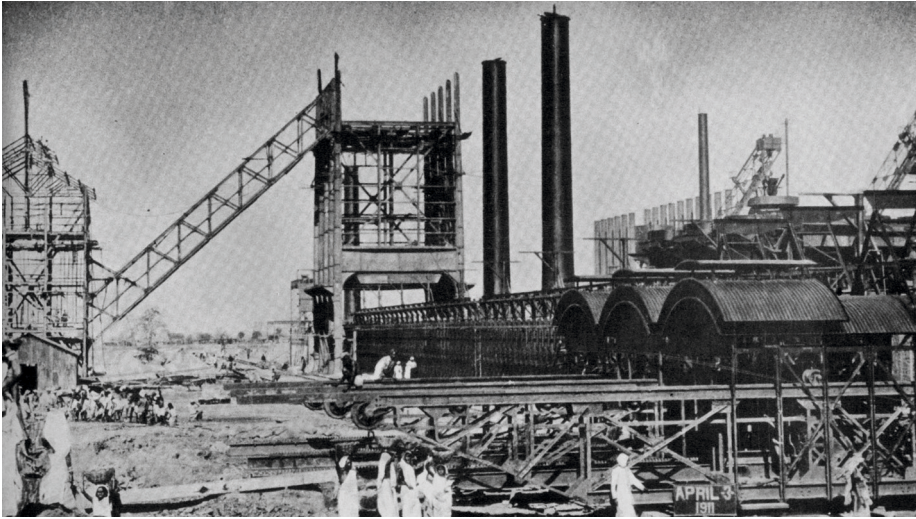
टाटा आयरन एण्ड स्टील कम्पनी

भारत मे कोयला उद्योग का प्रारम्भ सन् 1814 में हुआ, जब रानीगंज, पश्चिम बंगाल में कोयले की खुदाई का काम प्रारम्भ किया गया था। रेल के विकास के साथ ही सन् 1853 के बाद इसका विकास आरम्भ हुआ। इसका उत्पादन बढ़ाने के लिए मशीनों का प्रयोग शुरू हुआ। नवीन उद्योग की स्थापना ने कोयले की मांग बढ़ा दी। 1868 ई० में जहाँ उत्पादन 5 लाख टन था, वहाँ 1950 में बढ़कर 3.23 करोड़ टन हो गया। तत्कालीन बिहार इस उद्योग का मुख्य केन्द्र था।

सन् 1850-60 के पश्चात भारत में बगीचा उद्योग अर्थात् नील, चाय, कॉफी, रबड़ और पटसन मिलें आरम्भ हो गयी। यद्यपि इन उद्योगों में से अधिक संख्या उन उद्योगपतियों की थी, जो विदेशी थे और जिन्हें सरकार का प्रोत्साहप प्राप्त था। सन् 1916 में सरकार ने एक औद्योगिक आयोग नियुक्त किया ताकि वह भारतीय उद्योग तथा व्यापार के भारतीय वित्त से सम्बंधित प्रयत्नों के लिए उन क्षेत्रों का पता लगाये जिसे सरकार सहायता दे सके। सन् 1921 में सरकार ने एक राजस्व आयोग नियुक्त किया और उस वर्ष उसके प्रधान श्री इब्राहिम रहिमतुल्ला बनाये गए। इसके तहत 1924 ई० में टीन उद्योग, कागज उद्योग, केमिकल उद्योग, चीनी उद्योग आदि की स्थापना हुई। 1930 के दशक में सीमेंट और शीशा उद्योग की भी स्थापना हुई।

सन् 1850 से 1914 तक के उद्योग की यह विशेषता थी कि इस काल में निर्यात किए जाने वाले ऐसे मालों का भी उत्पादन हुआ, जो राष्ट्र के लिए लाभदायक था, जैसे–पटसन और चाय। इसके साथ ही उस माल का भी उत्पादन हुआ जिसमें विदेशी प्रतिद्वन्दिता ज्यादा नहीं थी जैसे-मोटा कपड़ा। प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान भारतीय उद्योगों को लाभ हुआ और देशी उत्पादित वस्तुओं को देश के अन्दर एवं बाहर मंडी प्राप्त हुई, युद्ध के ठेके मिले, कच्चा माल पहले से कम दाम पर उपलब्ध हुआ और उत्पादित माल के ऊँचे दाम प्राप्त हुए।

सन् 1929-33 के विश्वव्यापी आर्थिक मंदी का भारतीय उद्योग पर गहरा प्रभाव पड़ा। भारत प्राथमिक सामग्री के लिए आत्म निर्भर था, जिसका मूल्य घटकर आधा हो गया था। निर्यात किए जाने वाले सामानों का भी मूल्य घट गया। इस तरह उद्योग पर निर्भर जनता की दिनों दिन क्षति होने लगी।

द्वितीय विश्वयुद्ध के समय मिलों द्वारा उत्पादित सूती कपड़ों की सम्पूर्ण मांग को अब भारतीय मिलें ही पूरा कर रही थीं। भारतीय मिल मालिकों ने इस अवसर का लाभ उठाया और विदेशी मंडियो में प्रवेश करना शुरू कर दिया। लड़ाई के दौरान भारत की अपनी कोई इंजिनियरिंग इन्डस्ट्री नहीं थी और न ही अपने मशीनों या यंत्रों के निर्माण करने की इन्डस्ट्री (उद्योग) थी। केवल वे उद्योग ही स्थापित हो सके थे जो ब्रिटेन या अमेरिका में बनाई जाने वाली मशीनों का गठन करते थे।

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद अमेरिका भारत के व्यापार का एक मुख्य साझेदार हो गया। वह भारत को अब उपयोगी सामान देने लगा और भारत से कच्चा माल मंगाने लगा। यह कोई आश्चर्य की बात नहीं थी, क्योंकि युद्ध के समय वहाँ की उत्पादन क्षमता में काफी वृद्धि हुई थी।

प्रथम विश्वयुद्ध के पहले तक यूरोप की कंपनियां व्यापार में पूँजी लगाती थी। यह प्रबंधकीय एजेंसियों के द्वारा होता था, जो उद्योगों पर नियंत्रण भी रखती थीं। इनमें बर्ड हिगलर्स एण्ड कम्पनी, एंड्रयूयूल और जार्डीन स्किनर एण्ड कम्पनी, सबसे बड़ी कंपिनियां थीं। यद्यपि, भारत में 1895 में पंजाब नेशनल बैंक, 1906 में बैंक ऑफ इंडिया, 1907 में इंडियन बैंक, 1911 में सेन्ट्रल बैंक, 1913 में द बैंक ऑफ मैसूर तथा ज्बाइंट स्टॉक बैंकों की स्थापना हुई। ये बैंक भारतीय उद्योगों के विकास में सहायक थे।

औद्योगीकरण का परिणाम :

परिणाम	
1.	नगरों का विकास।
2.	कुटीर उद्योग का पतन।
3.	साम्राज्यवाद का विकास।
4.	समाज में वर्ग विभाजन एवं बुर्जुआ वर्ग का उदय।
5.	फैक्ट्री मजदूर वर्ग का जन्म।
6.	स्लम पद्धति की शुरुआत।

सन् 1850 से 1950 ई० के बीच भारत में वस्त्र उद्योग, लौह उद्योग, कोयला उद्योग जैसे कई उद्योगों का विकास हुआ। जमशेदपुर, सिन्द्री, धनबाद तथा डालमियानगर आदि नये व्यापारिक नगर तत्कानीन बिहार राज्य में कायम हुए। बड़ी-बड़ी फैक्ट्रियों के कायम हो जाने से प्रचीन गृह उद्योग का पतन आरम्भ हो गया। हाथ से तैयार किया हुआ माल महंगा पड़ने लगा, उसकी बिक्री खत्म होने लगी, नतीजा यह हुआ कि प्राचीन उद्योगों का लोप होने लगा। आजाद भारत में इन कलाकृतियों को पुनः प्रचलित करने के प्रयत्न किए जा रहे हैं, जिसके मुख्य केन्द्र आगरा, बनारस, अहमदाबाद, सूरत, राजपुताना आदि के कुछ शहर हैं।

औद्योगीकरण के परिणामस्वरूप इंग्लैंड में हाथ के करघे से काम करने वाले पुराने बुनकरों के तबाही के साथ-साथ नये मशीनों का आविष्कार हुआ था। लेकिन भारत में लाखों शिल्पियों एवं कारीगरों की तबाही के साथ-साथ विकल्प के रूप में उस स्तर के किसी नये उद्योग का विकास नहीं हुआ। ढाका, मुर्शिदाबाद, सूरत आदि पर औद्योगीकरण का बुरा प्रभाव पड़ा उनके शिल्पी एवं कारीगरों ने खेती को अपनी आजीविका का सहारा बनाया। इस प्रकार भारत में जो कृषि एवं उद्योग का संतुलन था, वह नष्ट हो गया।

औद्योगीकरण के परिणाम स्वरूप बड़े पैमाने पर उत्पादन होना शुरू हुआ, जिसकी खपत के लिए यूरोप में उपनिवेशों की होड़ शुरू हो गयी और आगे चलकर इस उपनिवेशवाद ने साम्राज्यवाद का रूप ले लिया। उपनिवेशवाद में जहाँ एक तरफ तकनीकी रूप से कमजोर देश पर आर्थिक नियंत्रण स्थापित किया जाता है वहीं साम्राज्यवाद में आर्थिक और राजनैतिक दोनों तरह के नियंत्रण स्थापित हो जाते हैं।

औद्योगीकरण के फलस्वरूप ब्रिटिश सहयोग से भारत के उद्योग में पूँजी लगाने वाले उद्योगपति पूँजीपति बन गये। अतः समाज में तीन वर्गों का उदय हुआ- पूँजीपति वर्ग, बुर्जुआ वर्ग (मध्यम वर्ग) एवं मजदूर वर्ग। आगे चलकर यही बुर्जुआ वर्ग भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन में अंग्रेजों की औपनिवेशिक एवं शोषण की नीति के खिलाफ सक्रिय भूमिका निभाया।

औद्योगीकरण ने एक नये तरह के मजदूर वर्ग को जन्म दिया । यद्यपि भारत में मजदूर 1850 ई० से पहले चाय, कॉफी और रबड़ आदि के बागानों में काम करते थे, लेकिन जब भारत में विभिन्न उद्योग लगे तो फैक्ट्री मजदूर वर्ग का जन्म हुआ, जिनका जीवन स्तर काफी निम्न होता था और जिनका शोषण उद्योगपतियों के द्वारा किया जाता था ।

औद्योगीकरण ने स्लम पद्धति की शुरूआत की। मजदूर शहर में छोटे-छोटे घरों में, जहाँ किसी तरह की सुविधा उपलब्ध नहीं थी, रहने को बाध्य थे । आगे चलकर उत्पादन के उचित वितरण के लिए ये अंदोलन शुरू किए। चूँकि पूँजीपतियों द्वारा उनका बुरी तरह शोषण किया जाता था, इसलिए उन्होंने अपना संगठन बनाकर पूँजीपतियों के खिलाफ वर्ग संघर्ष की शुरूआत की ।

मजदूरों की आजीविका

औद्योगीकरण ने नई फैक्ट्री प्रणाली को जन्म दिया, जिससे गृह उद्योगों के मालिक अब मजदूर बन गए, जिनकी आजीविका बड़े-बड़े उद्योगपतियों द्वारा प्राप्त वेतन पर निर्भर करता था। औरतों एवं बच्चों से भी 16 से 18 घंटे काम लिए जाते थे । उस समय इंगलैड में कानून मिल मालिकों के पक्ष में थे । मजदूरों की लाचारी यह थी कि वे अपने गृह उद्योग की तरफ लौट नहीं सकते थे, क्योंकि कल पूर्जो एवं मशीनों के आगे साधारण गृह उद्योग का फिर से विकसित होना असम्भव था । अतः इन मजदूरों के मन में उत्तरोत्तर यह भावना दृढ़ होती गयी कि ये नये कारखाने उनके प्रबल शत्रु हैं । चूँकि इन्हीं कारखानों ने उन्हें बेरोजगार कर दिया था । जिन कारीगरों को नौकरी फैक्ट्रियों में मिल भी गयी उनका जीवन कष्टमय ही था । अतः इन मजदूरों एवं बेरोजगार कारीगरों ने झुण्ड बनाकर घूमना शुरू किया और मशीनों को तोड़ने लग गए। यूरोप में ऊन कातने वाली महिलाओं ने भी मशीनों पर प्रहार किया । कई जगहों पर मशीनों को चौराहे पर लाकर उनमें आग भी लगा दी गई।

बेघर मजदूरों की स्थिति

औद्योगीकरण ने मजदूरों की आजीविका को तरह नष्ट-भ्रष्ट कर दिया था कि उनके पास दैनिक उपभोग के पदार्थों को खरीदने के लिए धन नहीं रहा। अतः मजदूरों ने आंदोलन का रूख किया। सन् 1830 से 1848 के मध्य मजदूरों ने संगठित होकर अपने अधिकारों के लिए लंदन में आंदोलन किया। यद्यपि 1832 ई० में 'सुधार अधिनियम' पारित हुआ, लेकिन श्रमिकों को इससे कोई लाभ नहीं हुआ, यहाँ तक कि उन्हें मतदान का भी अधिकार प्राप्त नहीं हुआ। अतः लंदन श्रमिक संघ (London Working Men's Association) के नेतृत्व में सन् 1838 में मजदूरों ने 'चार्टिस्ट आंदोलन' की शुरुआत की। इस आंदोलन को मजदूरों का पहला संगठित आंदोलन कहा जा सकता है। उस काल में, यद्यपि, इस आंदोलन को सफलता नहीं मिली, परन्तु आगे चलकर इसे इतनी अधिक लोकप्रियता हासिल हुई कि स्वयं संसद के सदस्यों को मजदूरों की मांगों की पूर्ति के लिए प्रयास करने पड़े। सन् 1918 में इंग्लैंड के सभी स्त्री-पुरुष, जो वयस्क थे, को मताधिकार प्रदान किया गया। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद वहाँ मजदूर दल की सरकार बनी,जिसने उनके हितों की रक्षा करती शुरू कर दी।
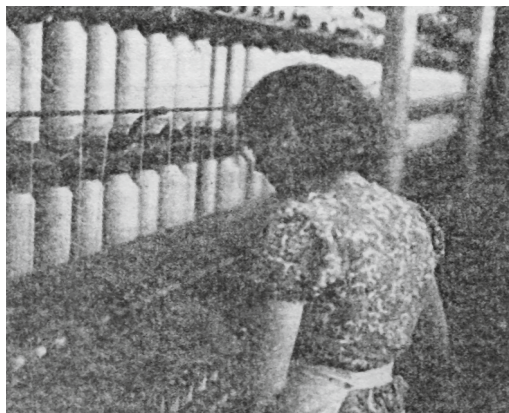
कताई करती महिला

भारत में 1850 ई० के बाद का काल भारतीय श्रमिक वर्ग का आरम्भिक काल था। भारत में उद्योगों की स्थापना से मजदूरों की संख्या में वृद्धि हुई। आगे चलकर भारतीय श्रमिक वर्ग को काम मजदूरी, लंबे कार्य के घंटे, मिलों में अस्वस्थ वातावरण, बच्चों से काम लेना तथा महिलाओं को न्यूनतम मजदूरी नहीं देना, साथ ही सामान्य सुविधाओं को भी उपलब्ध नहीं कराने की समस्या को झेलना पड़ता था। इसके अतिरिक्त शासन के उत्पीड़न से भी भारतीय मजदूरों को क्षोम उत्पन्न होने लगा था। अतः उन्होंने मिल मालिकों एवं औपनिवेशिक शोषण के खिलाफ आन्दोलन की योजना बनानी शुरू कर दी। इस कार्य में लंकाशायर के कपड़ा मिल के मालिकों ने भारतीय मजदूरों का साथ दिया और उनकी स्थिति में सुधार की मांग ब्रिटिश सरकार से की। चूँकि उन्हें डर था कि सस्ती मजदूरी होने के कारण भारत का उद्योग उनका प्रतिद्वन्द्वी न बन जाए। सन् 1875 में उनकी मांगों के आधार पर एक आयोग नियुक्त हुआ, जिसके प्रतिवेदन के आधार पर सन् 1881 में पहला 'फैक्ट्री ऐक्ट' पारित

हुआ। इसके द्वारा 7 वर्ष से कम आयु के बच्चों को कारखाने में कार्य करने पर प्रतिबन्ध लगाया गया, 12 वर्ष कम आयु के बच्चों के काम का घंटा तय किया गया तथा महिलाओं के भी काम के घंटे तथा मजदूरी को निश्चित किया गया।

फिर भी मजदूरों का असंतोष तब दिखाई पड़ा जब 1882 और 1890 के बीच मद्रास और बंबई प्रेसिडेंसियों में 25 हड़तालें दर्ज की गयीं। ये मजदूर असंगठित थे, जो गाँव से आये थे और कुछ समय तक उद्योग में लगकर अपनी स्थिति में सुधार लाना चाहते थे। सुधार नहीं आने की स्थिति में ये कारखाना छोड़कर वापस लौट जाते थे।

धीरे –धीरे ये असंगठित मजदूर राष्ट्रीय स्तर पर अपना संगठन बनाना शुरू कर दिए। 31 अक्टूबर 1920 ई० को 'अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस' (AITUC) की स्थापना की गयी और लाला लाजपत राय उसके प्रधान बनाए गए। सन् 1920 में ही अन्तर्राष्ट्रीय श्रमिक संघ (ILO) के गठन से श्रमिकों की समस्याओं को अन्तर्राष्ट्रीय भूमिका मिल गयी।

सन् 1926 में 'मजदूर संघ अधिनियम' (Trade Union Act) पारित हुआ, जिसके द्वारा पंजीकृत मजदूर संघों को मान्यता प्रदान की गयी। सन् 1929 के घोर मंदी में हड़तालों द्वारा न तो मजदूरी को ही गिरने से रोका जा सका और न ही श्रमिकों को छंटनी से रोका जा सका। इस काल में मजदूर संघों में फूट पड़ गयी। इसी समय भारत में राष्ट्रीय आंदोलन जोरों पर था। साम्यवाद की लहर रूस से भारत की तरफ आ गयी थी और राष्ट्रीय आंदोलन में उनकी भी सक्रिय भूमिका की शुरूआत हो गयी थी। मजदूर वर्ग के लोग उनके साथ राष्ट्रीय आंदोलन से जुड़ गये, क्योंकि साम्यवादी मजदूर वर्ग की स्वतंत्र राजनीतिक भूमिका पर बल देते थे।

द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान बम्बई, कानपुर, कलकत्ता, डिगबोई, झरिया, जमशेदपुर और धनबाद में मजदूरों ने मंहगाई भत्ते को लेकर हड़ताल किया। सन् 1942 में 'भारत छोड़ो आंदोलन' में इन मजदूरों ने अपने मिल मालिकों के खिलाफ आंदोलन करते हुए औपनिवेशिक शासन का विरोध किया। इससे राष्ट्रीय आंदोलन को बल मिला। लगभग सभी जगहों के मजदूर दलों ने औद्योगिक क्षेत्रों में मजदूरों की आर्थिक मांगों को उपनिवेशवाद विरोधी संघर्ष के साथ जोड़ने की कोशीश की ।

स्वंतत्रता प्राप्ति के साथ भारत का विभाजन हो गया और इसके तुरंत बाद भारत में बेरोजगारी बढ़ गयी । श्रमिकों को यह उम्मीद थी कि स्वंतत्रता प्राप्ति के बाद उनकी आर्थिक

स्थिति अच्छी हो जायेगी, परन्तु ऐसा नहीं हो सका और मजदूर संगठन तीन भागों में बँट गया। इंडियन नेशनल ट्रेड यूनियन कांग्रेस (INTUC), हिन्द मजदूर संघ (H.M.S.) और युनाइटेड ट्रेड यूनियन कांग्रेस (UTUC.)

मजदूरों की आजीविका एवं उनके अधिकारों को ध्यान में रखते हुए सरकार ने सन् 1948 ई० में न्यूनतम मजदूरी कानून (Minimum Wages Act) पारित किया, जिसके द्वारा कुछ उद्योगों में मजदूरी की दरें निश्चित की गई। प्रथम पंचवर्षीय योजना में इसे महत्वपूर्ण स्थान दिया गया तथा दूसरी योजना में तो यहाँ तक कहा गया कि न्यूनतम मजदूरी उनकी ऐसी होनी चाहिए जिससे मजदूर केवल अपना ही गुजारा न कर सके, बल्कि इससे कुछ और अधिक हो, ताकि वह अपनी कुशलता को भी रख सके। तीसरी योजना में मजदूरी बोर्ड स्थापित किया गया और बोनस देने के लिए बोनस आयोग की भी नियुक्ति हुई।

मजदूरों की स्थिति मे सुधार हेतु सन् 1962 में केन्द्र सरकार ने राष्ट्रीय श्रम आयोग स्थापित किया। इसके द्वारा मजदूरों को रोजगार उपलब्ध कराया गया तथा उनकी मजदूरी कको सुधारने का प्रयास किया गया।

इस तरह स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत सरकार ने उद्योग में लगे मजदूरों की आर्थिक स्थिति को सुधारने के लिए कई कदम उठाये हैं, चूँकि औद्योगीकरण के दौर में पूँजीपतियों द्वारा उनका शोषण किया जाता था।

कुटीर उद्योग का महत्व एवं उसकी उपयोगिता

यद्यपि औद्योगीकरण की प्रक्रिया ने भारत के कुटीर उद्योग को काफी क्षति पहुँचाई, मजदूरों की आजीविका को प्रभावित किया, परन्तु इस विषम एवं विपरीत परिस्थिति में भी गाँवों एवं कस्बों में यह उद्योग पुष्पित एवं पल्लवित होता रहा तथा जन साधारण को लाभ पहुँचाता रहा। राष्ट्रीय आन्दोलन, विशेषकर स्वदेशी आन्दोलन के समय इस उद्योग की अग्रणी भूमिका रही। अत: इसके महत्व को नकारा नहीं जा सकता। महात्मा गाँधी ने कहा था कि लघु एवं कुटीर उद्योग भारतीय सामाजिक दशा के अनुकूल है। ये राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था में बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका निर्वाहित करते हैं। कुटीर उपभोक्ता वस्तुओं, अत्यधिक संख्या को रोजगार तथा राष्ट्रीय आय का अत्यधिक समान वितरण सुनिश्चित करते हैं। तीव्र औद्योगीकरण की प्रक्रिया में लघु उद्योगों ने

सिद्ध किया कि वे बहुत तरीके से फायदेमन्द होते हैं । सामाजिक, आर्थिक व तत्सम्बन्धी मुद्धों का समाधान इन्हीं उद्योगों से होता है । इसके ठीक से कार्यकरण पर तीव्र आर्थिक विकास निर्भर करता है । यह समाजिक, आर्थिक प्रगति व संतुलित क्षेत्रवार विकास के लिए एक शक्तिशाली औजार है । इसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इन उद्योगों की प्रगति बड़े पैमाने पर रोजगार के अवसर को बढ़ाती है, कौशल में वृद्धि, उद्यमिता में वृद्धि तथा उपयुक्त तकनीक का बेहतर प्रयोग सुनिश्चत करती है । इसको प्रारम्भ करने में बहुत ही कम पूँजी की आवश्यकता होती है। ये उत्पादकीय क्षमता के फैलाव पर ध्यान देते है, जबकि औद्योगीकरण में उत्पादन शक्ति केवल कुछ हाथों में रहती है । कुटीर उद्योग जनसंख्या के बड़े शहरों में प्रवाह को रोकता है ।

आधुनिक औद्योगिक प्रणाली के विकास के पूर्व भारतीय निर्मित वस्तुओं का विश्व व्यापी बाजार था । भारतीय मलमल और छींट तथा सूती वस्त्रों की मांग पूरे विश्व में होती थी । भारतीय उद्योग न केवल स्थानीय आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए माल उपलब्ध कराते थे, बल्कि वे निर्मित वस्तुओं का निर्यात भी करते थे । भारत से निर्यात के मुख्य वस्तुओं में रूई तथा सिल्क, छींट, रगारंग के वर्त्तन तथा ऊनी कपड़े शामिल हैं ।

ब्रिटेन में उच्च वर्ग के लोग भारत में हाथों से बनी हुई वस्तुओं को ज्यादा तरजीह देते थे । हाथों से बने महीन धागों के कपड़े, तसर सिल्क, बनारसी तथा बालुचेरी साड़ियाँ तथा बुने हुए बॉडर वाली साड़ियाँ एवं मद्रास की प्रसिद्ध लुंगियों की मांग ब्रिटेन के उच्च वर्गों में अधिक थी । मशीनों द्वारा इसकी नकल नहीं की जा सकती थी और विशेष बात तो यह थी कि इस पर अकाल और बेरोजगारी का भी असर नहीं होता था क्योंकि यह महंगी होती थी और सिर्फ उच्च वर्ग के द्वारा विदेशों में उपयोग में लायी जाती थीं ।

अंग्रेजों के साथ राजनैतिक सम्बन्ध कायम होने और औद्यौगीकरण के कारण भारत का कुटीर उद्योग एवं हस्त शिल्प उद्योग का पतन हुआ । चूकि ब्रिटिश सरकार की नीति भारत में विदेशी निर्मित वस्तुओं का आयात एवं भारत के कच्चा माल के निर्यात को प्रोत्साहन देना था, इसलिए ग्रामीण उद्योग पर कोई ध्यान नहीं दिया गया । फिर भी राष्ट्रीय आन्दोलन, विशेषकर स्वदेशी आन्दोलन के समय खादी वस्त्रों की मांग ने कुटीर उद्योग को बढ़ावा दिया । दो विश्वयुद्धों के बीच कुटीर उद्योग द्वारा उत्पादित वस्तुओं की मांग में वृद्धि हुई और कारखानों के साथ कुटीर उद्योग भी क्षेत्रीय स्तर पर उत्पादन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते रहे ।

सन् 1947 ई० स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद कुटीर उद्योग की उपयोगिता और उसके विकास हेतु भारत सरकार की नीतियों में परिवर्तन हुआ। 6 अप्रैल 1948 की औद्योगिक नीति के द्वारा लघु एवं कुटीर उद्योग को प्रोत्साहन दिया गया। सन् 1952-53 ई० में पाँच बोर्ड बनाए गए, जो हथकरघा, सिल्क, खादी, नारियल की जटा तथा ग्रामीण उद्योग हेतु थे। सन् 1956 एवं 1977 ई० के औद्योगिक नीति मे इनके प्रोत्साहन की बात कही गई। आगे चलकर 23 जुलाई 1980 को औद्योगिक नीति घोषणापत्र जारी किया गया, जिसमें कृषि आधारित उद्योगों की बात कही गयी एवं लघु उद्योगों की सीमा भी बढ़ायी गई।

इस तरह हम देखते हैं कि स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत सरकार ने जहाँ एक तरफ कुटीर उद्योग को बढ़ावा दिया वहीं दूसरी औद्योगीकरण की प्रक्रिया भी आगे बढ़ने लगी। अब रसायन एवं बिजली जैसे औद्योगिक क्षेत्रों का विस्तार होने लगा तथा विद्युत इलेक्ट्रोनिक एवं स्वचालित मशीनों का प्रयोग किया जाने लगा। उन्नीसवीं शताब्दी में ब्रिटेन की औद्योगिक नीति ने जिस तरह औपनिवेशिक शोषण की शुरुआत की, भारत में राष्ट्रवाद की नींव उसका प्रतिफल था। यही कारण था कि जब महात्मा गाँधी ने असहयोग आन्दोलन की शुरुआत की तो राष्ट्रवादियों के साथ अहमदाबाद एवं खेड़ा मिल के मजदूरों ने उनका साथ दिया। महात्मा गाँधी ने विदेशी पुनर्जीवित करने का प्रयास किया तथा उपनिवेशवाद के खिलाफ उसका प्रयोग किया। पूरे भारत के मिलों में काम करने वाले मजदूरों ने भारत छोड़ो आन्दोलन में उनका साथ दिया। अतः औद्योगीकरण ने, जिसकी शुरुआत एक आर्थिक प्रक्रिया के तहत हुई थी, भारत में राजनैतिक शक्ति समझा जाने वाला ब्रिटेन अपने प्रथम स्थान से वंचित हो गया और अमेरिका एवं जर्मनी जैसे देश औद्योगिक विकास की दृष्टि से ब्रिटेन से काफी आगे निकत गए।

अभ्यास

वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Objcetive Questions)

1. स्पिनिंग जेनी का आविष्कार कब हुआ ?

(क) 1769 (ख) 1770

(ग) 1773 (घ) 1775

2. सेफ्टी लैम्प का आविष्कार किसने किया ?

(क) जेम्स हारग्रीब्ज (ख) जॉन के

(ग) क्राम्पटन (घ) हम्फ्री डेवी

3. बम्बई में सर्वप्रथम सूती कपड़ों के मिलों की स्थापना कब हुई ?

(क) 1851 (ख) 1885

(ग) 1907 (घ) 1914

4. 1917 ई० में भारत में पहला जूट मिल किस शहर में स्थापित हुआ ?

(क) कलकत्ता (ख) दिल्ली

(ग) बम्बई (घ) पटना

5. भारत में कोयला उद्योग का प्रारम्भ कब हुआ ?

(क) 1907 (ख) 1914

(ग) 1916 (घ) 1919

6. जमशेद जी टाटा ने टाटा आयरन एण्ड स्टील कम्पनी की स्थापना कब की ?

(क) 1854 (ख) 1907

(ग) 1915 (घ) 1923

7. भारत में टाटा हाइड्रो-इलेक्ट्रीक पावर स्टेशन की स्थापना कब हुई ?

(क) 1910 (ख) 1951

(ग) 1955 (ग) 1962

8. इंग्लैंड में सभी स्त्री एवं पुरुषों को वयस्क मताधिकार कब प्राप्त हुआ ?

(क) 1838 (ख) 1881

(ग) 1918 (ग) 1932

9. 'अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस' की स्थापना कब हुई ?

(क) 1848 (ख) 1881

(ग) 1885 (ग) 1920

10. भारत के लिए पहला फैक्ट्री ऐक्ट कब पारित हुआ ?

(क) 1838 (ख) 1858

(ग) 1881 (ग) 1911

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें।

1. सन् 1838 ई० में ....में चार्टिस्ट आन्दोलन की शुरुआत हुई।
2. सन् .... में मजदूर संघ अधिनियम पारित हुआ।
3. 'न्यूनतम मजदूरी कानून सन् .... ई० मे हुई।
4. अन्तर्राष्ट्रीय श्रमिक संघ की स्थापना ....ई० में हुई।
5. प्रथम फैक्ट्री ऐक्ट में महिलाओं एवं बच्चों की .... एवं को निश्चित किया गया।

सुमेलित करें –

(क)	स्पिनिंग जेनी	(क)	सैम्यूल क्राम्पटन
(ख)	फ्लाइंग शट्ल	(ख)	एडमण्ड कार्टराईट
(ग)	पावर लुम	(ग)	जेम्स वॉट
(घ)	वाष्प इंजन	(घ)	जॉन के
(ड.)	स्पिनिंग म्यूल	(ड.)	जेम्स हारग्रीब्ज

अतिलघु उत्तरीय प्रश्न (20 शब्दों में उत्तर दें)

1. फैक्ट्री प्रणाली के विकास के किन्ही दो करणों को बतायें ।
2. बुर्जुआ वर्ग की उत्पति कैसे हुई ?
3. अठारहवीं शताब्दी में भारत के मुख्य उद्योग कौन-कौन से थे ?
4. निरूद्योगीकरण से आपका क्या ताप्पर्य है ?
5. औद्योगिक आयोग की नियुक्ति कब हुई ? इसके क्या उद्देश्य थे ?

लघु उत्तरीय प्रश्न (60 शब्दों में उत्तर दें)

1. औद्योगीकरण से आप क्या समझते हैं ?
2. औद्योगीकरण ने मजदूरों की आजीविका को किस तरह प्रभावित किया ?
3. स्लम पद्धति की शुरूआत कैसे हुई ?
4. नयुनतम मजदूरी कानून कब पारित हुआ और इसके क्या उद्देश्य थे?
5. कोयला एवं लौह उद्योग ने औद्योगीकरण को गति प्रदान की, कैसे ?

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न (150 शब्दों में उत्तर दें)

1. औद्योगीकरण के कारणों का उल्लेख करें ।
2. औद्योगीकरण के परिणामस्वरूप होने वाले परिवर्त्तनों पर प्रकाश डालें ।
3. उपनिवेशवाद से आप क्या समझते हैं ? औद्योगिकरण ने उपनिवेशवाद को जन्म दिया कैसे?
4. कुटीर उद्योग के महत्व एवं उसकी उपयोगिता पर प्रकाश डालें।
5. औद्योगीकरण ने सिर्फ आर्थिक ढाँचे को ही प्रभावित नहीं किया बल्कि राजनैतिक परिवर्त्तन का भी मार्ग प्रशस्त किया, कैसे?

वर्ग परिचर्चा

1. अपने आस पास के किसी कुटीर उद्योग वाले क्षेत्र का पता लगायें। यह उद्योग किस वस्तु के उत्पादन से सम्बंधित है। इसमें कितने मजदूर काम करते हैं तथा मजदूरों की स्थिति कैसी है? - इसका विवरण तैयार कर वर्ग में शिक्षक के साथ इस पर परिचर्चा करें।

इकाई : 6

शहरीकरण एवं शहरी जीवन

शहरीकरण का अर्थ है किसी गाँव का शहर या कस्बे के रूप में विकसित होने की प्रक्रिया। गाँव और शहर के बीच काफी भिन्नताएँ हैं। गाँव की आबादी कम होती है नगर की ज्यादा, गाँव में खेती और पशुपालन मुख्य आजीविका है, शहर में व्यापार और उत्पादन, गाँव में प्राकृतिक वातावरण स्वच्छ है, शहर में प्रदूषित। शिक्षा, यातायात, स्वास्थ्य सुविधाएँ आदि में शहर अधिक उन्नत अवस्था में होती है। गाँव से शहरों का विकास एक सतत् प्रक्रिया है जो कई शताब्दियों से चली आ रही है। समाजशास्त्री के अनुसार नगरीय जीवन तथा आधुनिकता एक-दूसरे के पूरक हैं और शहर को आधुनिक व्यक्ति का प्रभाव क्षेत्र माना जाता है। शहर व्यक्ति को सन्तुष्ट करने के लिए अंतहीन संभावनाएँ प्रदान करता है। आधुनिक काल से पूर्व व्यापार एवं धर्म शहरों की स्थापना के महत्वपूर्ण आधार थे। ऐसे वे क्षेत्र थे जो मुख्य व्यापार मार्ग अथवा पत्तन और बन्दरगाहों के किनारे बसे थे। कुछ ऐसे क्षेत्र थे जो धार्मिक स्थल के रूप में भारी संख्या में भक्तों को आकर्षित करते थे तथा ये धार्मिक स्थल नगर अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ भी करते थे।

मध्यकालीन सामंती सामाजिक संरचना एवं मध्यकालीन जीवन मुल्य तेरहवीं शताब्दी तक अपने शिखर पर थे। कई प्रतिरोध के पश्चात् भी यह व्यवस्था लगभग सोलहवीं शताब्दी तक बनी रही। इस व्यवस्था ने नई एवं बाह्य शक्तियों को जो इसे परिवर्तित करना चाहती थी यथासंभव नियंत्रित रखा, रोका और अपने में समाहित किया। अंततः एक नई सामाजिक एवं राजनीतिक संरचना विकसित हुई, जो अपनी परम्पराओं एवं स्वरूप के लिए प्राचीन परिपाटी के प्रति ऋणी तो थी किन्तु नवीन राजनीतिक एवं आर्थिक अवधारणाओं को स्वीकार करती थी जो अधिक लौकिक थी एवं जिज्ञासु प्रवृति से प्रेरित थी।

इसी पृष्ठभूमि में शहरी जीवन पुनः उदय हुआ। कालांतर में ऐसे शहरों का विस्तार हुआ जिसमें भव्य परकोटों का निर्माण हुआ। ये शहर तथा इनके व्यस्त उद्यमी नागरिक भविष्य

के द्रष्टा एवं अग्रदूत थे । ये शहर नये राजमार्गों से जोड़े गये तथा इनके बीच सड़क एवं जलमार्गों द्वारा व्यापार होने लगा ।

शहरीकरण की प्रक्रिया बहुत लम्बी रही है लेकिन आधुनिक शहर के उदय का इतिहास लगभग दो सौ वर्ष पुराना है । तीन ऐतिहासिक प्रक्रियाओं ने आधुनिक शहरों की स्थापना में निर्णायक भूमिका निभाई । पहला, औद्योगिक पूंजीवाद का उदय, दूसरा, विश्व के विशाल भूभाग पर औपनिवेशिक शासन की स्थापना और तीसरा लोकतांत्रिक आदर्शों का विकास।

इस तरह ग्रामीण एवं सामंती व्यवस्था से हटकर एक प्रगतिशील शहरी व्यवस्था की ओर बढ़ने की प्रवृति बढ़ी । अतः नगरवाद, जनसमूह के एक बड़े भाग की जीवन पद्धति के रूप में आधुनिक घटना है ।

एक स्थायी सामाजिक जीवन की शुरुआत गॉव से हुई । इस संक्रमण की प्रक्रिया में जहॉ खानाबदोशी जीवन की पद्धति थी, जिसकी विशेषता शिकार, भोजन संकलन तथा अस्थायी कृषि पर आधारित थी, उसके स्थान पर स्थानीय कृषि को प्रारंभ किया गया ।

भूमि निवेश तथा तकनीकी खोजों ने कृषि में अतिरिक्त उत्पादन की संभावना को जन्म दिया जो उसके सामाजिक अस्तित्व के लिए अपरिहार्य था। अतः स्थायी कृषि के प्रभाव से संपत्ति का जमाव संभव हुआ जिसके कारण सामाजिक विषमताएँ भी आईं । अत्यधिक उच्चश्रम विभाजन ने व्यावसायिक विशिष्टता की आवश्यकता को जन्म दिया । इन परिवर्तनों के आधार पर ग्रामीण जीवन के उद्‌भव को एक आधार मिला जहॉ लोगों का निवास एक विशिष्ट प्रकार के सामाजिक संगठन पर आधारित था ।

आर्थिक तथा प्रशासनिक संदर्भ में ग्रामीण तथा नगरीय व्यवस्था के दो मुख्य आधार हैं जनसंख्या का घनत्व तथा कृषि आधारित आर्थिक क्रियाओं का अनुपात । अतः शहरों तथा नगरों में जनसंख्या का घनत्व अधिक होता है । अथवा प्रति इकाई क्षेत्र में लोगों की संख्या की दृष्टि से वे छोटे होते हैं । शहरों तथा नगरों से गॉव को उनके आर्थिक प्रारूप में कृषिजन्य क्रियाकलापों में एक बड़े भाग के आधार पर भी अलग किया जाता है । दूसरे शब्दों में गॉवों की आबादी का एक बड़ा हिस्सा कृषि संबंधी व्यवसाय से जुड़ा है । अधिकांश वस्तुएँ कृषि उत्पाद ही होती है जो इनकी आय का प्रमुख स्रोत होता है । अतः एक कृषि प्रधान अर्थव्यवस्था मूलतः जीवन निर्वाह अर्थव्यवस्था की अवधारणा पर आधारित थी । ऐसे वर्ग का नगरों की ओर बढ़ना एक गतिशील मुद्रा प्रधान अर्थव्यवस्था के आधार पर संभव हुआ जो प्रतियोगी था एवं एक उद्यमी प्रवृति से प्रेरित

था । इसी सामाजिक आर्थिक परिवर्तन के आधार पर प्रवजन की प्रक्रिया प्रारम्भ हुई । भारी संख्या में कृषक वर्ग ग्रामीण क्षेत्रों से निकल कर शहरों की ओर नए अवसर की तलाश में बढ़े। प्रारम्भ में शहरों के बसने में इनका अभिन्न योगदान रहा। परन्तु शहरी व्यवस्था के अन्तर्गत यह तब भी उपेक्षित वर्ग रहे जिसने सामाजिक भेदभाव की भावना को बनाये रखा। इस दिशा में बढ़ते हुए आधुनिक शहरों का विकास हुआ जिसमें शहरी जीवन की ओर रुझान बढ़ा। यह ऐसी प्रक्रिया है जहाँ क्रमशः नगरीय जनसंख्या का बड़ा से बड़ा हिस्सा ग्रामीण क्षेत्रों की अपेक्षा शहरों में बसने लगा। शहरों के आकार और जटिलता में भी अन्तर उत्पन्न हुआ। राजनीतिक प्राधिकार का केन्द्र प्रायः शहर बन गये जहाँ दस्तकार, व्यापारी और अधिकारी बसने लगे।

आधुनिक काल में औद्योगीकरण ने शहरीकरण के स्वरूप को गहन रूप से प्रभावित किया। औद्योगिक क्रांति की शुरुआत होने के कई दशक बाद तक भी अधिकतर पश्चिमी शहर मोटे तौर पर ग्रामीण किस्म के शहर ही थे।

शहरों के विकासक्रम की ओर दृष्टि डाली जाये तब उनके विकास की प्रक्रिया को कस्बों के रूप में प्रारंभ होते हुए देखा जा सकता है। जहाँ कस्बों में शिल्पकार, व्यापारी, प्रशासन तथा शासक रहते थे। कस्बों का ग्रामीण जीवन पर प्रभाव था जिसे यह करो और अधिशेष के प्राप्ति के आधार पर स्वयं को मजबूत करते थे। अधिकांशतः कस्बों और शहरों की किलाबंदी की जाती थी जो ग्रामीण क्षेत्रों से इनकी पृथकता को चिह्नित करती थी ।

कस्बा – ग्रामीण अंचल में एक छोटे नगर को माना जाता है जो अधिकांशतः स्थानीय विशिष्ट व्यक्ति का केन्द्र होता है।

गंज– एक छोटे स्थायी बाजार को कहा जाता है। कस्बा और गंज दोनों कपड़ा, फल, सब्जी तथा दूध उत्पादों से संबद्ध थे। विशिष्ट परिवारों तथा सेना के लिए सामग्री उपलब्ध कराते थे।

अठारहवीं शताब्दी में राजनीतिक तथा व्यापारिक पुनर्गठन के साथ पुराने पतनोन्मुख हुए और नये नगरों का विकास होने लगा। शहर घनी आबादी वाले आधुनिक प्रकार के महानगर होने लगे जहाँ एक पूरे क्षेत्र के राजनीतिक व आर्थिक कामों को देखा जाता है और उनकी आबादी बहुत बड़ी होती है।

इंग्लैंड – औद्योगीकरण ने शहरीकरण के स्वरूप को गहन रूप से प्रभावित किया। फिर भी 1850 ई० तक अधिकांश पश्चिमी शहर लगभग ग्रामीण किस्म के शहर ही थे। लीड्स और

मैनचेस्टर जैसे प्रारंभिक औद्योगिक शहर अठारहवीं शताब्दी के अंत में स्थापित किये गये। कपड़ा मिलों के कारण प्रवासी मजदूर शहरों की ओर भारी संख्या में आकर्षित हुए। 1851 में मैनचेस्टार में रहने वाले तीन चौथाई से अधिक लोग ग्रामीण इलाकों से आए प्रवासी मजदूर थे ।

1750 ई. तक इंग्लैंड और वेल्स का हर नौ में से एक आदमी लन्दन में रहता था। यह एक महाकाय शहर था जिसकी आबादी 6,75,000 तक थी । उन्नीसवीं शताब्दी में भी लंदन के विस्तार की प्रक्रिया जारी रही । 1810 से 1880 ई. तक उसकी आबादी की संख्या 10 लाख से बढ़कर 40 लाख यानि चार गुना हो चुकी थी । हालांकि लंदन में विशाल कारखाने नहीं थे फिर भी यह प्रवासियों को बड़ी संख्या में आकर्षित करने में सफल रहा । लंदन के पॉच प्रमुख उद्योगों में लंदन की गोदी के अलावा, (i) छपाई और स्टेशनरी उद्योग, (ii) परिधान और जूता उद्योग, (iii) धातु एवं इंजीनियरिंग उद्योग, (iv) लकड़ी व फर्नीचर उद्योग तथा (v) चिकित्सा उपकरण व घड़ी जैसे सटीक माप वाले उत्पादों और कीमती धातुओं की चीजें बनाने वाले उद्योग। बीसवीं शताब्दी में प्रथम विश्वयुद्ध के समय लंदन में मोटरकार और बिजली के उपकरणों का भी उत्पादन प्रारम्भ हुआ जिससे कि शहर की तीन चौथाई नौकरियॉ इन्हीं कारखानों में सीमित हो गईं ।

लंदन का फैलाव : चार अलग दौरों में लंदन की आबादी की दर्शाने वाला मानचित्र

महानगर–किसी प्रांत या देश का विशाल और घनी आबादी वाला शहर जो प्राय: वहॉ की राजधानी भी होता है।

उन्नीसवीं शताब्दी का लंदन क्लर्कों और दुकानदारों, छोटे पेशेवरों और निपुण कारीगरों, कुशल व शारीरिक श्रम करनेवालों की बढ़ती आबादी, सिपाहियों, नौकरों, दिहाड़ी मजदूरों, फेरीवालों और भिखारियों का शहर था ।

शहरों की ओर बढ़ते रुझान ने लंदन जैसे पुराने शहर के स्वरूप को भी बदल दिया। चूँकि यह शहर प्रवासियों का शहर बनता जा रहा था, अतः इस घनी आबादी वाले शहर में इन नवागंतुकों के लिए सस्ते और सामान्यतः असुरक्षित आवास बनने लगे, **क्योंकि** कारखाने के मालिक प्रवासी कामगारों को रहने की जगह मुहैय्या नहीं कराते थे। प्रवजन का यह एक प्रमुख परिणाम पाया गया।

टेनेमेंट्स : कामचलाऊ और अक्सर बेहिसाब भीड़ वाले अपार्टमेंट मकान। ऐसे मकान बड़े शहरों के गरीब इलाके में अधिक पाए जाते थे।

स्ट्रेंजर्स होम (अजनबियों का घर) दि-इलेस्ट्रेड न्यूज-1870

बहुत सारे शहरों में खैराती संस्थाओं और स्थानीय शासन की ओर से जाड़ों में रैन बसेरे और अजनबी घरों की व्यवस्था की जाती थी। गरीब व्यक्ति भोजन, गर्माहट और आसरा की आशा में इन स्थानों पर बड़ी संख्या में एकत्रित होते थे।

लंदन अगर एक ओर मनीषियों और धनी लोगों का शहर था तो दूसरा सत्य यह भी था कि ये अवसर केवल कुछ व्यक्तियों को ही प्राप्त थे जो सामाजिक तथा आर्थिक विशेषाधिकार प्राप्त अल्पसंख्यक वर्ग थे जो पूर्णरूपेण उन्मुक्त तथा सन्तुष्ट जीवन जी सकते थे। चूँकि अधिकतर व्यक्ति जो शहरों में रहते थे, बाध्यताओं में ही सीमित थे तथा उन्हें सापेक्षिक स्वतंत्रता प्राप्त नहीं थी। अतः शहर का जीवन परस्पर विरोधी छवियों और अनुभवों को जन्म दे रहा था। अगर एक ओर संपन्नता थी तो दूसरी ओर गरीबी, एक तरफ बाह्य चमक दमक थी तो दूसरी ओर धूल और

अंधकार एक ओर अवसर थे तो दूसरी ओर निराशा थी । जैसे-जैसे लंदन विकसित हुआ वैसे ही कुछ नकारात्मक प्रवृत्तियों में भी वृद्धि हुई जैसे- **विभिन्न प्रकार के** अपराधों में वृद्धि हुई जिससे सामाजिक नैतिक मूल्यों का पतन हुआ । डेविड थॉम्सन के अनुसार इस औद्योगीकरण का सबसे बड़ा प्रभाव सामाजिक नैतिक मूल्यों में बदलाव लाया। 1870 ई. के दशक में लंदन में कम-से-कम बीस हजार अपराधी रहते थे । हेनरी मेह्यू के अनुसार एक ऐसी सूची बनी जहाँ लोग अपराधों से ही अपनी आजीविका चलाते थे। इसके अलावा 1861 की जनगणना ने घरेलू नौकरों की संख्या में अत्यधिक वृद्धि होने की जानकारी प्रदान की जिनमें महिलाओं की संख्या अधिक थी । बाल मजदूरों की संख्या में भी वृद्धि हुई । 1870 में अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा कानून और 1902 से लागू किए गए फैक्ट्री कानून के बाद बच्चों को औद्योगिक कामों से बाहर रखने की व्यवस्था कर दी गई ।

शहरों में अगर एक ओर रोजगार था तो दूसरी ओर उसके सीमित रूप जहाँ अल्पकुशल मजदूरों को एक निर्धन वर्ग के रूप में उभरते हुए पाया गया जो झोपड़पट्टियों में गुजारा कर रहे थे । शहर के गरीबों के लिए आवास की सुविधा उपलब्ध कराने के उपाय किए जाने लगे। एक कमरे वाले मकानों को जनस्वास्थ्य के लिए खतरा माना गया।चूँकि इनमें हवा निकासी का इन्तजाम नहीं था दूसरे इनमें आग लगने का खतरा बना रहता था और तीसरा इस विशाल जनसमूह के कारण सामाजिक उथल-पुथल की आशंका बनी रहती थी। इन आशंकाओं को दूर करने के उद्देश्य से मजदूरों के लिए आवासीय योजनाएँ शुरू की गई ।

लंदन की एक झोपडपट्टी-1889 (बीसवीं शताब्दी के मजदूरों में आवासों का घनत्व एवं साफ सफाई कमी

लंदन की भीड़ भरी बस्तियों को कम करने, खुले स्थानों को हरा-भरा बनाने, आबादी कम करने और शहर को योजनानुसार बसाने की कोशिश की गई। लंदन के इर्द-गिर्द हरित पट्टी विकसित करके देहात और शहर के दूरी को कम करने के उपाय किये गये। इस अवधारणा को वास्तुकार और योजनाकार एवेनेजर हावर्ड ने 'गार्डन सिटी' (बगीचों का शहर) का नाम दिया जिसमें साझा बाग-बगीचे लगाए गए पर ऐसे मकान केवल खाते-पीते कामगार ही खरीद सकते थे।

विश्वयुद्धों के दौरान (1919-39) मजदूर वर्ग के लिए आवास का इन्तजाम करने का उत्तरदायित्व ब्रिटिश राज्य ने लिया और स्थानीय शासन के द्वारा 10 लाख मकान बनाए गए जो छोटे परिवारों को ध्यान में रखकर निर्मित हुए। इस अवधि में शहर इतना फैल चुका था कि अब लोग पैदल अपने काम तक नहीं पहुँच सकते थे।अत: शहर के आसपास यानि उपशहरी बस्तियों के अस्तित्व में आने से सार्वजनिक परिवहन व्यवस्था अनिवार्य रूप से लागू की गई। देशिक जीवन क्षमता को आश्वस्त किया गया। संगठन एवं प्रबंधन द्वारा निवास तथा आवासीय पद्धति को विकसित किया गया, यातायात के साधन उपलब्ध कराये गए ताकि कर्मचारियों को बड़ी संख्या मे कार्य स्थल तक पहुँचाया जा सके। जनस्वास्थ्य, स्वच्छता, जनसुरक्षा, पुलिस की आवश्यकता महसूस की गई।

इस चित्र में न्यू अर्जविक, एक बगीचा उपशहर इसमें चारों तरफ से बंद हरे भरे स्थान के सहारे एक नया सामुदायिक जीवन विकसित हो रहा था जिसे रेमंड अनवित और वैरी पार्कर ने तैयार किया था।

परिवहन व्यवस्था आवासीय क्षेत्रों के सापेक्ष औद्योगिक तथा वाणिज्यिक कार्यस्थलों से प्रभावित हुई जिससे वृहत् जन परिवहन प्रणाली का निर्माण हुआ। परिवहन व्यवस्था का नगर में काम करनेवालों की जीवन की गुणवत्ता पर सीधा प्रभाव पड़ा। जन-परिवहन के साधनों में परिवर्तन से सामाजिक परिवर्तन भी आया। शहरों मे आवागमन की सुविधा बढ़ी। लंदन के भूमिगत

रेलवे ने आवास की समस्या को भी हल किया जिसके जरिये लोग भारी संख्या में शहर के विभिन्न छोर तक पहुॅच सकते थे ।

दुनिया की सबसे पहली भूमिगत रेल के पहले खंड का उद्घाटन 10 जनवरी 1863 ई० को किया गया । यह रेल लाईन लंदन की पैडिंग्ल और कैरिंग्टन स्ट्रीट के बीच स्थित थी। पहले दिन ही यात्रियों की संख्या 10,000 तक थी । 1880 ई. तक भूमिगत रेल नेटवर्क का विस्तार हो चुका था जिसमें सालान चार करोड़ लोग यात्रा करते थे ।

चार्ल्स डिकेन्स ने 1848 में लिखा कि भूमिगत रेल के कारण मकान गिराए गए सड़कें बंद हुई लंदन के गरीबों को बड़ी संख्या में उजाड़ा गया पर इन अड़चनों के बावजूद भूमिगत रेलवे सफल हुई । बीसवीं शताब्दी के आने तक न्यूयार्क, टोकियो और शिकागो जैसे विशाल महानगर ने अपनी एक सुव्यवस्थित सार्वजनिक परिवहन व्यवस्था स्थापित की जिसे लेकर उपनगरीय क्षेत्रों को जोड़ा जा सका ।

इस चित्र में श्वासावरोधन-गोल्डर्स ग्रीन स्टेशन के लिए लंदन अंडरग्राउंड का विज्ञापन सन् 1900 के आसपास-विज्ञापन में लोगों को हरे-भरे, कम भीड़ वाले सुन्दर उपशहरी इलाकों में बसने के लिए प्रेरित किया जा रहा है ।

जन परिवहन के साधनों में परिवर्तन से शहरों में सामाजिक परिवर्तन भी आए । समर्थ, कार्यकुशल तथा सुरक्षित जन-परिवहन शहरी जीवन में भारी परिवर्त्तन लाए तथा शहरों की आर्थिक स्थिति को भी प्रभावित किया जिससे सामाजिक व्यवस्था को भी एक नया आकार प्रदान किया गया ।

गोल्डर्स ग्रीन स्टेशन के लिए लंदन अंडरग्राउंड का विज्ञापन, सन1900 के आसपास

सामाजिक बदलाव और शहरी जीवन :

शहरों का सामाजिक जीवन आधुनिकता के साथ अभिन्न रूप से जोड़ा जा सकता है। वास्तव में यह एक-दूसरे की **अंतर्भिव्यक्ति** है। शहरों को आधुनिक व्यक्ति का प्रभाव क्षेत्र माना जाता है।

> **व्यक्तिवाद**
> **वह सिद्धांत जिससे समुदाय की नहीं बल्कि व्यक्ति की स्वतंत्रता और अधिकार को स्वीकार किया जाता है।**

सघन जनसंख्या के ये स्थल जहाँ कुछ मनीषियों के लिए अवसर प्रदान करता है वहीं यथार्थ में यह अवसर केवल कुछ व्यक्तियों को ही प्राप्त होता है। परन्तु इन बाध्यताओं के बावजूद शहर 'समूह पहचान' के सिद्धान्त को आगे बढ़ाते हैं जो कोई कारणों से जैसे-प्रजाति धर्म, नृजातीय, जाति, प्रदेश तथा समूह शहरी जीवन का पूर्ण प्रतिनिधित्व करते हैं। वास्तव में कम स्थान में अत्यधिक लोगों का जमाव, पहचान को और तीव्र करता है तथा उनमें एक ओर सहअस्तित्व की भावना उत्पन्न करता है तो दूसरी ओर प्रतिरोध का भाव। अगर एक ओर सह-अस्तित्व की भावना है तो दूसरी ओर पृथक्करण की प्रक्रिया जिसके परिणामस्वरूप मिश्रित प्रतिवेशी एकल समुदाय बदलने के उपाय में बदल गये। इस प्रकार मुहल्ले 'घेटो' कहलाये।

> **घेटो** – सामान्यतः यह शब्द मध्य यूरोपीय शहरों में यहूदियो की बस्ती के लिए प्रयोग किया जाता है। आज के संदर्भ में यह विशिष्ट धर्म, नृजाति, जाति या समान पहचान वाले लोगों के साथ रहने को इंगित करता है। घेटोकरण की प्रक्रिया में मिश्रित विशेषताओं वाले पड़ोस के स्थान पर एक समुदाय पड़ोस में बदलाव का होना, सामुदायिक दंगों को ये एक विशिष्ट देशिक रूप देते हैं।

शहरों में नए सामाजिक समूह बने। सभी वर्ग के लोग बड़े शहरों की ओर बढ़ने लगे। शहरी सभ्यता ने पुरुषों के साथ महिलाओं में भी व्यक्तिवाद की भावना को उत्पन्न किया एवं परिवार की उपादेयता और स्वरूप को पूरी तरह बदल दिया। जहाँ पारिवारिक सम्बन्ध अब तक बहुत मजबूत थे वहीं ये बंधन ढ़ीले पड़ने लगे। एक ओर उनके अधिकारों के लिए आंदोलन चलाये गये। महिलाओं के मताधिकार आंदोलन या विवाहित महिलाओं के लिए संपत्ति में अधिकार आदि **आंदोलनों** के माध्यम से महिलाएँ लगभग 1870 ई. के बाद से राजनीतिक गतिविधियों मे हिस्सा ले पाईं। समाज में महिलाओं की स्थिति में भी परिवर्तन आए। उनके वैचारिक उद्भव को सांस्कृतिक उदाहरण के रूप में देखा जा सकता है। आधुनिक काल में महिलाओं ने

समानता के लिए संघर्ष किया और समाज को कई रूपों में परिवर्तित करने में सहायता दी । ऐतिहासिक परिस्थितियाँ महिलाओं के संघर्ष के लिए कहीं सहायक सिद्ध हुई हैं तो कहीं बाधक । उदाहरण के लिए द्वितीय विश्वयुद्ध के समय पाश्चात्य देशों में महिलाओं ने कारखानों में काम करना प्रारंभ किया । एक दूसरे प्रकार का उदाहरण, जहाँ महिलाएँ अपनी अस्मिता में परिवर्तन लाने में सफल हुईं वह क्षेत्र था उपभोक्ता विज्ञापन। अधिकतर शहरी समाज में महिलाएँ घरेलू उपयोग के वस्तुओं का निर्णय लेती हैं, अतः विज्ञापनों ने उपभोक्ता के रूप में महिलाओं की सोच के प्रति संवेदनशील बनाया ।

शहरों की बढ़ती आबादी के साथ उन्नीसवीं शताब्दी में अधिकतर आंदोलन जैसे चार्टिड्ग (सभी व्यस्क पुरुषों के लिए चलाया गया आंदोलन) दस घंटे का आंदोलन (कारखानों में काम के घंटे निश्चित करने के लिए चला आंदोलन) में पुरुष भी बड़ी संख्या में एकजुट हुए व्यवसायी वर्ग–नगरों के उद्‌भव का एक प्रमुख कारण व्यावसायिक पूँजीवाद के उदय के साथ संभव हुआ । व्यापक स्तर पर व्यवसाय, बड़े पैमाने पर उत्पादन, मुद्राप्रधान अर्थव्यवस्था, शहरी अर्थव्यवस्था जिसमें काम के बदले वेतन, मजदूरी का नगद भुगतान, एक गतिशील एवं प्रतियोगी अर्थव्यवस्था, स्वतंत्र उद्यम, मुनाफा कमाने की प्रवृत्ति, मुद्रा, बैंकिंग, साख बिल का विनिमय, बीमा, अनुबंध कम्पनी साझेदारी, ज्वाएंट स्टॉक, एकाधिकार आदि इस पूंजीवादी व्यवस्था की विशेषता रही। यह एक नए सामाजिक शक्ति के रूप में उभर कर आए ।

लैसेज फेयर : आर्थिक उन्मुक्तवाद था जिसमें सरकार का किसी रूप में हस्तक्षेप नहीं था एवं पूंजीपतियों को पूरी स्वतंत्रता थी ।

नये मिल मालिक वास्तव में पहले औद्योगिक पूंजीपति थे । इन्होंने सम्पदा, प्रतिष्ठा तथा प्रभाव स्वयं अपनी सूझबूझ, दूरदर्शिता एवं अध्यवसाय से अर्जित की थी । इस वर्ग का प्रभाव विशेषकर इंग्लैंड की राजनीति पर पड़ा ।

मध्यम वर्ग–शहरों के उद्‌भव ने मध्यमवर्ग को भी शक्तिशाली बनाया । एक नए शिक्षित वर्ग का अभ्युदय जहाँ विभिन्न पेशों में रहकर भी औसतन एक समान आय प्राप्त करनेवाले वर्ग के रूप में उभर कर आए एवं बुद्धिजीवी वर्ग के रूप में स्वीकार किए गए। यह विभिन्न रूप में कार्यरत रहे जैसे शिक्षक, वकील, चिकित्सक, इंजीनियर, क्लर्क, एकाउंटेंट्स परन्तु इनके जीवन मूल्य के आदर्श समान रहे और इनकी आर्थिक स्थिति भी एक वेतनभोगी वर्ग के रूप में उभर कर आई ।

श्रमिक वर्ग :

आधुनिक शहरों में जहाँ एक ओर पूँजीपति वर्ग का अभ्युदय हुआ तो दूसरी ओर श्रमिक वर्ग। सामंती व्यवस्था के अनुरूप विशेषाधिकार प्राप्त वर्ग के द्वारा सर्वहारा वर्ग का शोषण प्रारम्भ हुआ। जिसके परिणामस्वरूप शहरों में दो परस्पर विरोधी वर्ग उभर कर आए। शहरों में फैक्टरी प्रणाली की स्थापना के कारण कृषक वर्ग, जो लगभग भूमि विहीन कृषि वर्ग के रूप में थे, शहरों की ओर बेहतर रोजगार के अवसर को देखते हुए भारी संख्या में शहरों की ओर इनका पलायन हुआ। इसी क्रम में नए औद्योगिक नगर जैसे मैनचेस्टर, लंकाशायर, शेकिन्ड आदि अस्तित्व में आए। इन शहरों में नई श्रमिकों की संख्या अधिक थी। चूंकि लोक कल्याण के भावना की कमी थी अतः इन शहरों ने नई समस्याओं को जन्म दिया जैसे बेरोजगारी में वृद्धि, स्वास्थ्य सम्बन्धी विषयों के प्रति उदासीनता, अतः श्रमिक वर्ग ने अपने हितों की सुरक्षा के लिए श्रमिक संघ कायम किए। बाद मे संसद के द्वारा कुछ फैक्टरी नियम बनाए गए। इंग्लैंड में 1825 में सरकार को मजदूरों के वेतन बढ़ाने तथा काम के घंटे कम करवाने के लिए तथा संगठित ढ़ंग से काम करने का अधिकार स्वीकार करना पड़ा। चूँकि इन नियमों का पालन नहीं हुआ अतः श्रमिकों की दशा में सुधार नहीं लाया जा सका जिसे लेकर मजदूर आंदोलन तीव्र हुआ और वे ट्रेड यूनियन बनाकर अपने को संगठित करने लगे।

औपनिवेशिक भारतीय शहर-बम्बई :

पश्चिमी यूरोपीय शहरों के विपरीत भारत में शहरीकरण की प्रक्रिया धीमी रही। बीसवीं शताब्दी के शुरुआत में केवल 11 प्रतिशत लोग शहरों में रहते थे जिनमें एक बड़ी संख्या विशाल प्रेसीडेंसी शहरों में रहती थी, जो विशाल एवं बहुउपयोगी थे। इन शहरों में बड़े बन्दरगाह, वेयरहाउस, सेना की छावनियाँ, शैक्षणिक संस्थान, संग्रहालय व पुस्तकालय थे। बम्बई भारत का एक प्रमुख शहर था। उन्नीसवीं शताब्दी के अंत तक बम्बई का विस्तार तीव्रता से हुआ। शुरुआत में बम्बई सात टापुओं का इलाका था। जैसे-जैसे आबादी बढ़ी, इन टापुओं को एक-दूसरे से जोड़ दिया गया ताकि ज्यादा जगह पैदा की जा सके और इस तरह एक विशाल शहर अस्तित्व में आया। बम्बई औपनिवेशिक भारत की वाणिज्यिक राजधानी थी। एक प्रमुख बंदरगाह होने के नाते यह अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का केन्द्र था जहाँ से कपास और अफीम जैसे कच्चे माल बड़ी तादाद में रवाना किए जाते थे। इस व्यापार के कारण न सिर्फ व्यापारी और महाजन बल्कि कारीगर एवं

दुकानदार भी बम्बई में बसे। कपड़ा मिलें खुलने पर और अधिक संख्या में लोग इस शहर की ओर उन्मुख हुए। 1854 ई. में पहला कपड़ा मिल स्थापित हुआ और 1921 ई. तक वहाँ 85 कपड़ा मिलें खुल चुकी थी जिनमें लगभग 1,46,000 मजदूर काम कर रहे थे। 1931 तक लगभग एक चौथाई ही बम्बई के निवासी थे बाकी निवासी बाहर से आकर बसे थे।

1930 में बम्बई का मानचित्र जसमें सात टापुओं और विकसित की गई जमीन को देखा जा सकता है।

लंदन की तरह बम्बई भी घनी आबादी वाला शहर है। 1840 में लंदन का क्षेत्रफल प्रति व्यक्ति 155 वर्ग गज था जबकि बम्बई का प्रति व्यक्ति क्षेत्रफल केवल 9.5 वर्ग गज था। 1872 में लंदन में प्रति मकान में औसतन 8 व्यक्ति रहते थे जबकि बम्बई में प्रति मकान में 20 व्यक्ति रहते थे।

बम्बई का विकास सुनियोजित रूप से नहीं हो सका। बल्कि 1800 के आसपास बम्बई फोर्ट एरिया शहर का केन्द्र था और दो हिस्सों में बॅटा हुआ था। एक हिस्से में 'नेटिव' रहते थे और दूसरे हिस्से में यूरोपीय या 'गोरे' रहते थे। कोर्ट आबादी के उत्तर में एक यूरोपीय उपनगर और औद्योगिक पट्टी भी विकसित होने लगी थी। दक्षिण में इसी तरह की उपनगरीय आबादी और एक छावनी थी। यह नस्ली विभाजन अन्य प्रसीडेंसी शहरों में भी रही।

शहर के अनियोजित विस्तार के कारण 1850 तक शहर में आवास और जलापूर्ति की समस्या बढ़ चुकी थी। कपड़ा मिलों के चलने से अधिक लोग बम्बई आकर बसने लगे जिससे बम्बई के आवासीय इलाकों पर दबाब बढ़ गया जिससे बम्बई की 70 प्रतिशत लोग घनी आबादी वाले चॉलों में रहते थे। बम्बई की चाल बहुमंजिला इमारत होती थी। लंदन केटिनेमेंट्स की तरह ये मकान भी मोटे तौर पर व्यापारी और महाजन की निजी संपत्ति होते थे। बाहर से आने वाले

लोगों की आवासीय जरूरत को पूरा करते थे परन्तु ये मात्र कमरों की कतारें होती थी जिनमें अलग शौचालय की व्यवस्था नहीं थी।

बीसवीं सदी की शुरुआत में कलाबादेवी रोड के पास बनाई गई चॉल

लंदन में नगर योजना का काम सामाजिक क्रांति के भय से शुरू किया गया तो बम्बई में यह काम प्लेग की महामारी के डर से शुरू किया। 1898 में सिटी ऑफ बॉम्बे इम्प्रूवमेंट ट्रस्ट की स्थापना की गई। 1918 में बम्बई के मकानों के महंगे किराये को सीमित करने के लिए किराया कानून पारित किया गया परन्तु इससे आवासीय समस्या समाप्त नहीं हुई। जमीन की कमी के कारण भी शहर के विस्तार से बम्बई में समस्या बढ़ी जिसे दूर करने के लिए भूमि विकास परियोजना 1784 में शुरू की गई थी। बम्बई के गवर्नर विलियम हॉर्नवी ने उस समय विशाल तटीय दीवार बनाने के प्रस्ताव पर मंजूरी दी ताकि शहर के निचले इलाके समुद्र के पानी की चपेट में आने से बच जाएँ।

उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य तक व्यावसायिक उद्देश्य के लिए और अधिक जमीन की जरूरत महसूस हुई तो सरकार और निजी कम्पनियों के द्वारा नयी योजनाएँ बनाई गई। 1864 में मालाबार हिल से कोलाबा के आखिरी छोर तक के पश्चिमी तट को मिला। बीसवीं शताब्दी के आने तक जिस प्रकार आबादी तेजी से बढ़ी, अधिक से अधिक जमीन को घेर लिया गया और समुद्री जमीन को विकसित किया जाने लगा।

भूमि विकास

दलदली अथवा डूबी हुई जमीन को रहने या खेती करने या किसी अन्य काम के योग्य बनाना

एक सफल भूमि विकास परियोजना बाम्बे पोर्ट ट्रस्ट के अन्तर्गत शुरू की गई। ट्रस्ट ने 1914 से 1918 के बीच एक सूखी गोदी का निर्माण किया और उसकी खुदाई से जो मिट्टी निकली

उसका इस्तेमाल करके 22 एकड़ का बालार्ड एस्टेट बना डाला। इसके बाद मशहूर मरीन ड्राईव बनाया गया। बम्बई में आने वाले अप्रवासियों और उनके दैनिक जीवन में कठिनाई जिसका सामना आम आदमी को करना पड़ता है। निष्कर्षत: शहर के अन्तर्विरोध के बावजूद शहर ऐसे लोगों को हमेशा आकर्षित करती है जो स्वतंत्रता और नए अवसर की तलाश करते हैं जिससे इन शहरों को सामाजिक और आर्थिक गतिशीलता मिलती है।

मारीन ड्राईव बंम्बई का यह प्रसिद्ध स्थान बीसवीं शताब्दी में समुद्र जमीन को विकसित करके बनाया गया।
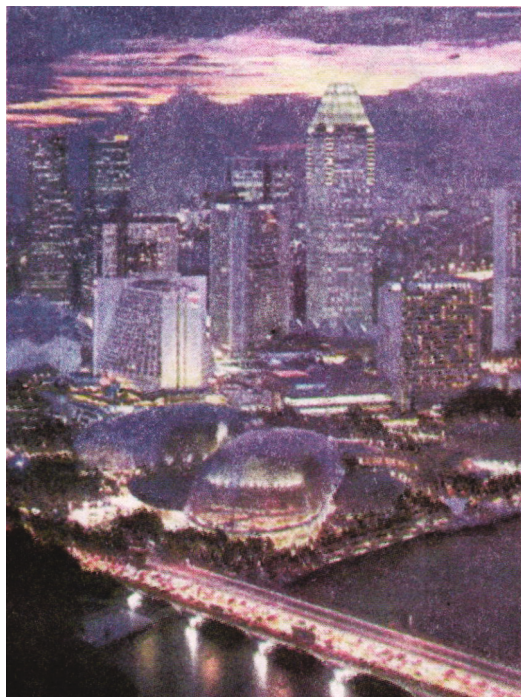
सिंगापुर शहर का विकास :

एशियाई देशों के सभी शहर अनियोजित और बेतरतीब ढंग से विकसित नहीं हुए थे। कई शहर योजनाबद्ध रूप से तैयार किए गए। ली कुआन येव का सिंगापुर एक प्रमुख उदाहरण है। आज का सिंगापुर एक सुनियोजित शहर है जो विश्व भर में नगर विकास के आदर्श को प्रस्तुत करता है। 1965 तक सिंगापुर एक महत्वपूर्ण बन्दरगाह तो था लेकिन वह बाकी एशियाई शहरों जैसा ही था। इस शहर का निर्माण तो श्वेत बस्तियों के हिसाब से ही किया गया था। सिंगापुर पर उस समय श्वेतों का ही शासन था। शहर की ज्यादातर आबादी भीड़ भरी गंदे मकानों और गंदगी में जीती थी।

सिंगापुर मरीन

1965 में पीपुल्स एक्शन पार्टी के अध्यक्ष ली कुआन येव के नूतृत्व में जब सिंगापुर को आजादी मिली तब एक विशाल आवास एवं विकास कार्यक्रम शुरू किया गया जिसने इस द्वीप राष्ट्र को एक नया आयाम दिया। सरकार के द्वारा लगभग 86 फीसदी जनता को अच्छे मकान दिए गए जिससे सरकार को इनका समर्थन प्राप्त हुआ। ऊंचे आवासीय खंडों में हवा निकासी और सभी प्रकार की सेवाओं का इंतजाम किया गया। इन इमारतों ने शहर के सामाजिक जीवन को भी बदल दिया। बाहरी गलियारों के कारण अपराध कम हुए, सामुदायिक कार्यक्रमों के लिए इन इमारतों में खाली मंजिलें छोड़ दी गई थीं।

शहर में लोगों के आने पर नियंत्रण रखा जाने लगा। भारतीय, चीनी और मलय इन तीनों समुदायों के बीच नस्ली सामाजिक टकरावों को रोकने के लिए सामाजिक संबंधों पर भी लगातार
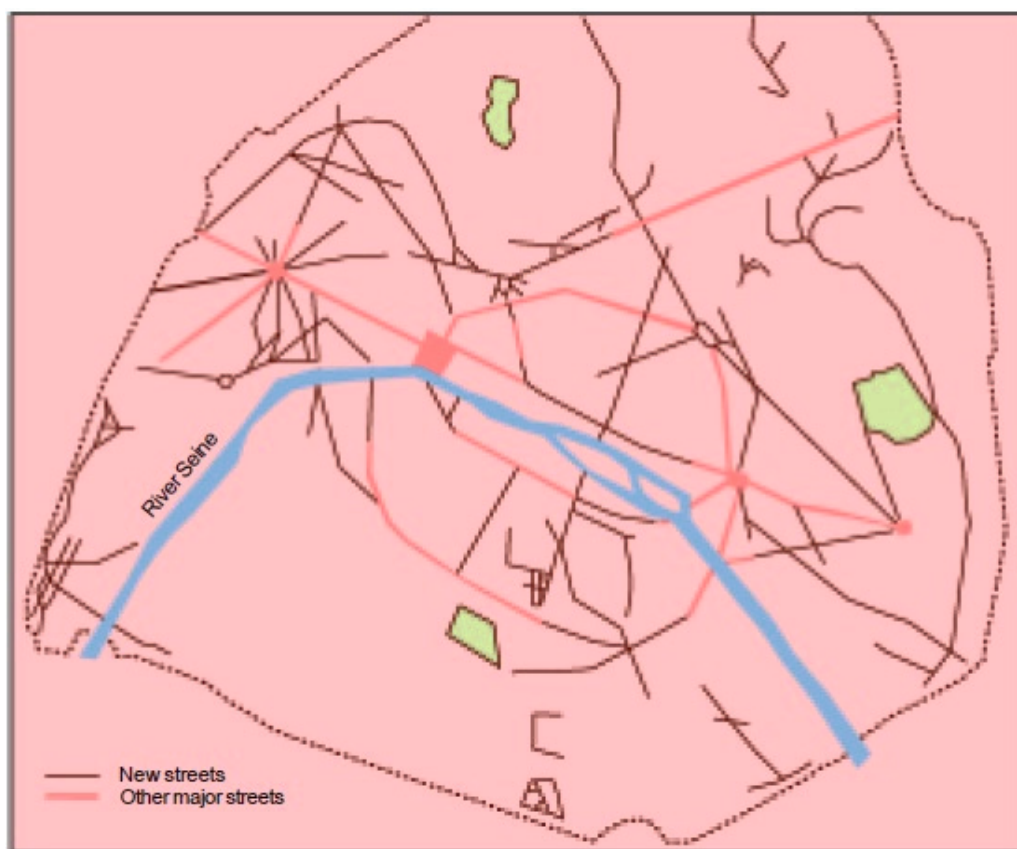
चित्र-11 : बैरॉन हॉसमान द्वारा 1850 के बीच बनवाई गई पेरिस की प्रधान सड़कों की योजना

सचेत रहने के उपाय किए गए । अखबार, पत्रिका और अन्य प्रकार के संचार साधनों पर कड़ा नियंत्रण रखा गया ।

हालांकि सिंगापुर के नागरिकों को भौतिक सुविधाएँ और संपन्नता मिली लेकिन यह मान्यता भी है कि इस शहर में जीवंत और चुनौतीपूर्ण राजनीतिक संस्कृति की कमी है। जिस प्रकार से बेरॉन हॉसमान ने पेरिस के पुनर्निर्माण का काम किया । वह शहरीकरण की दिशा में एक महत्वपूर्ण उदाहरण प्रस्तुत करता है। शहर भर में सीधी, चौड़ी सड़कें या बुलेवड्र्स (छायादार सड़क) बनाई गई, खुले मैदान बनाये गए और पेड़-पौधे, बागीचे लगाए गए, पूरे शहर में पुलिस को तैनात किया गया । 1860 तक पेरिस के प्रत्येक पॉच कामकाजी लोगों में से एक निर्माण कार्यों में लगाया गया । पर इस **पुनर्निमाण** अभियान में पेरिस के बीच रहने वाले 350,000 लोगों को उजाड़ दिया गया था। पेरिस के कुछ संपन्न निवासियों को भी लगता था कि उनके शहर को दानवी रूप से बदल दिया गया था । पर जल्द ही यह भावना गर्व में बदल गई जब पेरिस एक ऐसी राजधानी के रूप में जाना गया जो सिर्फ वास्तुशिल्प के लिए नहीं बल्कि सामाजिक और बौद्धिक प्रगति के केन्द्र के रूप में एक प्रभावशाली स्थान बना सका ।

पाटलीपुत्र (पटना) :

हमारे राज्य में पटना नगर का विकास शहरीकरण की इस प्रक्रिया का एक महत्वपूर्ण उदाहरण प्रस्तुत करता है। प्राचीनकाल में पाटलीपुत्र के नाम से विख्यात यह एक महानगर था जिसकी तुलना विश्व के समकालीन सुप्रसिद्ध नगरों से की जाती थी। इसकी स्थापना छठी शताब्दी ई०पू० में मगध के शासक अजातशत्रु के द्वारा एक सैनिक शिविर के रूप में की गई थी। कालान्तर में यह मगध साम्राज्य की राजधानी बना। मौर्य शासनकाल के कंधार से कर्नाटक तक विस्तृत साम्राज्य की राजधानी इसी पाटलीपुत्र नगर में स्थित थी। मौर्यकालीन राज-प्रसाद के अवशेष दक्षिण पटना में स्थित कुम्हरार से प्राप्त हुए हैं। इस नगर की आबादी उस समय लगभग 4 लाख थी। इस नगर के प्रशासन और जीवन के अनेक पहलुओं की विस्तृत चर्चा मेगास्थिनीज की रचना इन्डिका में उपलब्ध है। यह व्यक्ति चन्द्रगुप्त के दरबार में दूत के रूप में आया था।

गोलघर

गंगा नदी किनारे बसा पटना शहर

गुप्त काल में भी इस नगर का गौरव बना रहा। इसके विशाल भवनों के वैभव और सौन्दर्य की चर्चा चीनी यात्री फा–हियान द्वारा की गई है। प्राचीन काल में यह नगर शिल्प कला, व्यापार, शिक्षा और सांस्कृतिक गतिविधियों का प्रमुख केन्द्र था परन्तु पूर्व मध्यकाल में पतनशील अवस्था में आ गया।

मध्य युग में इस नगर के गौरव को सुप्रसिद्ध अफगान शासक शेरशाह सूरी ने पुनर्स्थापित किया। उसने 1541 ई० के लगभग गंगा और गंडक नदी के संगम के पास एक दुर्ग बनवाया क्योंकि इस स्थान के सैनिक महत्व का उसे आभास था। अब्दुल्लाह की रचना तारीखे दाऊदी में इस संबंध में विस्तृत जानकारी मिलती है। अकबर के शासन काल तक यह नगर एक प्रमुख व्यापारिक केन्द्र बन चुका था। 1856 ई० मे अंग्रेज यात्री राल्फ फिच ने इस नगर का भ्रमण किया और बताया कि यहाँ से कपास, सूती वस्त्र, चीनी और अफीम का व्यापार बड़ी मात्रा में बंगाल एवं दूसरे क्षेत्रों के साथ होता था। इसके अतिरिक्त शोरा और नील का भी निर्यात अधिक मात्रा में पटना से होता था। यूरोपीय व्यापारियों के साथ पंजाब के खत्री और पश्चिमी भारत के जैन व्यापारी और ईरानी, मध्य एशियाई एवं आरमिनयाई व्यापारी भी इस नगर में सक्रिय थे। 17वीं एवं 18वीं शताब्दियों में इस नगर की आबादी 3 लाख से अधिक बताई जाती है जब कि समकालीन यूरोप में एक लाख की आबादी वाले नगर भी महत्वपूर्ण माने जाते थे। मुगल काल में अनेक सुन्दर और भव्य इमारतों का यहाँ निर्माण भी हुआ जिनमें अधिकतर अब नगर के मध्य एवं पूरबी भागों मे देखी जा सकती है। इसी नगर में 1666 ई० में सिखों के दसवें और अन्तिम गुरू श्री गोविन्द सिंह जी का जन्म हुआ जिस कारण यह नगर एक महत्वपूर्ण धार्मिक स्थल भी माना जाता है।

18वीं शताब्दी के प्रारम्भ में मुगल राजकुमार अजीमुशान ने इस नगर का नव निर्माण कराया और इसे अजीमाबाद नाम दिया। उस समय इस नगर क पुनर्निर्माण पर लगभग एक करोड़ रुपयों का व्यय हुआ। तब यह नगर भारत के प्रमुख सांस्कृतिक केन्द्रों में अग्रणीय था।

18वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध मे पूरबी भारत में ब्रिटिश सत्ता की स्थापना के साथ आधुनिक पटना नगर के विकास का क्रम आरम्भ हुआ। अजीमाबाद क्षेत्र से कुछ पश्चिम में अंग्रेजों का अफीम **गोदाम** पहले ही से स्थित था। यहाँ से लगभग पांच मील की दूरी पर अनाज भण्डारण के लिए **गोदाम** का निर्माण 1786 ई० में किया गया जो आज गोलघर के नाम से विख्यात है। इन्हीं दोनों के बीच के क्षेत्र में पटना के आधुनिक नगर का विकास आरम्भ हुआ।

पटना नगर के प्रशासन की व्यवस्था भी क्रमिक ढंग से विकसित हुई और 1769 ई० में बिहार क्षेत्र के शासन की देखरेख के लिए एक अंग्रेज निरीक्षक की नियुक्ति हुई, जब कि 1774 ई० में रेगुलेटिंग ऐक्ट के अन्तर्गत बिहार के प्रशासन के लिए कई व्यवस्था लागू हुई। इसमें पटना के नगर की केन्द्रीय स्थिति बनी रही।

1911 ई० के दिल्ली दरबार में बिहार को पृथक राज्य का रूप दिया गया। 1912 ई० में बिहार एवं उड़ीसा को बंगाल से पृथक राज्य का दर्जा प्राप्त हुआ और पटना इसकी राजधानी बनी। 19वीं एवं 20वीं शताब्दी में पटना के पश्चिमी भाग का विकास आरम्भ हुआ और नया प्रशासनिक क्षेत्र विकसित हुआ जिसमें राजभवन, सचिवालय, विधान मण्डल आदि का निर्माण हुआ।

देश की स्वतंत्रता के बाद पटना के दक्षिण के दिशा में भी आबादी का विस्तार तेजी से हुआ है। वर्त्तमान पटना की आबादी 12 लाख से अधिक है और इसका क्षेत्र 250 वर्ग कि०मी० है। कोलकाता के बाद यह पूर्वी भारत का सबसे बड़ा नगर है और अबादी के घनत्व के दृष्टिकोण से यह भारत का 14वाँ सर्वाधिक आबादी वाला नगर है। वर्त्तमान में यह शिक्षा और व्यापार का महत्वपूर्ण केन्द्र है और सांस्कृतिक क्रिया कलापों में भी इसकी स्थिति प्रशंसनीय है।

शहरीकरण की प्रक्रिया बहुत लम्बी रही है । ग्रामीण एवं सामंती व्यवस्था से हटकर कृषि व्यवस्था से आगे बढ़ते हुए एक नई आर्थिक व्यवस्था लागू हुई जिसने व्यापार, वाणिज्य उद्योग के विकास पर बल दिया । शहरों के इस विकासक्रम ने लोगों को नई चेतना प्रदान की और सुविध एँ दी, तो दूसरी ओर नई समस्याओं को भी जन्म दिया जिनके निदान की आवश्यकता आज है। इस नई सामाजिक संरचना के अन्तर्गत शहरों के द्वारा जहाँ एक ओर व्यवसायी मध्यम एवं श्रमिक वर्ग आये तो उनके साथ वर्गभेद की भावना भी आई जो समाजवादी विचारधारा के विपरीत है एवं लोकतांत्रिक पद्धति को भी प्रभावित करती है । शहरों की निरन्तर प्रगति एवं इनके विस्तार से हमारी जीवन शैली सकारात्मक रूप से प्रभावित हुई है शिक्षा एवं रोजगार के बेहतर साधन उपलब्ध हुए हैं तो दूसरी ओर स्पर्धा एवं अवसरवाद जैसी नकारात्मक प्रवृति भी बलवती हुई है । एक संतुलित सामाजिक व्यवस्था का निर्माण आधुनिकीकरण के साथ उन आदर्शों के संश्लेषण के साथ ही संभव है जिन्हें हम शहरी व्यस्तता के अन्तर्गत छोड़ते जा रहे हैं ।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न :

1. **सामंती व्यवस्था से हटकर किस प्रकार की शहरी व्यवस्था की प्रवृति बढ़ी ?**

   (क) प्रगतिशील प्रवृति — (ख) आक्रामक प्रवृति

   (ग) रूढ़िवादी प्रवृति — (ग) शोषणकारी प्रवृति

2. **शहर को आधुनिक व्यक्ति का किस प्रकार का क्षेत्र माना जाता है ?**

   (क) सीमित क्षेत्र — (ख) प्रभाव क्षेत्र

   (ग) विस्तृत क्षेत्र — (ग) अथवा सभी

3. **स्थायी कृषि के प्रभाव से कैसा जमाव संभव हुआ ?**

   (क) संपत्ति — (ख) ज्ञान

   (ग) शांति — (ग) बहुमूल्य धातु

4. **एक प्रतियोगी एवं उद्यमी प्रवृति से प्रेरित किस प्रकार की अर्थव्यवस्था लागू की गई ?**

   (क) जीवन निर्वाह अर्थव्यवस्था — (ख) मुद्रा प्रधान अर्थव्यवस्था

   (ग) शिथिल अर्थव्यवस्था — (ग) एवं सभी

5. **आधुनिक काल में औद्योगीकरण ने किसके स्वरूप को गहन रूप से प्रभावित किया ?**

   (क) ग्रामीणकरण — (ख) शहरीकरण

   (ग) कस्बों — (ग) बन्दरगाहों

6. **जनसंख्या का घनत्व सबसे अधिक कहाँ होता है ?**

   (क) ग्राम — (ख) कस्बा

   (ग) नगर — (ग) महानगर

7. **1810 से 1880 ई. तक लंदन की आबादी 10 लाख से बढ़कर कहाँ तक पहुँची ?**

   (क) 20 लाख — (ख) 30 लाख

   (ग) 40 लाख — (ग) 50 लाख

8. लंदन में अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा कब लागू हुई ?

(i) 1850 (ii) 1855

(iii) 1860 (iv) 1870

9. कौन सा सामाजिक वर्ग बुद्धिजीवी वर्ग के रूप में उभर कर आया ?

(i) उद्योगपति वर्ग (ii) पूंजीपति वर्ग

(iii) श्रमिकवर्ग (iv) मध्यम वर्ग

10. पूंजीपति वर्ग के द्वारा किस वर्ग का शोषण हुआ ?

(i) श्रमिक वर्ग (ii) मध्यम वर्ग

(iii) कृषक वर्ग (iv) सभी वर्ग

रिक्त स्थानों को भरें–

1. शहरो के विस्तार में भव्य .... का निर्माण हुआ ।
2. लंदन भारी संख्या में .... को आकर्षित करने में सफल हुई ।
3. शहरों में रहने वाले .... से सीमित थे ।
4. .... देशों में नगरों के प्रति रुझान देखा जाता है ।
5. .... के द्वारा निवास तथा आवासीय पद्धति, जन यातायात के साधन, जन स्वास्थ्य इत्यादि के उपाय किये गये ।

समूहों का मिलान :

1. मैनचेस्टर लंकाशायर शेफिल्ड	1. नगर
2. चिकित्सक	2. वाणिज्यिक राजधानी
3. प्रतियोगी मुद्रा प्रधान अर्थव्यवस्था	3. बेरॉन हॉसमान
4. बम्बई	4. मध्यम वर्ग
5. पेरिस	5. औद्योगिक नगर

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. किन तीन प्रक्रियाओं के द्वारा आधुनिक शहरों की स्थापना निर्णायक रूप से हुई?
2. समाज का वर्गीकरण ग्रामीण एवं नगरीय क्षेत्रों में किस भिन्नता के आधार पर किया जाता है?
3. आर्थिक तथा प्रशासनिक संदर्भ में ग्रामीण तथा नगरीय बनावट के दो प्रमुख आधार क्या हैं?
4. गांव के कृषिजन्य आर्थिक क्रियाकलापों की विशेषता को दर्शायें।
5. शहर किस प्रकार के क्रियाओं के केन्द्र होते हैं?
6. नगरीय जीवन एवं आधुनिकता एक-दूसरे से अभिन्न रूप से कैसे जुड़े हुए हैं?
7. नगरों में विशेषाधिकार प्राप्त वर्ग अल्पसंख्यक है, ऐसी मान्यता क्यों बनी है?
8. नागरिक अधिकारों के प्रति एक नई चेतना किस प्रकार के आंदोलन या प्रयास से बने?
9. व्यावसायिक पूँजीवाद ने किस प्रकार नगरों के उद्‌भव में अपना योगदान दिया?
10. शहरों के उद्‌भव में मध्यम वर्ग की भूमिका किस प्रकार की रही?
11. श्रमिक वर्ग का आगमन शहरों में किस परिस्थितियों के अन्तर्गत हुआ?
12. शहरों ने किन नई समस्याओं को जन्म दिया?

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. शहरों के विकास की पृष्ठभूमि एवं उसके प्रक्रिया पर प्रकाश डालें।
2. ग्रामीण तथा नगरीय जीवन के बीच की भिन्नता को स्पष्ट करें।
3. शहरी जीवन मे किस प्रकार के सामाजिक बदलाव आए।
4. शहरीकरण की प्रक्रिया में व्यवसायी वर्ग, मध्यमवर्ग एवं मजदूर वर्ग की भूमिका की चर्चा करें।
5. एक औपनिवेशिक शहर के रूप में बम्बई शहर के विकास की समीक्षा करें।

परियोजना कार्य :

1. अपने शहर में पॉच तरह के इमारतों को चुनिए । प्रत्येक के विषय में जानकारी प्राप्त कीजिए, उन्हें बनाने का निर्णय क्यों लिया गया ? उनके लिए संसाधनों की व्यवस्था केसे की गई, उनके निर्माण का उत्तरदायित्व किसे सौंपा गया ? इन इमारतों के स्थापत्य संबंधी आयामों का वर्णन कीजिए और औपनिवेशिक स्थापत्य से उनकी समानताओं या भिन्नताओं को चिन्हित कीजिए ।

2. जानकारी प्राप्त कीजिए कि आपके शहर में स्थानीय प्रशासन कौन–सी सेवाएं प्रदान करता है ? क्या जलापूर्ति, आवास, यातायात और स्वास्थ्य एवं स्वच्छता आदि सेवाएं भी उन्हीं के द्वारा प्रदान की जाती है । इन सेवाओं के लिए संसाधनों की व्यवस्था कैसे की जती है ? नीतियॉ किस प्रकार की होती हैं ?

इकाई : 7

व्यापार और भूमंडलीकरण

19 वीं तथा प्रारंभिक 20वीं शताब्दी में विश्वबाजार का विस्तार और एकीकरण

भूमिका :

विश्व बाजार–उस तरह के बाजारों को हम विश्व बाजार कहेंगे जहाँ विश्व के सभी देशों की वस्तुएँ आमलोगों को खरीदने के लिए उपलब्ध हों। जैसे–भारत की आर्थिक राजधानी 'मुम्बई'।

आज के अर्थजगत में वाणिज्य और व्यापार के अन्तरर्गत आने वाली विश्व बाजार की अवधारणा आधुनिक युग की देन है। परन्तु वैश्विक बाजार के सन्दर्भ में इस व्यवस्था के संकेत प्राचीन काल से ही मिलने आरंभ हो चुके थे। प्राचीन भारत में विकसित सिन्धु घाटी सभ्यता का व्यापारिक सम्बन्ध प्राचीन मिस्र और मेसोपोटामिया की सभ्यता के साथ था। इस व्यापार का केन्द्र दिलमुन (आधुनिक बहरीन) और मेंलुहा (मकरान तट पर स्थित) एक बाजार (बड़ा व्यापारिक केन्द्र) ही

वाणिज्यिक क्रांति–व्यापार के क्षेत्र में होने वाला अभूतपूर्व विकास और विस्तार जो जल और स्थल दोनों मार्ग से सम्पूर्ण विश्व तक पहुँचा। इसका केन्द्र यूरोप (इंग्लैंड) था।
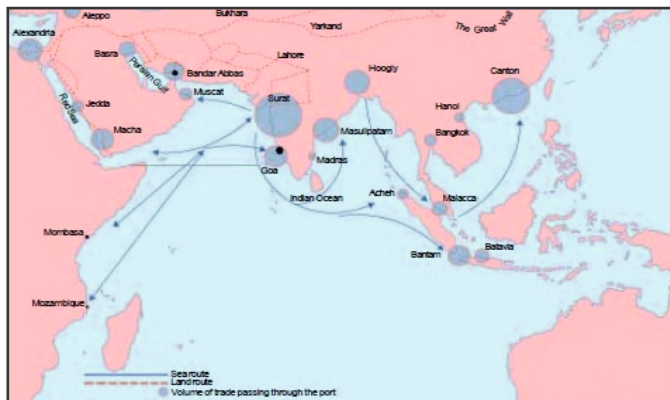
मानचित्र–भारत को विश्व से जोड़ने वाले व्यापारिक मार्ग

तट पर स्थित) एक बाजार (बड़ा व्यापारिक केन्द्र) ही था। उस काल में विश्व बाजार का और स्पष्ट प्रमाण अलेक्जेण्ड्रीया नामक बड़ा व्यापारिक केन्द्र की चर्चा के क्रम में मिलता है। यह शहर तीन महादेशो अफ्रीका, यूरोप और एशिया के व्यापारियों का केन्द्र था। इस शहर को लाल सागर के मुहाने पर (वत्तर्मान मिश्र के उत्तरी क्षेत्र) महान यूनानी विश्व विजेता सम्राट सिकन्दर ने स्थापित किया था।

औद्योगिक क्रांति-वाष्प शक्ति से संचालित मशीनो द्वारा बड़े-बड़े कारखानो में व्यापक पैमाने पर वस्तुओं का उत्पादन इसका केन्द्र इंग्लैण्ड था-यह 1750 के बाद आरंभ हुआ।

अलेगजेन्ड्रीया शहर और बाजार

परन्तु आधुनिक काल के उदय के साथ ही भौगोलिक खोजों, पुर्नजागरण तथा राष्ट्रीय राज्यों के उदय जैसी घटनाओ ने जिस वाणिज्यिक क्रांति को जन्म दिया, सही मायने में विश्व बाजार का स्वरूप इसके बाद ही उभरकर सामने आया। इसका पूर्ण विस्तार औद्योगिक क्रान्ति के बाद हुआ। इस क्रान्ति ने बाजार को तमाम आर्थिक गतिविधियों का केन्द्र बना दिया। इसी के साथ जैसे-जैसे औद्योगिक क्रान्ति का विकास हुआ बाजार का स्वरूप विश्वव्यापी होता चला गया और 20 वी शताब्दी के पहले तक तो इसनें सभी महादेशों में अपनी उपस्थिति कायम कर ली।

(क) विश्वबाजार का स्वरूप और विस्तार :

उपनिवेशवाद ऐसी राजनैतिक आर्थिक प्रणाली जो प्रत्यक्ष रूप से एशिया और अविकसित अफ्रीका तथा दक्षिण अमेरिका में यूरोपीय देशों द्वारा त्याग किया गया- इसका एक मात्र उद्देश्य था इन देशों का आर्थिक शोषण करना।

18 वीं सदी के मध्य भाग से इंग्लैंड में बड़े-बड़े कारखानों में वस्तुओं का उत्पादन आरंभ हुआ। यह कारखाने वाष्प इंजन से चलते थे। इस प्रक्रिया से वस्तुओं का उत्पादन काफी बढ़ा। उत्पादन के बढ़ते आकार के हिसाब से कच्चे माल की आवश्यकता हुई और तब इंग्लैंड ने उ० अमेरिका, एशिया (भारत) और अफ्रीका की ओर अपना ध्यान खींचा। वहाँ उसे पर्याप्त मात्रा में कच्चा माल और बना-बनाया एक बाजार भी मिला। इसी दो चीजों पर औद्योगिक क्रान्ति सफल होता इसलिए इंग्लैण्ड इन प्रचुर संसाधनों पर स्थाई अधिकार का प्रयास आरंभ किया। इससे उपनिवेशवाद नामक एक नवीन शासन प्रणाली का उदय हुआ। मैनचेस्टर, लिवरपुल, लंदन इत्यादि बड़े नगरों का उदय इसी का परिणाम था जहाँ वस्तुओं का उत्पादन भी होता था और विदेशों में वस्तुओं का उत्पादन भी जाता। 18 वीं और प्रारंभिक 19 वीं शताब्दी का विश्व बाजार ऐसा ही था। विश्व बाजार के इस स्वरूप का आधार था कपड़ा उद्योग।

चित्र-3 : इंग्लैण्ड का एक व्यापारिक नगर

गिरमिटिया मजदूर: औपनिवेशिक देशों के ऐसे श्रमिक जिन्हें एक निश्चित समझौता द्वारा निश्चित समय के लिए अपने शासित क्षेत्रों में ले जाते थे, इन्हें मुख्यतः नगदी फसलों-जैसे गन्ना के उत्पादन में लगाया जाता था। भारत के भोजपुरी भाषा क्षेत्रों (पूर्वी उत्तर प्रदेश, पश्चिम बिहार) पंजाब, हरियाणा से गन्ना की खेती के लिए जमैका, फिजी, त्रिनिदाड एवं टोवैगो, मॉरिशस आदि देशों में ले जाया गया।

औद्योगिक क्रान्ति के फैलाव के साथ-साथ बाजार का स्वरूप विश्वयापी होती गया। इसने व्यापार, श्रमिकों का पलायन, और पूँजी का प्रवाह इन तीन आर्थिक प्रवृत्तियों को जन्म दिया। व्यापार मुख्यतः कच्चे मालों को इंग्लैंड और अन्य यूरोपीय देशों तक पहुँचाने और वहाँ के कारखानों में निर्मित वस्तुओं को विश्व के कोने-कोने

में पहुँचाने तक सीमित था। श्रमिको के प्रवाह के अन्तर्गत हम देखते है कि औपनिवेशिक देशो (भारत) से लोगो को निश्चित अवधी के लिए एक समझौता (अनुवंध) के तहत यूरोपीय देश अपने यहाँ या फिर अपने प्रभाव वाले क्षेत्रो में ले जाते थे। इन मजदूरो की मजदूरी बहुत कम होती थी तथा इन्हे मुख्यत: कृषि कार्य (नगदी फसलो गन्ना, चाय, तम्बाकू के उत्पादन) में लगाया जाता था। इस तरह के मजदूरो को गिरमिटिया मजदूर नाम दिया गया।

श्रमिको को बड़े पानी के जहाजो पर भरकर लेजाना

पूँजी पलायन के अन्तर्गत यरोपीय देशों के उद्योगपति औद्योगिक क्रान्ति से प्राप्त भारी लाभो को अपने शासित क्षेत्रो में अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों, जैसे रेल लाइन का निर्माण, खदान से कोयला निकालने, चाय कॉफी, रबड़, कपास जैसे नगदी फसलो के उत्पादन इत्यादी में बड़ी मात्रा में पूँजी का निवेश किया। इससे उपनिवेशो की अर्थव्यवस्था प्रत्यक्ष रूप से यूरोप के साथ जुड़ गया। इस प्रकार इन प्रक्रियाओ ने यूरोप केन्द्रित एक विश्वव्यापी अर्थ तन्त्र को जन्म दिया। इसी अर्थतन्त्र को हम विश्व बाजार की संज्ञा देते है।

(ख) विश्व बाजार की उपयोगिता :

आर्थिक गतिविधियों को स्वतंत्र रूप से संचालित होना सुनिश्चित करने के लिए बाजार के स्वरूप का विश्वव्यापी होना आवश्यक होता है। व्यपारियो, श्रमिको, पूँजीपतियो, मध्यमवर्ग तथा आम उपभोक्ताओं के हितो को बाजार का विश्वव्यापी स्वरूप सुरक्षित रखता है। किसानो को अपने उपज का अच्छा रिटर्न (कीमत) प्राप्त होता है, क्योकि बाजार ज्यादा प्रतिस्पर्धी होता है। कुशल श्रमिको को विश्व स्तर पर पहचान तथा महत्व और आर्थिक लाभ इसी वैश्विक बाजार में प्राप्त होता है। रोजगार के नये अवसर विश्व बाजार में सृजीत होता है। आधुनिक विचार और चेतना के प्रसार में भी इसका बड़ा महत्व होता है।

(ग) विश्व बाजार के लाभ और हानि :

विश्व बाजार ने व्यापार और उद्योग को तीव्र गति से बढ़ाया। व्यापार और उद्योगों के विकास ने पूँजीपति, मजदूर और मजबूत मध्यमवर्ग नामक तीन शक्तिशाली सामाजिक वर्ग को जन्म दिया। आधुनिक बैंकिंग व्यवस्था का उदय और विकास इसी के बाद हुआ। भारत जैसे औपनिवेशिक देशों का सीमित मात्रा में ही सही–औद्योगीकरण और आधुनिकीकरण विश्व बाजार के आलोक में ही हुआ। औपनिवेशिक देशों में रेलमार्ग–सड़क, बन्दरगाह, खनन, बागवानी जैसे संरचनात्मक क्षेत्र का विकास हुआ। कृषि उत्पादन के क्षेत्र तम्बाकू, रबड़, कॉफी, नील, गन्ना इत्यादि कृषि क्षेत्र में क्रांतिकारी परिवर्तन दक्षिण अमेरिका (जो स्पेन का उपनिवेश था) और मैक्सिको में हुआ।

विश्व बाजार ने नवीन तकनीक को सृजित किया। इन तकनीकों में रेलवे, वाष्प इंजन, भाप का जहाज, टेलीग्राफ, बड़े जलपोत महत्वपूर्ण रहा। इन तकनीकों ने विश्व बाजार और उसके लाभ को कई गुण बढ़ा दिया जैसे 1820 से 1914 के बीच विश्व व्यापार में 25 से 40 गुना वृद्धि हो चुकी थी। इस सम्पूर्ण वैश्विक व्यापार का 60 प्रतिशत हिस्सा कृषि उत्पादों, खनन (कोयला) और कपड़ा का था। शहरीकरण का विस्तार और जनसंख्या में महत्वपूर्ण वृद्धि वैश्विक व्यापार का एक बड़ा लाभकारी परिणाम था।

विश्व बाजार के हानि :

साम्राज्यवाद-यूरोपीय देशों द्वारा एशिया और अफ्रीका के क्षेत्रों पर सैनिक शक्ति द्वारा विजय प्राप्त कर उसे अपने प्रत्यक्ष अधीन मे रखना।

विश्व बाजार के फैलते स्वरूप ने यूरोपीय देशों में सम्पन्नता के एक नये दौर को पैदा किया लेकिन इस सम्पन्नता के पीछे का सच बहुत कड़वा था। विश्वबाजार ने एशिया और अफ्रीका में उपनिवेशवाद एवं साम्राज्यवाद के एक नये युग को जन्म दिया, साथ ही साथ भारत जैसे पुराने उपनिवेशों का शोषण और तीव्र हुआ। उपनिवेशो की अपनी स्थानीय आत्म निर्भर अर्थव्यवस्था जिसका आधार कृषि और लघु उद्योग तथा कुटीर उद्योग था, नष्ट हो गया। इन स्थानीय उद्योगों को यूरोपीय देशों ने व्यवस्थित नीति के तहत नष्ट किया, क्योंकि इसी पर उनकी औद्योगिक क्रांति सफल होती। व्यापार में वृद्धि और विश्व अर्थव्यवस्था के साथ निकटता ने औपनिवेशिक लोगों के आजीविका को छीन लिया। इसे एक उदाहरण से समझा जा सकता है जैसे–भारत का कपड़ा उद्योग (जो प्राचीन काल से भारतीय

प्रथम विश्व युद्ध में बर्वाद हो चुका जर्मनी का एक शहर

व्यापार और वाणिज्य का आधार रहा था)। 1800 ई० में जहाँ भारतीय निर्यात में सूती कपड़ा का हिस्सा 30 प्रतिशत था, वहीं 1815 में घटकर 15 प्रतिशत रह गया। 1870 तक आते-आते यह केवल 3 प्रतिशत रह गया। इसके ठीक विपरित कच्चे कपास का भारत से निर्यात 1800 से 1872 के बीच 5 प्रतिशत से बढ़कर 35 प्रतिशत हो गया।

औपनिवेशिक देशो में विश्व बाजार ने अकाल, भुखमरी, गरीबी जैसे मानवीय संकटो को भी जन्म दिया। जैसे भारत में 1850 से 1920 के बीच कई बड़े अकाल पड़े जिसमें लाखो लोग मर गये। इस बाजार ने साम्राज्यवादी प्रतिस्पर्धा को यूरोपीय देशो के बीच पैदा किया। इससे उग्र राष्ट्रवाद ने जन्म लिया। इन दोनो का विनाशकारी परिणाम प्रथम महायुद्ध के रूप में सामने आया। प्रथम विश्व युद्ध ने मानवीय सभ्यता को व्यापक स्तर पर प्रभावित किया। इसने विश्व के सामने एक ऐसा संकट पैदा किया जिसकी कल्पना विश्व ने नहीं की थी।

दो महायुद्धों के दरम्यान व्यापार और अर्थव्यवस्था

आर्थिक मंदी : अर्थतन्त्र में आनेवाली वैसी स्थिति जब उसके तीनों आधार कृषि, उद्योग और व्यापार का विकास अवरुद्ध हो जाए। लाखों लोग बेरोजगार हो जाएँ, बैंकों और कंपनियों का दिवाला निकल जाए तथा वस्तु और मुद्रा दोनों की बाजार में कोई कीमत नहीं रहे।

प्रथम महायुद्ध ने यूरोप की अर्थव्यवस्था को बिल्कुल तबाह कर दिया। तत्कालीन विश्व अर्थतन्त्र को नियंत्रित और संचालित करने वाला देश ब्रिटेन और उसके सभी आर्थिक केन्द्र बिल्कुल नष्ट हो गए। यूरोप के अन्य महत्वपूर्ण अर्थतन्त्र जर्मनी, फ्रांस, इटली इत्यादि भी बहुत ज्यादा प्रभावित हुए। इसके ठीक विपरीत संयुक्त राज्य अमेरिका और औपनिवेशिक देशों के अर्थतन्त्र का काफी विकास और फैलाव हुआ, जैसे भारत में इस समय कपड़ा, जूट, खनन आदि क्षेत्रों का विकास भारतीय उद्योगपतियों के प्रयास से हुआ। टाटा, बिड़ला, गोदरेज, जमना लाल बजाज इत्यादि इसी विकास की उपज हैं।

प्रथम महायुद्ध की समाप्ति के बाद संयुक्त राज्य अमेरिका द्वारा यूरोप की अर्थव्यवस्था को फिर से खड़ा करने का गंभीर प्रयास किया गया। चूँकि उस समय एकमात्र देश वही था जो यूरोप को पुनर्निर्मित कर सकता था। उसके प्रयासों से 1920 से 1927 तक यूरोप और अमेरिका में आर्थिक प्रगति काफी हुआ। वहाँ नवीन तकनीक की उन्नति के आधार पर नये उद्योगों का विस्तार काफी हुआ। अमेरिका के अपने प्रगति से उसकी कंपनियों को काफी लाभ हुआ और खुद उसकी सरकार को भी, जिसे वह यूरोपीय देशों को कर्ज देने में लगाया। अमेरिका में तीन क्षेत्र कृषि, आवास और निर्माण (मोटरकार उद्योग) में काफी प्रगति हुआ। परन्तु यह स्थिति लम्बे समय तक नहीं चला, 1929 ई० तक आते-आते दुनिया एक ऐसे आर्थिक संकट में घिर गया जिसका उसने पहले कभी अनुभव नहीं किया था।

(क) आर्थिक मंदी के कारण :

नया शब्द :
शेयर बाजार : वैसा स्थान जहाँ व्यापारिक और औद्योगिक कंपनियों के बाजार मूल्य का निर्धारण होता है।

1929 के आर्थिक मंदी का बुनियादी कारण स्वयं इस अर्थव्यवस्था के स्वरूप मे ही समाहित था। प्रथम महायुद्ध के चार वर्षों में यूरोप को छोड़ कर बाजार आधारित अर्थव्यवस्था का विस्तार होता चला गया, उसके मुनाफे बढ़ते चले गए दूसरी तरफ, अधिकांश लोग गरीबी और अभाव में पिसते रहे।

नवीन तकनीकी प्रगति तथा बढ़ते हुए मुनाफे के कारण उत्पादन में जो भारी वृद्धि हुई उससे ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गई कि जो कुछ उत्पादित किया जाता था, उसे खरीद सकने वाले लोग बहुत कम थे।

नया शब्द
सट्टेबाजी : कंपनियों में पूँजी लगा कर उसका हिस्सा खरीदना ताकि उसका मूल्य बढ़े और पुनः उसे बेच देना

कृषि क्षेत्र में अति-उत्पादन की समस्या बनी हुई थी कृषि क्षेत्र में यह अति उत्पादन प्रथम महायुद्ध के बाद भी बना रहा, लेकिन उसे खरीद सकने वाले लोग बहुत कम थे। इससे उन कृषि उत्पादों की कीमतें गिरीं। गिरती कीमतो से किसानो की आय घटी, अतः इस स्थिति से निकलने के लिए उन्होंने उत्पादन को और बढ़ाया ताकि कम कीमत पर ज्यादा माल बेचकर अपना आय स्तर बनाए रखा जा सके। इसने बाजारो में कृषि उत्पादो की आमद और बढ़ा दी तथा कीमते और नीचे चली गई। कृषि उत्पाद पड़ी-पड़ी सड़ने लगी। इस स्थिति का आकलन करते हुऐ आधुनिक अर्थशस्त्री काडलिफ ने अपनी पुस्तक ''दि कॉमर्स ऑफ नेशन'' मे लिखा है कि विश्व के सभी भागो में कृषि उत्पादन एवं खाद्यानो के मूल्य की विकृति 1929-32 के आर्थिक संकटो का प्रमुख कारण था।

1920 के दशक के मध्य में बहुत सारे देशो ने अमेरिका से कर्ज लेकर अपनी युद्ध से तबाह हो चुके अर्थव्यवस्था को नये सिरे से विकसित करने का प्रयास किया। जब स्थिति अच्छी थी तबतक अमेरिकी पूँजीपतियो ने यूरोप को कर्ज दिये लेकिन अमेरिका के घरेलू स्थिति में संकट के कुछ संकेत मिलने के साथ ही वे लोग कर्ज वापस माँगने लगे । इससे यूरोप के सभी देशो के समक्ष गहरा संकट आ खड़ा हुआ। इस परिस्थिति में यूरोप के कई बैंक डूब गये। महत्वपूर्ण देशो की मुद्रा मूल्य गिर गई। इसमें और बड़ा संकट तब आ गया, जब यूरोप अपने आप को यान्त्रिक उत्पादन पर निर्भर कर लिया। प्रथम माहयुद्ध के बाद इस क्षेत्र में यूरोप का एकाधिपत्य समाप्त हो गया। कनाडा, रूस और औपनिवेशिक देशो से उसे कड़ी चुनौती मिली। रूस और कनाडा ने सस्ते अनाज को उत्पादित किया, जिसके कारण कृषि आधारित यूरोपीय देश तबाह हो गए।

अमेरिका में संकट के लक्षण प्रकट होते ही उसने कुछ संरक्षणात्मक उपाय करने आरंभ किए। आयातित वस्तुओ पर उसने दो गुना सीमा शुल्क लगा दिया, साथ ही आयात की मात्रा को भी उसने सीमित किया। संकट का धीरे-धीरे अन्य देशो में प्रकट होने के साथ ही सभी राज्य यह प्रयास करने लगे कि अपनी आवश्यकता की अधिकांश वस्तुऐं स्वयं के द्वारा ही उत्पादित कर

लिया जाए। इस संकुचित आर्थिक राष्ट्रवाद ने विश्व व्यापार के बाजार आधारित वयवस्था की कमर ही तोड़ दी। आर्थिक मंदी में अमेरिका के बाजारों में शुरू हुआ सट्टे बाजी की प्रवृति भी निर्णायक रहा। प्रथम महायुद्ध के पश्चात् अमेरिका की आर्थिक समृद्धि में काफी वृद्धि हुई जिससे वहाँ के पूँजीपति अपनी अतिरिक्त पूँजी का सट्टा में लगाने के लिए आकर्षित हुए। आरंभ में काफी लाभ हुआ, यह आर्थिक समृद्धि की चरम अवस्था थी। इसके बाद ही वास्तविक संकट उत्पन्न हुआ, जो प्रसिद्ध शेयर बाजार न्यूयार्क स्टॉक एक्सचेंज (बाल स्ट्रीट) के माध्यम से उभरकर सामने आया।

(ख) आर्थिक मंदी का प्रभाव :

इस मंदी का सबसे बुरा असर अमेरिका को ही झेलना पड़ा। मंदी के कारण बैंकों ने लोगों को कर्जे देना बन्द कर दिया और दिए हुए कर्ज की वसूली तेज कर दी। किसान अपनी उपज को नहीं बेच पाने के कारण बर्बाद हो गए। कर्ज की कमी से कारोबार ठप पड़ गया।इससे बैंकों का कर्ज वापस नहीं चुका पाया। बैंकों ने लोगो ंके सामानों (मकान, कार, जरूरी चीजों) को कुर्क कर लिया गया। लोग सड़क पर आ गए। कारोबार के ठप पड़ने से बेरोजगारी बढ़ी, कर्ज की वसूली नहीं होने से बैंक बर्बाद हो गए एवं कई कंपनियाँ बंद हो गईं। 1933 तक 4000 से ज्यदा बैंक बंद हो चुके थे और लगभग 110000 कंपनियाँ चौपट हो गई थीं।

नया शब्द :
संरक्षणवाद-अपने वस्तुओं को विदेशी वस्तुओं के आमद से होने वाले नुकसान से उसे बचाने के लिए विदेशी वस्तु पर ऊँची आयात शुल्क लगाना।

आर्थिक मंदी का प्रभाव

अन्य देशों पर होने वाले आर्थिक प्रभावों में जर्मनी और ब्रिटेन इस आर्थिक मंदी से सबसे ज्यादा प्रभावित हुए। फ्रांस अपने आप को इस मंदी से इसलिए बचा पाया क्योंकि उसे जर्मनी से काफी मात्रा में युद्ध हर्जाना की राशि प्राप्त हुआ। जर्मनी की स्थिति सबसे खराब रही। युद्ध हर्जाना चुकाने के कारण प्रथम विश्व युद्ध के तुरंत बाद के आर्थिक विकास के काल में भी उसकी स्थिति नहीं बदली। 1922 और 1923 यह दो वर्ष सबसे खराब रहा, उसके मुद्रा मार्क का इन वर्षो में काफी अवमुल्यन हो गया। 1924 के बाद उसकी स्थिति में कुछ परिवर्तन हुआ। इस वर्ष से संयुक्त राज्य अमेरिका द्वारा उसे

भारी मात्रा में ऋण प्राप्त हुआ। इससे उसकी स्थिति उसकी स्थिति में काफी सुधार हुआ, परंतु 1929 की महा मंदी ने उसे पुनः 1919 के वर्ष में पहुँचा दिया, लगभग 60 लाख लोग बेरोजगार हो गए, सम्पूर्ण देश अराजकता में डूब गया इसी का लाभ उठा कर हिटलर अपने आप को सत्तासीन किया। 1929 के बाद ब्रिटेन के उत्पादन, निर्यात, रोजगार, आयात तथा जीवन निर्वाह स्तर- इन सब में भी तेजी से गिरावट आयी। लगभग 35 लाख लोग बेरोजगार हो गए। इस महामंदी से निकलने के लिए बाजार अर्थव्यवस्था के प्रतिकूल संरक्षणवाद जैसे कठोर अर्थिक उपाय किए गए जिससे विश्वव्यापार काफी प्रभावित हुआ।

अगर हम इस महामंदी का भारत पर पड़ने वाले प्रभाव को देखें तो यह स्पस्ट होता है कि 20 वी सदी की शुरूआत तक वैश्विक अर्थव्यवस्था कितनी एकीकृत हो चुकी थी। महामंदी ने भारतीय व्यापार को फौरन प्रभावित किया। 1928 से 1934 के बीच देश के आयात-निर्यात घटकर लगभग आधी रह गई कृषि उत्पादो की कीमत यहाँ काफी गिर गई, जिसका उदाहरण है 1928 से 1934 के बीच भारत में गेहूँ की कीमत 50 प्रतिशत गिर गया। शहरी लोगो की अपेक्षा गॉव के लोग इस मंदी से ज्यादा प्रभावित हुए। कृषि दाम में कमी के बावजूद अंग्रेजी सरकार लगान की दर कम करने को तैयार नही थी; जिससे किसानो में असंतोष की भावना बढ़ी। नगदी फसलो को उपजाने वाले किसानो पर इसका प्रभाव विनाशकारी हुआ क्योकि उनका उत्पादन खर्च बहुत ज्यादा होता था और उस अनुपात में फायदा नहीं मिलने पर वे महाजनो के कर्ज में डूबते चले गऐ। इन्ही सालो में पहली बार भारत से सोने का निर्यात होने लगा जो ब्रिटेन अपने कम हो रहे सोने को पूरा करने के लिए कर रहा था। इसी परिप्रेक्ष्य में हम यह भी कह सकते है कि इस मंदी ने सविनय अवज्ञा आन्दोलन को प्रारंभ करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

(ग) विश्व बाजार के आलोक में बदलते अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध :

सन् 1920 के बाद जो भी अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध विकसित हुआ उसमें आर्थिक कारको या आर्थिक स्थिति का महत्वपूर्ण स्थान था। 1929 के आर्थिक मंदी को आधार वर्ष मानकर 1920 से 1945 के बीच बनने वाले आर्थिक सम्बन्धो को दो भागो में बॉट कर समझ सकते है। 1920 से 1929 तक का काल सामान्यतः आर्थिक समुत्थान एवं विकास का काल था। प्रथम महायुद्ध के बाद विश्वस्तर पर यूरोप का प्रभाव क्षीण हो गया। यद्यपि उपनिवेशो (एशिया-अफ्रीका) पर उसकी पकड़ बनी रही, लेकिन इस दौर में संयुक्त राज्य अमेरिका, जापान और सोवियत संघ (रूस) ये तीन देश विश्व की सर्वप्रमुख शक्ति के रूप में उभरे। संयुक्त राज्य अमेरिका में युद्ध

के तुरंत बाद का दो वर्ष आर्थिक संकट का काल था। यह संकट मांग में कमी के कारण उत्पन्न हुआ। इन दो वर्षो मे एक लाख लोग बेरोजगार हो गए, श्रमिक हड़तालों का सिलसिला चल पड़ा। 1922 के बाद कुछ स्थिति बदली । वहाँ तकनीकी उन्नति के आधार पर औद्योगिक विस्तार काफी हुआ, जिसका प्रमाण है 1928 –29 में 50 लाख कार की बिक्री हुई। इसी विकास का एक नकारात्मक परिणाम अमेरिका में यह देखने को मिला कि देश की आर्थिक शक्ति और सत्ता कुछ हाथों में और कम्पनियों के पास केन्द्रित हो गया।

सोवियत रूस और जापान इन दो देशों ने भी 1920 से 1929 के बीच आर्थिक क्षेत्र में काफी प्रगति किया। रूस अपनी नई आर्थिक वयवस्था को विश्व स्तर पर प्रचारित और प्रसारित करने की कोशिश की तो उधर जापान अपनी आर्थिक प्रगति को बनाये रखने के लिए साम्राज्यवादी महत्वाकांक्षा को आक्रमक रूप दिया जिसका शिकार चीन हुआ। इस काल में भारत और अन्य ओपनिवेशिक देशों में राष्ट्रीय चेतना का प्रसार निर्णायक रूप से हुआ क्योंकि प्रथम महायुद्ध के बाद उन्हें आर्थिक संकटों का सामना करना पड़ा। दूसरे, उस समय शासक देशों द्वारा किया गया स्वराज का वायदा पूरा नहीं हुआ।

नया शब्द :
न्यू-डील : जनकल्याण की एक बड़ी योजना से सम्बंधित नई नीति जिसमें आर्थिक क्षेत्र के अलावा राजनीतिक और प्रशासनिक नीतियों को भी नियमित किया गया।

1929 के बाद जो अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक सम्बन्ध विकसित हुआ उसका एकमात्र उद्देश्य आर्थिक मंदी के दुष्प्रभावों को कम करना या समाप्त करना था। इस महामंदी की शुरूआत अमेरिका से हुआ जो 1933 तक बना रहा। इस बीच अमेरिका राजनीति में फ्रैंकलीन डी रूजवेल्ट का उदय हुआ (1932 ई० में)। उन्होंने 'नई व्यवस्था' (न्यू डील) नामक नवीन आर्थिक नीतियों को अमेरिका में लागू किया। इसमें जनकल्याण की एक व्यापक योजना शुरू किया गया। इसका मुख्य उद्देश्य था कृषि और उद्योग में संतुलन लाना, साथ ही साथ मानव समाज और स्वाधीनता को सुरक्षित रखना भी था। जनकल्याण के तहत रेलमार्ग, सड़क, पुल, स्थानीय विकास के कार्य के

फ्रैंकलीन डी० रूजवेल्ट अमेरिकी राष्ट्रपति

लिए ऋण दिया गया ताकि व्यवसाय पनप सके और रोजगार भी लोगो को मिले। औद्योगिक क्षेत्र में व्यापार और उत्पादन का नियमन, मजदूरी में वृद्धि, काम के घण्टे तय करना, मूल्यो में वृद्धि को रोकना इत्यादी कार्य किया गया। कृषि क्षेत्र में किसानो की क्रय शक्ति तथा सामान्य आर्थिक स्थिति को युद्ध के पूर्व के स्तर तक ले जाने का प्रयास हुआ।

उधर यूरोपीय देशो में इस मंदी से निकलने के लिए जो प्रयास हुए उसके अन्तर्गत सभी सरकारो ने कड़ा मुद्रा नियन्त्रण स्थपित किया। कृषि प्रधाान पूर्वी यूरोपीय देश (बुल्गारिया, हंगरी, रूमानिया, चेकोस्लोवाकिया, सर्बिया) तथा ब्रिटिश कॉमनवेल्थ (ब्रिटिश साम्राज्य से अलग हुए देश का संघ) देशों ने 1932 में ओटावा समझौता कर अपने आयात निर्यात को सन्तुलित किया। नार्वे, स्वीडन जैसे देशों ने ओस्लो गुट जैसे क्षेत्रीय प्रवन्धन भी किया। 1932 में लोजान सम्लेन हुआ जिसमें जर्मनी के क्षतिपूर्ति राशि को कम कर दिया गया, ताकि व्यापार बढ़े। इसी समय फ्रांस के विदेश मंत्री ब्रिया ने पहली बार यूरोप में एक आर्थिक संघ बनाने का सुझाव दिया जो सफल नहीं हो सका। राष्ट्रसंघ के स्तर पर इस संकट के हल के लिए 1933 में लन्दन में एक सम्मेलन आयोजित किया गया जिसमे 67 देशो ने भाग लिया। इस सम्मेलन में मुद्रा में स्थिरता लाने और अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में संरक्षणवाद की नीति को अन्त कर परस्पर व्यापार और सहयोग की नीति अपनाने की बात कही, जिसका सभी देशो ने समर्थन तो किया लेकिन तत्कालीन राजनैतिक स्थिति में यह सफल नहीं हुआ।

नया शब्द :

अधिनायकवाद : वैसी राजनैतिक प्रशासनिक व्यवस्था जिसमें एक व्यक्ति के हाथ सारी शक्तियाँ केन्द्रित होती हैं। वह व्यक्ति परिस्थियों का लाभ उठाकर जनता के बीच नायक की छवि बनाता है।

आर्थिक मंदी के आलोक में यूरोप की राजनैतिक स्थिति में दो महत्वपूर्ण परिवर्तन हम देखते है एक रूस में स्थापित साम्यवादी आर्थिक और राजनैतिक व्यवस्था का आकर्षण सम्पूर्ण विश्व में बढ़ा क्योकि वही एक देश था जिसपर इस मंदी का प्रभाव विलकुल नहीं पड़ा, जिससे उसका प्रभाव बहुत बढ़ा। दुसरे, इटली तथा जर्मनी में अधिनायकवादी शासन प्रणाली का उत्कर्ष। चूँकि विश्व के सभी देश आर्थिक मंदी से निपटने में इस कदर उलझ गये कि उन दो देशो में उभरने वाली नवीन राजनैतिक प्रवृत्तियों को देख और समझ नहीं पाये। इटली और जर्मनी में लोक तंत्र की विफलता और अधिनायकवादी तथा तानाशाही तन्त्र का उदय यूरोप के कई और देशो को अपने लपेटे मे ले लिया, जैसे स्पेन, ऑस्ट्रिया, यूनान इत्यादि। यूरोप में आर्थिक मंदी के बाद उदित होने वाली राजनैतिक व्यवस्था अपनी नीतियों से द्वितीय महायुद्ध को अवश्यमभावी बना दिया।

1950 के दशक के बाद परिवर्तन

द्वितीय महायुद्ध समाप्त होने के बाद उससे उत्पन्न समस्या को हल करने तथा व्यापक तबाही से निबटने के लिए पुनर्निर्माण का कार्य अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर आरंभ हुआ। यह प्रयास 1945 ई० के याल्टा सम्मेलन (वर्तमान रूस का स्थापना) के निर्णयानुसार अस्तित्व में आया। संयुक्त राष्ट्र संघ के तत्वावधान में हुआ। संयुक्त राष्ट्र संघ ने अपना यह सारा कार्य अपने विभिन्न अनुषंगी संस्थाओं (यूनेस्को, विश्वस्वास्थ्य संगठन, अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन, अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय) इत्यादि के माध्यम से करना आरंभ किया। परन्तु पुनर्निर्माण का सभी व्यावहारिक काम दो बड़े प्रभावों वाले देश संयुक्त राज्य अमेरिका और सोवियत संघ (रूस) के साए में हुआ। ये दोनों देश अलग-अलग आर्थिक व्यवस्था वाले देश थे और उनकी विशेषताओं के आलोक में ही युद्धोत्तर काल के आर्थिक अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध विकसित हुए।

दो महायुद्ध के बीच मिले आर्थिक अनुभवों से सबक लेते हुए यह तय किया गया कि बाजार आधारित अर्थव्यवस्था बिना उपभोग के कायम नहीं रह सकती (यह सबक 1929 के महामंदी से मिला)। दूसरी बात यह कि अर्थव्यवस्था की राढ़, रोजगार के लक्ष्य को तभी हासिल किया जा सकता है जब सरकार के पास वस्तुओं, पूँजी और श्रम क आवाजाही को नियंत्रित करने की ताकत उपलब्ध हो। अत: द्वितीय महायुद्ध के बाद अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था का मुख्य उद्देश्य यह था कि औद्योगिक विश्व में आर्थिक स्थिरता एवं पूर्ण रोजगार बनाए रखा जाए। चूंकि यह भी महसूस किया गया कि इसी आधार पर विश्वशांति भी स्थापित की जा सकती थी। एपरोक्त आर्थिक विचार और उद्देश्य पर जुलाई 1944 में अमेरिका स्थित न्यू हैम्पशायर "ब्रेटन वुडस" नामक स्थान पर संयुक्त राष्ट्र मौद्रिक एवं वित्तीय सम्मेलन हुआ, जिसमें एक सहमति बनी जिसके बाद अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (आई एम एफ) की स्थापना की गई। युद्धोत्तर पुनर्निर्माण के लिए पैसे का इंतजाम करने हेतु अन्तर्राष्ट्रीय पुनर्निर्माण एवं विकास बैंक (विश्व बैंक) का भी गठन किया गया। इन दोनों वित्तीय संस्थाओं को जुड़वाँ संतान के नाम से जाना जाता है। इन दोनों संस्थाओं ने 1947 में औपचारिक रूप से काम करना आरंभ किया। इन दोनों ही संस्थाओं पर "संयुक्त राज्य अमेरिका का प्रभाव" कायम है और आज भी वह अपनी अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक नीतियों और सम्बन्धों को निर्धारित करने में इसका भरपूर इस्तेमाल करता है।

(क) 1945 से 1960 के दशक के बीच अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक सम्बन्ध :

1945 से 1960 के दशक के बीच विकसित होने वाले अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक समबन्धो को तीन क्षेत्रों मे विभाजित करके हम देखेगे। 1945 के बाद विश्व में दो भिन्न अर्थव्यवस्था का प्रभाव बढ़ा और दोनो ने विश्व स्तर पर अपने प्रभावो तथा नीतियो को बढ़ाने का प्रयास किया। इस स्थिति से विश्व में एक नवीन आर्थिक और राजनैतिक प्रतिस्पर्धा ने जन्म लिया। सम्पूर्ण विश्व मुख्यत: दो गुटो में विभाजित हो गया। एक साम्यवादी अर्थतन्त्र वाले देशो का गुट जिसका नेतृत्व सोवियत रूस कर रहा था, जिसकी विशेषता थी राज्य नियंत्रीत अर्थव्यवस्था, और दुसरा, पूँजीवादी अर्थतन्त्र वाले देशो का गुट जिसकी विशेषता थी, बाजार और मुनाफा आधारित आर्थिक व्यवस्था जिसका नेतृत्व संयुक्त राज्य अमेरिका कर रहा था। सोवियत रूस, पूर्वी यूरोप (हंगरी, रोमानिया, बुल्गारिया, पोलैण्ड, पूर्वी जर्मनी इत्यादि) और भारत जैसे नवस्वतंत्र देशो में अपनी आर्थिक व्यवस्था को फैलाने का गंभीर प्रयास किया जिसमें पूर्वी यूरोप तथा उत्तर कोरिया, वियतनाम जैसे देशो में उसे पूर्ण सफलता मिली जबकि भारत जैसे देशो को वह सिर्फ अपने प्रभाव में ही ला सका।

दूसरा क्षेत्र, पूँजीवादी अर्थतन्त्र वाले देशो के बीच बनने वाले अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक सम्बन्धों के विकास के अन्तर्गत आएगा। यह क्षेत्र पूर्णत: संयुक्त राज्य अमेरिका के द्वारा संचालित हो रहा था। इसका प्रमुख उद्देश्य साम्यवादी अर्थतन्त्र और विचार के बढ़ते प्रभाव को रोकना था। संयुक्त राज्य अमेरिका ने विश्व के दो क्षेत्रो दक्षिण अमेरिका और मध्य तथा पश्चिम एशिया के तेल सम्पदा सम्पन्न देशो (इराक, इरान साउदी अरब, जार्डन, यमन, सीरिया, लेबनान) में जबरन अपनी नीतियो को थोपने का काम किया। दक्षिण अमेरिकी महादेश के देशो में तो संयुक्त राज्य अमेरिका अपनी खुफिया संस्था - सी०आई०ए० के माध्यम से सैनिक शक्ति के इस्तेमाल की हद तक जाकर अपना प्रभाव स्थापित किया; जबकि पश्चिम मध्य एशिया के देशो पर अपने प्रभाव को अरब बहुल आबादी वाले फिलिस्तिन क्षेत्र में एक नये यहूदी राष्ट्र इजरायल को स्थापित करवाकर, बनाए रखने में सफल हुआ। वस्तुत: अमेरिका यह जानता था कि बाजार आधारित व्यवस्था के आधुनिक रूप की रीढ़ तेल और गैस नामक उर्जा स्रोत है जिसकी कमी उसके सहयोगी अधिकांश पूँजीवादी अर्थव्यवस्था वाले देशो में था। अत: वह हर हाल में इस क्षेत्र पर अपना प्रत्यक्ष प्रभाव बनाए रखना चाहता था। वर्त्तमान में इस क्षेत्र के अधिकांश देशो में इस सम्पदा का दोहन उसकी या उसके सहयोगी राष्ट्रों की कम्पनियों द्वारा किया जा रहा है। यद्यपि एक बात यह भी है कि अमेरिका के

उन क्षेत्रों पर स्थापित इस प्रभाव में वहाँ की अपनर राजनैतिक, प्रशासनिक व्यवस्था का भी बड़ा योगदान है। उन सभी देशों में शासन का स्वरूप राजशाही या तानाशाही सैनिकवाद का है जिसमें जनता की आवाज को सुना नहीं जाता।

इस दूसरे क्षेत्र का दूसरा धड़ा पश्चिमी यूरोप (ब्रिटेन, फ्रांस, प० जर्मनी, बाल्टिक देश स्पेन) था। यहाँ भी 1945 से 1960 के दशक में महतवपूर्ण आर्थिक सम्बन्धों का विकास हुआ था। इस क्षेत्र की महत्वपूर्ण विशेषता 1945 के बाद यह रही की विश्व राजनीति और अर्थक्षेत्र में इन देशों का प्रभाव काफी क्षीण हो गया। 1970 तक एशिया और अफ्रीका मे स्थापित उनके सारे उपनिवेश उनसे छीन गए, जिसके संसाधनों का दोहन करके उन देशों ने विश्व पर अपना प्रभाव स्थापित किया था। इस स्थिति से निबटने के लिए तथा साम्यवादी विचार के प्रसार को रोकने के लिए समन्वय और सहयोग के एक नवीन युग की शुरुआत की गयी जिसे एकीकरण (यूरोप की) के रूप में हम जानते हैं। इस दिशा में पहला प्रयास वैसे तो 1945 के पहले फ्रांस के विदेशमंत्री ब्रिया के यूरोपीय संघ के विचार में हम देखते हैं, लेकिन वास्तविक रूप में इसकी शुरुआत 1944 में उभरकर सामने आया जब नीदरलैण्ड, बेल्जियम और लग्जमवर्ग ने 'बेलेलेक्स' नामक संघ बनाया। इसी प्रकार 1948 में ब्रेसेल्स संधि हुआ जिसमें यूरोपीय आर्थिक सहयोग की प्रक्रिया कोयला एवं इस्पात के माध्यम से शुरू हुआ। इन प्रयासों के बीच पहला बड़ा कदम उठाया गया। 1957 में उस साल यूरोपीय आर्थिक समुदाय, यूरोपीय इकॉनॉमिक कम्युनिटि एवं ई०ई०सी० की स्थापना की। इसमें फ्रांस, प० जर्मनी, बेल्जियम, हालैण्ड, लग्जमवर्ग और इटली शामिल हुए। इन देशों ने एक साझा बाजार स्थापित किया। ग्रेट ब्रिटेन 1960 में इसका सदस्य बना। इन सभी प्रयासों के बीच हमें यह हमेशा ध्यान में रखना होगा कि सं०रा० अमेरिका का प्रत्यक्ष प्रभाव इन सभी देशों पर स्पष्ट रूप से बना रहा क्योंकि युद्धोत्तर पुनर्निर्माण में उसी के द्वारा सभी आर्थिक सहायता दिया जा रहा था।

द्वितीय महायुद्ध के बाद एक तीसरा क्षेत्र भी था, जहाँ नवीन आर्थिक समबन्ध विकसित हुआ, वह क्षेत्र था एशिया और अफ्रीका के नवस्वतंत्र देशों का। 1947 में भारत के आजादी के साथ ही इन देशों में स्वतंत्रता की नई लहर पैदा हो गई और अगले 15 वर्षें मं सभी देश लगभग आजाद हो गए। इन देशों पर तत्कालीन विश्व के दोनों महत्वपूर्ण आर्थिक शक्ति सं०रा०

अमेरिका और सोवियत रूस अपना प्रभाव स्थापित करना चाहते थे। इस प्रयास में अमेरिका की सहायता विश्व बैंक और अनतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष ने भरपूर रूप से की जबकि रूस अपने विचारो और राजनैतिक शक्ति का इस्तेमाल ज्यादा कर रहा था। चूँकि ये सभी नवस्वतंत्र देश लम्बे औपनिवेशिक शासन के दौरान आर्थिक रूप से विल्कुल विपन्न हो गए थे, इसलिए अपनी स्वतंत्रा को बचाए रखने के लिए इन्हे उन दोनो देशो से आर्थिक और राजनैतिक दोनो प्रकार के सहयोग चाहिए था। दोनो देशो ने अपनी नीतिया और आर्थिक विचारो के अनुसार सहयोग किया, साथ ही अपना प्रभाव भी उन देशो पर बढ़ाया। इस प्रयास में अमेरिका का सहयोग वहाँ की बहुराष्ट्रीय कंपनियो ने भी किया। इसके उदाहरण के रूप में हम भारत के लौह इस्पात उद्योग को लेते है, जिसका विकास अमेरिका तथा उसके सहयोगी राष्ट्रो और सोवियत रूस दोनो के सहयोग से हुआ।
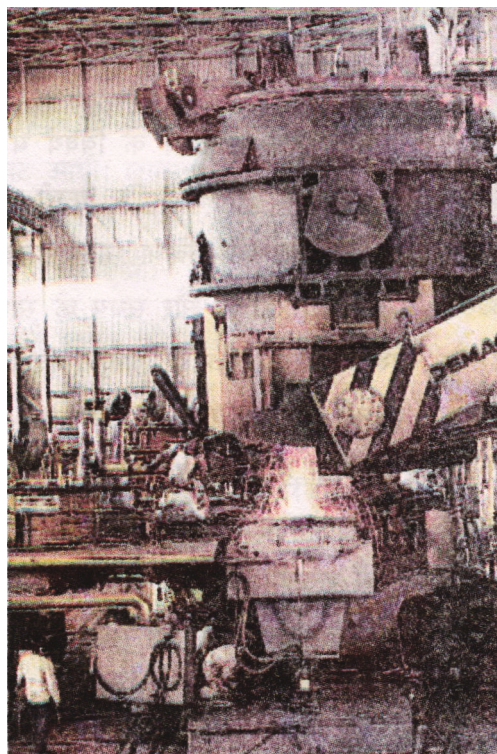
भारत का एक लौह-इस्पात कारखाना

(ग) भूमंडलीकरण आज के जीविकोपार्जन और भूमंडलीकरण का अन्तर्साम्य अध्ययन क्षेत्र :

भूमंडलीकरण राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, वैज्ञानिक तथा सांस्कृतिक जीवन के विश्वव्यापी समायोजन की एक प्रक्रिया है, जो विश्व के विभिन्न भागों के लोगों को भौतिक व मनोवैज्ञानिक स्तर पर एकीकृत करने का सफल प्रयास करती है अर्थात जीवन के सभी क्षेत्रों में

भूमंडलीकरण-जीवन के सभी क्षेत्रों का एक अन्तर्राष्ट्रीय स्वरूप, जिसने दुनिया के सभी भागों को आपस में जोड़ दिया है-सम्पूर्ण विश्व एक बड़े गाँव के रूप में परिवर्तित हो गया है।

लोगों के द्वारा किए जाने वाले क्रियाकलापों में विश्वस्तर पर पाया जानेवाला एक रूपता था समानता भूमंडलीकरण के अन्तर्गत आएगा, जैसे वेश-भूषा और खान-पान के स्तर पर कुछ मौलिक विशेषताएँ विश्व के सभी देशों में समान रूप से पाई जा रही हैं।

भूमंडलीकरण के उदय के विषय में इतिहासकारों और विचारकों में काफी मतभेद रहा है। कुछ विद्वानों का मानना है कि किसी न किसी रूप में भूमंडलीकरण की प्रक्रिया मानव इतिहास के आरम्भ से ही चल रही है और समय के साथ-साथ उसका स्वरूप बदलता रहा है, जबकि विद्वानों का दूसरा समूह भूमंडलीकरण को पूँजीवाद से जोड़कर देखता है, जिसका उदय आधुनिक काल मे हुआ इस दृष्टि से उसका रिस्ता पूँजीवाद से गहराई से जुड़ा हुआ है। इन विचारों के आलोक में भूमंडलीकरण के उदय को 15वीं-16वीं शताब्दी के दौरान माना जा सकता है जो प्रत्यक्षत: आधुनिकीकरण और पूँजीवादी प्रवृति से जुड़ा हुआ है। 19वीं शताब्दी के मध्य से जब पूँजीवाद विश्वव्यापी व्यवस्था बन गया, भूमंडलीकरण का स्वरूप भी व्यापक होता गया। इस समय पूँजी का निर्यात अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक संबंधों की एक मुख्य विशेषता बन गई और व्यापार का परिमाण भी काफी बढ़ा।

नया शब्द :
पूँजीवाद: पूँजी पर आधारित एक व्यवस्था जो बाजार और मुनाफा के उपर टिका है।

भूमंडलीकरण की प्रक्रिया उन्नीसवीं सदी के मध्य से लेकर प्रथम महायुद्ध के आरंभ तक काफी तीव्र रहा। इस दौरान माल (वस्तु),पूँजी और श्रम तीनों का अंतर्राष्ट्रीय प्रवाह लगातार बढ़ता गया। इसमें इस दौरान विकसित नवीन तकनीकों का भी उसके विकास में महत्वपूर्ण योगदान रहा। परंतु 1914 से 1991 ई० के बीच भूमंडलीकरण की प्रक्रिया धीमी हो गई। दो महायुद्धों, साम्यवादी क्रांति, सोवियत संघ और उसके गुट का निर्माण, उपनिवेशवाद की समाप्ति और भारत जैसे अनेक नवस्वतंत्र देशों का उदय और उसके द्वारा अपने बाजार और संसाधनों को अपने स्वतंत्र आर्थिक विकास के लिए आरक्षित करना तथा शीत युद्ध के कारण भूमंडलीकरण की सम्पूर्ण प्रक्रिया को ही बिल्कुल स्थिर कर दिया तथा व्यापार और पूँजी का प्रवाह बिल्कुल रोक दिया। 1991 के बाद जब सोवियत साम्यवादी गुट का अवसान हो गया तो पूँजीवाद की यह बिल्कुल नवीन अवधारणा का विकास पुन: एक नये स्वरूप के साथ हुआ।

नया शब्द :
शीत युद्ध : राज्य नियंत्रित और बाजार नियंत्रित अर्थव्यवस्था वाले देशों के नेतृत्वकर्ता देशों सोवियत रूस और स.रा. अमेरिका के बीच का सामरिक तनाव।

भूमंडलीकरण नामक शब्द का सबसे पहले इस्तेमाल संयुक्त राज्य अमेरिका के जॉन विलियम्सन ने 1990 में किया। दक्षिण अमेरिका में संयुक्त राज्य अमेरिका के द्वारा इसे अपनी महत्वपूर्ण आर्थिक नीति के रूप में पहले आरंभ किया। वे देश 1980 के दशक के बाद आर्थिक रूप से काफी जर्जर हो गए थे। धीरे-धीरे यह सम्पूर्ण विश्व के अर्थतंत्र का नियामक हो गया। इसके प्रभाव को कायम करने में विश्व बैंक, अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष, 1995 में अस्तित्व में आया विश्व व्यापार संस्था (WTO) तथा पूँजीवादी देशों की बड़ी-बड़ी व्यापारिक और औद्योगिक कंपनियाँ (बहुराष्ट्रीय कंपनी) का बहुत बड़ा योगदान था। साथ ही अपने आर्थिक हितों को सुरक्षित और संरक्षित रखने के लिए गठित क्षेत्रीय संगठनों जैसे जी-8, ओपेक, आसियान, यूरोपीय संघ, जी-20, जी-15, जी-77, दक्षेस (सार्क) इत्यादि का भी भूमंडलीकरण की प्रक्रिया को विकसित करने में महत्वपूर्ण भूमिका रही।

बहुराष्ट्रीय कंपनी : कई देशों में एक ही साथ व्यापार और व्यवसाय करने वाले कंपनियों को बहुराष्ट्रीय कंपनी कहा जाता है। 1920 के बाद से इस तरह की कंपनियों का उत्कर्ष हुआ जो द्वितीय महायुद्ध के बाद काफी बढ़ा।

आज जीविकोपार्जन और भूमंडलीकरण का अन्र्तसाम्य संबंध

वर्तमान परिदृश्य में भूमंडलीकरण के प्रभाव को आर्थिक क्षेत्र में अधिक स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। शीतयुद्ध की समाप्ति के बाद से सैनिक शक्ति को आर्थिक शक्ति द्वारा पीछे छोड़ दिया गया। अब किसी भी देश की शक्ति और क्षमता का आकलन उसके पास मौजूद हथियारों या सैनिकों की संख्या के बजाय नागरिकों की समृद्धि के आधार पर किया जाने लगा। अर्थव्यवस्था के शक्ति को स्थापित करने में भूमंडलीकरण के आर्थिक स्वरूप का बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। मुक्त बाजार, मुक्त व्यापार, खुली प्रतिस्पर्द्धा

कॉल सेंटर

बहुराष्ट्रीय निगमों (कंपनी) का प्रसार उद्योग तथा सेवा क्षेत्र का निजीकरण उक्त आर्थिक भुमंडलीकरण के मुख्य तत्व हैं। इस प्रक्रिया का एक मात्र लक्ष्य विश्व को एक मुक्त व्यापार क्षेत्र में परिवर्तित करना है जिसमें महत्वपूर्ण अंतर्राष्ट्रीय वित्तीय संगठन और संस्थाओं तथा क्षेत्रीय संघों की बड़ी भूमिका है।

अभी जिस समय में हम रह रहे हैं उसमें आर्थिक भूमंडलीकरण का प्रभाव आम जीवन पर साफ दिख रहा है। भूमंडलीकरण के कारण जीविकोपार्जन के क्षेत्र में जो बदलाव आया है उसकी झलक शहर कस्बा और गाँव सभी जगह दिखाई पड़ रहा है। वर्तमान दौर में 1991 के बाद सम्पूर्ण विश्व में सेवा क्षेत्र का विस्तार काफी तीव्र गति से हुआ है, जिससे जीविकोपार्जन के कई नए क्षेत्र खुले हैं। सेवा क्षेत्र का मतलब वैसी आर्थिक गतिविधियों से है जिसमें लोगों से विभिन्न प्रकार की सुविधाएँ प्रदान करने के बदले पैसा लिया जाता है, जैसे यातायात की सुविधा (बस, हवाई, जाहाज, टैक्सी), बैंक और बीमा क्षेत्र में दी जाने वाली सुविधा, दूरसंचार और सूचना तकनीक (मोबाइल, फोन, कम्प्यूटर, इंटरनेट, सोशल मीडिया) होटल और रेस्टोरेंट, बड़े शहरों में शॉपिंग मॉल – (वैसा स्थान जहाँ एक ही जगह जीवन की सारी अनिवार्य आवश्यकता की वस्तु मिलती है), कॉल सेंटर (वैसी जगह जहाँ किसी कंपनी से संबंधित सभी क्रियाकलापों के विषय में फोन या इंटरनेट पर जानकारी दी जाती है) इत्यादि। उपरोक्त वर्णित सभी क्षेत्र भूमंडलीकरण के दौरान काफी तेजी से फैला है जिससे लोगों को जीवीकोपार्जन के कई नवीन अवसर मिले हैं।

मोबाइल पर बात करते हुए आम आदमी

आप गाँव में रहते हों या शहर में, देखते होंगे कि मोबाइल फोन और उससे सम्बन्धित सुविधाओं को देने के लिए कई छोटी–बड़ी दुकानें खुल रही हैं जिसमें कई लोग कार्य करते हैं। उन सभी को अच्छी आमदनी होती है। इस प्रकार कई निजी (प्राईवेट) कंपनी या बैंक (रिलायंस, आई.सी.आई.सी.आई. बैंक निजी क्षेत्र की सबसे बड़ी बैंक) के लोग आप जैसों को लाभकारी योजनाओं में निवेश करने के लिए प्रेरित करते मिल जाएँगे। यही है बीमा क्षेत्र का विस्तार। इससे जुड़कर गाँव या शहर के लाखों लोग रोजगार प्राप्त कर रहे हैं। भारत या बिहार के पर्यटक स्थल (बोध गया) के आस–पास रहने वाले लोगों

के लिए इस दौर में रोजगार के कई नवीन अवसर उपलब्ध हुए, जैसे–टूर एवं ट्रेवल एजेंसी (यातायात की सुविधा) रेस्टोरेंट, रेस्ट हाउस, आवासीय होटल इत्यादि। सूचना और संचार के अन्तर्गत ही आप देखते होंगे की निजी डाक सेवा (कोरियर सेवा) साथ–साथ ही तीन–चार कम्प्यूटर लगाकर एक दुकान में तुरन्त तस्वीर दे देना, लिखित सामग्री को छापना, परीक्षा परिणाम की जानकारी देना, नवीन सूचना को प्रदान करना इत्यादि कई ऐसी चीजों को एक साथ किया जाता है। इस क्षेत्र में भारत और बिहार के हजारों लोगों को रोजगार मिला है। इस प्रकार हम यह कह सकते हैं कि आर्थिक भूमंडलीकरण ने हमारी आवश्यकताओं के दायरे को और उसी अनुरूप में बढ़ाया है। उसकी पूर्ति हेतु नए–नए सेवाओं का उदय हो रहा है जिससे जुड़कर लाखो लोग अपनी जीविका चला रहे हैं। इस प्रक्रिया ने लोगों के जीवन स्तर को भी बढ़या है। वर्तमान दौर में भूमंडलीकरण और जीवकोपार्जन के बीच यही अन्र्तसाम्य है।

इस तरह आधुनिक युग में अर्थ व्यवस्था के अन्तर्गत विश्व अर्थतन्त्र और विश्व बाजार के जिस स्वरूप की चर्चा हमलोग कर रहे थे उसने आर्थिक के साथ–साथ राजनैतिक जीवन को भी गहराई से प्रभावित किया। 1919 के बाद विश्वव्यापी अर्थतंत्र में यूरोप के स्थान पर संयुक्त राज्य अमेरिका और सोवियत रूस का प्रभाव बढ़ा, जो द्वितीय महायुद्ध के बाद विश्व व्यापार और राजनैतिक व्यवस्था में निर्णायक हो गया। 1991 के बाद विश्व बाजार के अन्तर्गत ही एक नवीन आर्थिक प्रवृति भूमंडलीकरण का उत्कर्ष हुआ जो निजीकरण और आर्थिक उदारीकरण से प्रत्यक्षतः जुड़ा था। भूमंडलीकरण ने सम्पूर्ण विश्व के अर्थतंत्र का केन्द्र बिन्दु संयुक्त राज्य अमेरिका को बना दिया। उसकी मुद्रा डॉलर, पुरे विश्व की मानक मुद्रा बन गई। उसकी कंपनीयों को पुरी दुनिया में कार्य करने की अनुमति मिल गई अर्थात भूमंडलीकरण, उदारीकण और नीजिकरण ने अमेरिका केन्द्रित विश्व अर्थव्यवस्था को जन्म दिया। आज विश्व एक ध्रुवीय स्वरूप में बदलकर प्रभावशाली देश सं० राज्य अमेरिका के आर्थिक नीतियों के हिसाब से चल रहा है। आर्थिक क्षेत्र में भूमंडलीकरण ने अमेरिका के नवीन आर्थिक साम्राज्यवाद को जन्म दिया जिसका असर आज सम्पूर्ण विश्व में महसूस किया जा रहा है।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न :

1. **प्राचीन काल में किस स्थल मार्ग से एशिया और यूरोप का व्यापार होता था ?**

(क) सूती मार्ग (ख) रेशम मार्ग

(ग) उत्तरा पथ (ग) दक्षिण पथ

2. **पहला विश्व बाजार के रूप में कौन-सा शहर उभर कर आया ?**

(क) अलेक्जेंन्ड्रिया (ख) दिलमुन

(ग) मैनचेस्टर (ग) बहारीन

3. **आधुनिक युग में अर्थव्यवस्था के क्षेत्र में होने वाली सबसे बड़ी क्रांति कौन-सी थी ?**

(क) वाणिज्यिक क्रांति (ख) औद्योगिक क्रांति

(ग) साम्यवादी क्रांति (ग) भौगोलिक खोज

4. **'गिरमिटिया मजदूर' बिहार के किस क्षेत्र से भेजे जाते थे ?**

(क) पूर्वी क्षेत्र (ख) पश्चिमी क्षेत्र

(ग) उत्तरी क्षेत्र (ग) दक्षिणी क्षेत्र

5. **विश्व बाजार का विस्तार आधुनिक काल में किस समय से आरंभ हुआ ?**

(क) 15 वीं शताब्दी (ख) 18 वीं शताब्दी

(ग) 19 वीं शताब्दी (ग) 20 वीं शताब्दी

6. **विश्वव्यापी आर्थिक संकट किस वर्ष आरंभ हुआ था ?**

(क) 1914 (ख) 1922

(ग) 1929 (ग) 1927

7. **आर्थिक संकट (मंदी) के कारण यूरोप में कौन-सी नई शासन प्रणाली का उदय हुआ?**

(क) साम्यवादी शासन प्रणाली (ख) लोकतांत्रिक शासन प्रणाली

(ग) फासीवादी नाजीवादी शासन (ग) पूँजीवाद शासन प्रणाली

8. **ब्रिटेन वुड्स सम्मेलन किस वर्ष हुआ ?**

(क) 1947 (ख) 1948 (ग) 1944 (घ) 1952

9. भूमंडलीकरण की शुरूआत किस दशक में हुआ?
   (क) 1990 के दशक में   (ख) 1970 के दशक में
   (ग) 1960 के दशक में   (घ) 1980 के दशक में

10. द्वितीय महायुद्ध के बाद यूरोप में कौन सी संस्था का उदय आर्थिक दुष्प्रभावों को समाप्त करने के लिए हुआ ?
   (क) सार्क   (ख) नाटो
   (ग) ओपेक   (घ) यूरोपीय संघ

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें ।

1. अलेग्जेक्ड्रीय नामक पहला विश्व बाजार .... के द्वारा स्थापित किया गया।
2. विश्वव्यापी आर्थिक संकट .... देश से आरंभ हुआ।
3. .... नामक सम्मेलन के द्वारा विश्व बैंक और अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष की स्थापना हुई?
4. आर्थिक संकट से विश्व स्तर पर .... नामक एक बड़ी सामाजिक समस्या उदित हुआ?
5. .... ने 1990 के बाद भूमंडलीकरण की प्रक्रिया को काफी तीव्र कर दिया?

सही मिलान करें स्तम्भ 'क' से स्तम्भ 'ख' का

	स्तम्भ 'क'	स्तम्भ 'ख'
(क)	औद्योगिक क्रान्ति	जर्मनी
(ख)	हिटलर का उदय	इंग्लैण्ड
(ग)	विश्व आर्थिक मंदी	1944
(घ)	विश्व बैंक की स्थापना	1929
(ङ.)	भूमंडलीकरण की शुरूआत	प्राचीन काल
(च)	विश्व बाजार की शुरूआत	1990 के बाद

अतिलघु उत्तरीय प्रश्न (20 शब्दों में उत्तर दें)

1. विश्व बाजार किसे कहते हैं?
2. औद्योगिक क्रांति क्या है?
3. आर्थिक संकट से आप क्या समझते हैं?

4. भूमंडलीकरण किसे कहते हैं?
5. ब्रेटेन वुड्स सम्मेलन का मुख्य उद्देश्य क्या था?
6. बहुराष्ट्रीय कंपनी क्या है?

लघु उत्तरीय प्रश्न (60 शब्दों में उत्तर दें)

1. 1920 के आर्थिक संकट के करणों को संक्षेप में स्पष्ट करें।
2. औद्योगिक क्रांति ने किस प्रकार विश्व बाजार के स्वरूप को विस्तृत किया?
3. विश्व बाजार के स्वरूप को समझाएँ।
4. भूमंडलीकरण में बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के योगदान (भूमिका) को स्पष्ट करें।
5. 1950 के बाद विश्व अर्थव्यवस्था के पुनर्निर्माण के लिए किए जाने वाले प्रयासों पर प्रकाश डालें ।
6. भूमंडलीकरण के भारत पर प्रभावों को स्पष्ट करें।
7. विश्व बाजार के लाभ-हानि पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखें।

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न (150 शब्दों में उत्तर दें)

1. 1929 के आर्थिक संकट के कारण और परिणामों को स्पष्ट करें।
2. 1945 से 1960 के बीच विश्वस्तर पर विकसित होने वाले आर्थिक संबंधों पर प्रकाश डालें।
3. भूमंडलीकरण के कारण आमलोगों के जीवन में आने वाले परिवर्तनों को स्पष्ट करें।
4. 1991 से 1945 के बीच विकसित होने वाले राजनैतिक और आर्थिक संबंधों पर टिप्पणी लिखें।
5. दो महायुद्धो के बीच और 1945 के बाद औपनिवेशिक देशों में होने वाले राष्ट्रीय आन्दोलनो पर एक निबंध लिखे ।

वर्ग में परिचर्चा करे :

1. भूमंडलीकरण ने किस प्रकार सम्पूर्ण विश्व में संयुक्त राज्य अमेरिका का प्रभाव बढ़ाया ? कुछ उदाहरणों से इसे स्पस्ट करते हुऐ अपने सहपाठियो से शिक्षक की उपस्थिति में परिचर्चा करें ।
2. अपने द्वारा इस्तेमाल में लाई जाने वाली उन वस्तुओं के विषय में वर्ग में चर्चा करें जो सम्पूर्ण विश्व मे मिलता है । इसमे अपने शिक्षक का सहयोग ले ।

इकाई : 8

प्रेस-संस्कृति एवं राष्ट्रवाद

आज के वर्तमान युग में हम प्रेस के बिना आधुनिक विश्व की कल्पना नहीं कर सकते हैं। यह हमारे जीवन के हर पहलू को प्रत्यक्ष एवं परोक्ष, किसी-न-किसी रूप में प्रभावित कर रहा है। चाहे ज्ञान का क्षेत्र हो या सूचना का, मनोरंजन का हो या रोजगार का, इससे प्रत्यक्ष रूप से दुनिया संचालित हो रही है। आज की दूनिया में छपाई के पूर्व की स्थिति की सिर्फ कल्पना ही की जा सकती है, जहाँ मनुष्य परिवर्तनकारी घटनाओं से तुरंत परिचित नहीं होता था और ज्ञान एवं सूचना के अभाव में मानव तार्किक एवं मानवीय प्रवृति के विकास से वंचित था।

चूँकि 'आवश्यकता ही आविष्कार की जननी है, अतः सूचना की आवश्यकता ने आविष्कार हेतु ज्ञान जगत को प्रेरित किया। हाँलाकि यह आविष्कार कोई अचानक या एक दिन की घटना नहीं है बल्कि सदियों के अनवरत विकास क्रम की कहानी है जिसने पूरे विश्व की सोंच में क्रांतिकारी बदलाव लाकर रख दिया। छापाखाना के आविष्कार का महत्व इस भौतिक संसार में आग, पहिया और लिपि की तरह है जिसने अपनी उपस्थिति से पूरे विश्व की जीवन शैली को एक नया आयाम प्रदान किया।
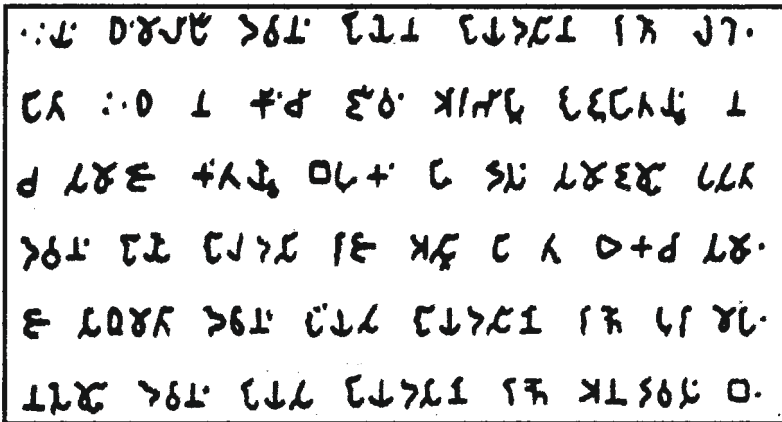
ब्राह्मी लिपि में अशोक का अभिलेख

मुद्रण का इतिहास गुटेनवर्ग तक :

ब्लॉक प्रिंटिंग-स्याही से लग काठ के ब्लॉक या तख्ती पर कागज को रखकर छापाई करने की विधि को ब्लॉक प्रिंटिंग कहते हैं।
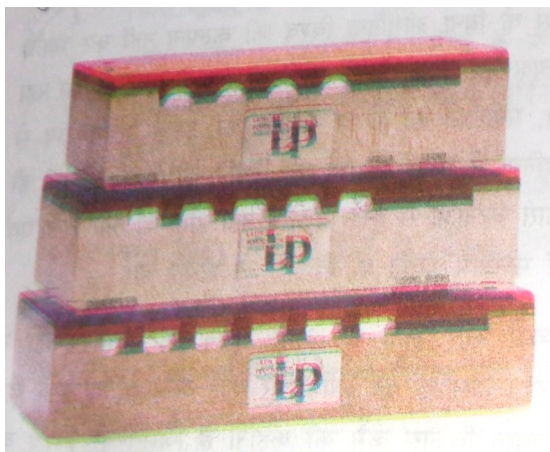
मानव सभ्यता के आदिकाल में मनुज़्य जो देखता था उसे अपनी स्वभाविक वुद्धि तथा अनुभव के अनुसार विभिन्न प्रकार से अंकित करने का प्रयास करता था। लेखन सामग्री के आविष्कार के पूर्व मानव चट्टानों तथा गुफाओं मे अनुभवों एवं प्रसंगों की खुदाई करके चित्रित करता था तथा मिट्टी की टिकियों का उपयोग करता था। बाद में अनने ज्ञान को विभिन्न पत्रकों पर चित्रित करने लगा। 105 (A.D) ई० में टस्-प्लाई-लून (चीनी नागरिक) ने कपास एवं मलमल की पट्टियों से कागज बनाया। फलस्वरूप कागज, लेखन एवं चित्रांकन का एक साधन बन गया। मुद्रण की सबसे पहली तकनीक चीन, जापान और कोरिया में विकसित हुई। लगभग इसकी शुरुआत 594 ई० में लड़की के ब्लॉक के माध्यम से की गई। 712 ई० तक यह चीन के सीमित क्षेत्रों मे फैल गया। 760 ई० तक इसकी लोकप्रियता चीन और जापान में काफी बढ़ गई। ब्लॉक प्रिंटिंग का उपयोग अब पुस्तकों के पृष्ठ बनाने में होने लगा। दो छपे कागज के टुकड़ों को चिपकाकर एक पन्ना बनाया जाता था। लगभग 10वीं सदी के पूर्वार्द्ध तक ब्लॉक प्रिंटिंग की प्रक्रिया द्वारा मुद्रा पत्र भी छापे गए। इसी सदी के उतरार्द्ध में असामाजिक तत्वों द्वारा इसकी नकल की जाने लगी।

लकड़ी का ब्लाक

मुद्रण कला के आविष्कार और विकास का श्रेय चीन को जाता है। 1041 ई०में एक चीनी वयक्ति पि-शेंग ने मिट्टी के मुद्रा बनाए। इन अक्षर मुद्रों का संयोजन कर छाप लिया जा सकता था। बार-बार अलग करके इन्हें संयोजित भी किया जा सकता था। इस पद्धति ने ब्लॉक प्रिंटिंग का स्थान ले लिया। कोरियन लोगों ने कुछ समय पश्चात लकड़ी एवं धातु पर खोदकर टाइप बनाए। धातु मूवेबुल टाइपों द्वारा प्रथम पुस्तक 13वीं सदी के पूर्वार्द्ध मे मध्य कोरिया में छापी गई।

काफी दिनों तक मुद्रित सामग्री का सबसे बड़ा उत्पादक चीनी राजतंत्र था, क्योंकि इसे सिविल सेवा के आकांक्षी लोगों की जिज्ञासा का ध्यान मे रखते हुए बड़ी मात्रा में किताबें छपवानी पड़ती थी। 16 वीं सदी तक परीक्षा देने वालों की तादात बढ़ने से छपी किताबों की मात्रा में भी उसी अनुपात में वृद्धि हुई 17 वीं सदी तक चीन में शहरी संस्कृति के फलने-फूलने से छपी हुई सामग्रियों के उपभोक्ता अब विद्वान और अधिकारी ही नहीं रहे, बल्कि व्यापारी और अमीर महिलाओं के रूप में भी एक वर्ग सामने आया। 19 वीं सदी तक आते-आते मांग को पूरा करने हेतु शंघाई प्रिंट-संस्कृति का नया केन्द्र बन गया और हाथ की छपाई की जगह यांत्रिक छपाई ने ले ली।

युरोप में आरंभ-गुटेनवर्ग की भूमिका :

यद्यपि मूवेबल टाइपों द्वारा मुद्रण कला का आविष्कार तो पूरब में ही हुआ परन्तु इस कला का विकास यूरोप में अधिक हुआ। इसका प्रमुख कारण था कि चीनी, जापानी और कोरियन भाषा में 40 हजार से अधिक वर्णाक्षर थे, फलतः सभी वर्णों का ब्लॉक बनाकर उपयोग करना कठिन कार्य था। लकड़ी के ब्लॉक द्वारा होने वाली मुद्रण कला समरकन्द-पर्शिया-सिरिया मार्ग से (रेशममार्ग) व्यापारियों द्वारा यूरोप, सर्वप्रथम रोम में प्रविष्ट हुई। 13वीं सदी के अंतिम में रोमन मिशनरी एवं मार्कोपोलो द्वारा ब्लाक प्रिंटिग के नमूने यूरोप पहुँचे । वहाँ इस कला का प्रयोग ताश खेलने एवं धार्मिक चित्र छापने के लिए किया गया। रोमन लिपि में अक्षरों की संख्या कम होने के कारण लकड़ी तथा धातु के बने मूवेबल टाइपों का प्रसार तेजी से हुआ। इसी बीच कागज बनाने की कला 11वीं सदीं में पूरब से यूरोप पहुँची तथा 1336 ई० में प्रथम पेपर मिल की स्थापना जर्मनी में हुई। इसी काल में शिक्षा के प्रसार, व्यापार एवं मिशनरियों की बढ़ती गतिविधियों से सस्ती मुद्रित सामग्रियों की मांग तेजी से बढ़ी। इस मांग की पूर्ति के लिए तेज और सस्ती मुद्रण तकनीक की आवयकता थी जिसे (1430 के दशक में) स्ट्रेसवर्ग के योहान गुटेन वर्ग ने अंततः कर दिखाया।

गुटेनवर्ग और प्रिंटिंग प्रेस :

जर्मनी के मेन्जनगर में गुटेनवर्ग ने कृज़क-जमींदार-व्यापारी परिवार में जन्म लिया था। वह बचपन से ही तेल और जैतून पेरनेवाली मशीनों से परिचित था । गुटेनवर्ग ने अपने ज्ञान एवं अनुभव से टुकड़ों में बिखरी मुद्रण कला के ऐतिहासिक शोध को संगठित एवं एकत्रित किया तथा टाइपों

के लिए पंच, मेट्रिक्स, मोल्ड आदि बनाने पर योजनाबद्ध तरीके से कार्यारंभ किया। मुद्रा बनाने हेतु उसने सीसा, टिन (रांगा) और विसमथ धातुओं से उचित मिश्र-धातु बनाने का तरीका ढूंढ निकाला। सीसे का चयन सस्ता और स्याही के स्थानान्तरण करने की क्षमता के कारण किया गया। रांगा का (टिन) का उपयोग उसकी कठोरता एवं गलाने के गुणों से किया गया।

विसमथ धातुः इसकी विशेषता यह है कि यह ठढ़ा होने पर फैलता है जिससे अन्य धातुओं के ठंढा होने पर होने वाले संकुचन की भरपाई हो सके और परिणाम की सत्यता बनी रहे।

गुटेनवर्ग ने आवष्ठयकता के अनुसार मुद्रण स्याही भी बनायी तथा हैण्डप्रेस का प्रथम बार मुद्रण कार्य सम्पन्न करने में प्रयोग किया। इस हैण्डप्रेस में लकड़ी के चौखट में दो समतल भाग- प्लेट एवं बेड-एक के नीचे दूसरा समानान्तर रूप से रखे गए थे। कम्पोज किया हुआ टाइप मैटर बेड पर कस दिया जाता था एवं उसपर स्याही लगाकर तथा कागज रखकर प्लेट्स द्वारा दबाकर मुद्रित किया जाता था। इस प्रकार का एक सुस्पष्ट, सस्ता एवं शीघ्र कार्यकरनेवाला गुटेनवर्ग का ऐतिहासिक मुद्रण शोध 1440 वें वर्ष में शुरू हुआ, जब गुटेनवर्ग को फस्ट नामक सुनार (साहुकर) से बाइबिल छापने का ठेका प्राप्त हुआ। ऐसा माना जाता है कि पुराने 42 लाइन एवं 36 लाइन के बाइबिल गुटेनवर्ग द्वारा छापे गए, हालाँकि इनपर प्रकाशन की कोई तारीख अंकित नहीं है। 421 लाइन वाले बाइबिल का मुद्रण गुटेनवर्ग द्वारा शुरू किया गया लेकिन फस्ट और शुओफर द्वारा इसे पूर्ण किया गया, क्योंकि दोनों ने गुटेनवर्ग के प्रेस को कोर्ट की डिग्री द्वारा अपने अधिकार में कर लिया था। इसके पश्चात गुटेनवर्ग ने पुनः मुद्रण एवं हैण्ड प्रेस का विकास कर 36 लाइन में बाइबिल को 1448 ई० में छापा। इसके बाद शुओफर ने 'इन्डलजन्स' नामक पुस्तक छापी।

गुटेनवर्ग

हालाँकि ववादों में घिरने के बावजूद मेंज में शुरू होकर पूर्णता को पहुँची मुद्रण कला का प्रसार शीघ्रता से यूरोपीय देशों एवं अन्य स्थानों में हुआ। कौलग्ने, आग्सवर्ग, वेसल, रोम, वेनिस, एन्टवर्प, पेरिस आदि शहर मुद्रण के प्रमुख केन्द्र के रूप में विकसित हुए। यही शहर आगे चलकर
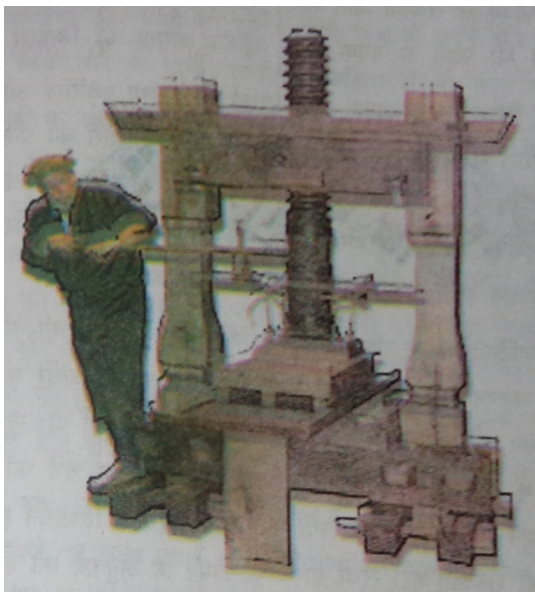
हैंडप्रेस

पुनर्जागरण एवं व्यापारिक क्रांति के केन्द्र के रूप में अपनी विशिष्ट पहचान बनाए। 1475 ई० में सर विलियम कैक्सटन मुद्रणकला को इंग्लैंड में लाए तथा वेस्ट मिन्सटर कस्बे में उनका प्रथम प्रेस स्थापित हुआ। पुर्तगाल में इसकी शुरुआत 1544 ई० में हुई, तत्पश्चात यह आधुनिक रूप में विश्व के अन्य देशों में पहुँची।

मुद्रण क्रांति का बहुआयामी प्रभाव :

छापाखाने की संख्या में वृद्धि के परिणामस्वरूप पुस्तक निर्माण में अप्रत्याशित वृद्धि हुई। 15 वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध तक यूरोपीय बाजार मे लगभग दो करोड़ मुद्रित किताबें आई; जिसकी संख्या 16 वीं सदी तक 20 करोड़ हो गई। इस मुद्रण क्रांति ने आम लोगों की जिंदगी ही बदल दी। आम लोगों का जुड़ाव सूचना, ज्ञान, संस्था और सत्ता से नजदीकी स्तर पर हुआ। फलतः लोक चेतना एवं दृष्टि में बदलाव संभव हुआ।

मुद्रण क्रांति के फलस्वरूप किताबें समाज के सभी तबकों तक पहुँच गईं। किताबों की पहुँच आसान होने से पढने की नई संस्कृति विकसित हुई। चूँकि, साक्षर ही पुस्तकों को पढ़ सकते थे, इसलिए एक नया पाठक वर्ग पैदा हुआ। अतः साक्षरता बढ़ाने हेतु पुस्तकों को रोचक तस्वीरों,

लोकगीत और लोक कथाओं से सजाया जाने लगा। पहले जो लोग सुनकर ज्ञानार्जन करते थे अब पढ़ कर भी सकते थे। पढ़ने से उनके अंदर तार्किक क्षमता का विकास हुआ।

पठन-पाठन से विचारों का व्यापक प्रचार-प्रसार हुआ तथा तर्कवाद और मानवतावाद का द्वार खुला। स्थापित विचारों से असहमत होनेवाले लोग भी अपने विचारों को फैला सकते थे। कुछ लोगों के मन में मुद्रित किताबों को लेकर तरह-तरह के भय व्याप्त थे कि पढ़ने के बाद आम लोगों के व्यक्तित्व में इसका क्या असर होगा । भय था कि लोगों मे बागी और अधार्मिक विचार पनपने लगेंगे और मूल्यवान साहित्य की सत्ता ही समाप्त हो जाएगी।

धर्म सुधारक मार्टिन लूथर ने रोमन कैथोलिक चर्च की कुरीतियों की आलोचना करते हुए अपनी पंचानवे (95) स्थापनाएँ लिखी। इसकी एक प्रति विटेनवर्ग गिरजाघर के दरवाजे पर टाँग दी गई। लूथर ने चर्च को इसके माध्यम से शास्त्रार्थ के लिए चुनौती भी दी। लूथर के लेख आम लोगों (स्वतंत्र विचारों के पोषक) में काफी लोकप्रिय हुए। कैथोलिक चर्च की सत्ता एवं उसके चरित्र पर लोगों द्वारा प्रश्नचिन्ह उठाए जाने लगे। फलस्वरूप चर्च में विभाजन हुआ और प्रोटेस्टेंट धर्म सुधार आन्दोलन की शुरुआत हुई। लूथर द्वारा न्यूटेस्टामेंट के अनुवाद की हजारों प्रतियाँ हफ्ते भर में बिक गई और तीन महीने के अन्दर दूसरा संस्करण निकालना पड़ा। प्रिंट के प्रति कृतज्ञ लूथर ने कहा- ''मुद्रण ईश्वर की दी हुई महानतम् देन है, सबसे बड़ा तोहफा।'' इस तरह छपाई से नए बौद्धिक माहौल का निर्माण हुआ एवं धर्मसुधार आन्दोलन के नए विचारों का फैलाव बड़ी तेजी से आम लोगों तक हुआ।

अब अपेक्षाकृत कम पढ़े लिखे लोग धर्म की अलग-अलग व्याख्याओं से परिचित हुए। कृज़क से लेकर बुद्धिजीवी तक बाइबिल की नई-नई व्याख्या करने लगे। ईश्वर एवं सृष्टि के बारे में रोमन कैथोलिक चर्च की मान्यताओं के विपरित विचार आने से कैथोलिक चर्च क्रुद्ध हो गया और तथाकथित धर्मविरोधी विचारों को दबाने के लिए इन्क्वीजीशन शुरू किया। जिसके माध्यम से विरोधी विचाराधारा के प्रकाशकों और पुस्तक विक्रेताओं पर प्रतिबंध लगाया गया।

अलग-अलग सम्प्रदाय के चर्चों ने देहाती क्षेत्रों में स्कूल स्थापित कर गरीब तबके के लोगों को शिक्षित करना शुरू किया। जिसके कारण साक्षरता 60 से 80 प्रतिशत तक हो गई। अब गाँव के गरीब भी सस्ती किताबों, चैपबुक्स, पंचांग, विन्लियोथिक ब्ल्यू एवं इतिहास आदि की किताबों को पढना शुरू किए। 18वीं सदी के आरंभ से पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से मनोरंजक खबरे

परोसी जाने लगी। इस तरह वैज्ञानिक और दार्शनिक बाते भी आम जनता की पहुँच से बाहर नही रही । न्यूटन, टामसपेन, वाल्तेयर और रूसो की पुस्तकें भारी मात्रा में छपने और पढी जाने लगी। फलत: विज्ञान, तर्क और विवेकवाद के विचार लोकप्रिय साहित्य में भी जगह पाने लगे।

18 वीं सदी के मध्यतक मुद्रण क्रांति के फलस्वरूप प्रगति और ज्ञानोदय का प्रकाश यूरोप में फैल चुका था। लोगों में निरंकुश सत्ता से लड़ने हेतु नैतिक साहस का संचार होने लगा था। फलस्वरूप मुद्रण संस्कृति ने फ्रांसीसी क्रांति के लिए भी अनुकूल परिस्थितियों का निर्माण किया। क्रांतिकारी दार्शनिकों के लेखन ने परंपरा, अंधविश्वास और निरंकुशवाद की आलोचना पेश की। अब रीति-रिवाज की जगह विवेक और तर्क को कसौटी प कसकर सत्य को परखा जाने लगा। चर्च की धार्मिक और राज्य की निरंकुश सत्ता पर प्रहार किया जाने लगा। परंपरा पर आधारित सामाजिक व्यवस्था को दुर्बल किया गया। अब लोगों में आलोचनात्मक, सवालिया और तार्किक दृष्टिकोण विकसित होने लगा।

छपाई ने वाद-विवाद की नई संस्कृति को जन्म दिया। पुराने और परंपरागत मूल्यों, संस्थाओं और कायदों पर आम लोगों के बीच मूल्यांकन शुरू हो गया। धर्म और आस्था को तार्किकता की कसौटी पर कसने से मानवतावादी दृष्टिकोण विकसित होने लगे। इस तरह की नई सार्वजनिक दुनिया ने सामाजिक क्रांति को जन्म दिया। नए साहित्यों ने आमलोगों को निरंकुश राजशाही के प्रति आक्रोशित भी करने का प्रयास किया।

तकनीकी विकास :

18 वीं सदी के अंत तक प्रेस धातु के बनने लगे थे । 19 वीं सदी के मध्य तक न्यूयार्क के रिचर्ड एम०हो० ने शक्ति चालित बेलनाकार प्रेस को कारगर बना लिया था। इससे प्रतिघंटे 8000 ताव छापे जा सकते थे। सदी के अंत तक ऑफसेट प्रेस आ गया। था, जिससे छः रंगों में छपाई एक साथ

प्रिंटिंग प्रेस

संभव थी। 20 वीं सदी के प्रारंभ से बिजली से चलनेवाले छापेखाने ने तेजी से काम करना शुरू कर दिया। तकनीकी रूप से सुधार के चलते प्लेट की गुणवत्ता बेहतर हुई । पेपर रील और रंगों के लिए फोटो विद्युतीय नियंत्रण भी काम में आने लगे। अब पुस्तकें सस्ती और रोचक कवर तथा पृष्ठ के साथ पाठकों के बीच पहुँचने लगी। इन पुस्तकों के पूर्व पाण्डुलिपियों के माध्यम से लोग ज्ञान अर्जन करते थे। यह आम छात्रों के लिए सुलभ नहीं थी क्योंकि यह काफी पुरानी, महँगी और दुर्लभ हुआ करती थी।

चित्रित पाण्डुलिपि

भारत में प्रेस का विकास :

भारत में छापाखाना के विकास के पहले हाथ से लिख कर पाण्डुलिपियों को तैयार करने की पुरानी एवं समृद्ध परम्परा थी। यहाँ संस्कृत, अरबी, एवं फारसी साहित्य की अनेकानेक तस्वीर युक्त सुलेखन कला से परिपूर्ण साहित्यों की रचनाएँ होती रहती थीं। इन्हें मजबूती प्रदान करने के लिए सजिल्द भी किया जाता था। फिर भी पाण्डुलिपियाँ काफी नाजुक और महँगी होती थीं। पाण्डुलिपियों की लिखावट कठिन होने एवं प्रचुरता से उपलब्ध नहीं होने के कारण यह आम जनता के पहुँच के बाहर थीं। छापाखाना के आविष्कार ने भारत की भी तस्वीर बदल दी। प्रिटिंग प्रेस सबसे पहले भारत में पुर्तगाली धर्मप्रचारकों द्वारा 16 वीं सदी में लाया गया। जेसुइट पुजारियों ने

कोंकणी में कई पुस्तिकाएँ छापी। कैथोलिक पुजारियों ने 1579 में पहली तमिल पुस्तक छापी। डच –प्रोटेस्टेंटो ने कई किताबों को अनुदित करके भी छापा। भारत में समाचार–पत्रों का उदय 19 वी सदी की एक महत्वपूर्ण विशेषता है। यह न सिर्फ विचारों को तेजी से फैलानेवाला अनिवार्य सामाजिक संस्था बन गया बल्कि ब्रिटिश सरकार के विरूद्ध भारतीयों की भावना को एक, रूप देने, उसकी नीतियों एवं शोषण के विरूद्ध जागृति लाने एवं देशप्रेम की भावना जागृत कर राष्ट्र निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया।

समाचार पत्रों की स्थापना :

आधुनिक भारतीय प्रेस का प्रारंभ 1766 में विलियम बोल्टस द्वारा एक समाचार पत्र के प्रकाशन से हुआ । परन्तु ईस्ट इंडिया कंपनी ने उनके कार्यो से नाखुश होकर उन्हें इंगलैड भेज दिया । 1780 में जे० के० हिक्की ने **'बंगाल गजट'** नामक समाचार पत्र प्रकाशित करना आरंभ किया । हिक्की को भी कंपनी की आलोचना करने के अपराध में सजा भुगतनी पड़ी । हिक्की के प्रेस को कम्पनी ने जब्त कर लिया । नवम्बर 1780 में प्रकाशित **'इंडिया गजट'** दूसरा भारतीय पत्र था । 18 वीं सदी के अंत तक बंगाल में 'कलकत्ता कैरियर', 'एशियाटिक मिरर' तथा 'ओरियंटल स्टार', 'बंबई गजट' तथा 'हैराल्ड' और 'मद्रास कैरियर', 'मद्रास गजट' आदि समाचार पत्र प्रकाशित होने लगे । ये सभी समाचार पत्र साप्ताहिक थे और अलग–अलग दिन प्रकाशित होते थे । इनकी विशेषता थी कि ये एक–दूसरे के प्रतिस्पर्धी न होकर पूरक थे । इनका क्षेत्र कम्पनी के अधिकारियों, व्यापारियों तथा मिशनरियों तक ही सीमित था ।

जे०के० हिक्की

भारतीयों द्वारा प्रकाशित प्रथम समाचारपत्र 1816 में गंगाधर भट्टाचार्य का साप्ताहिक 'बंगाल गजट' था । 1818 में ब्रिटिश व्यापारियों ने जैम्स सिल्क वर्किंधम नामक पत्रकार की सेवा प्राप्त की इसने बड़ी योग्यता से कलकत्ता जर्नल का सम्पादन करके लार्ड हेस्टिंग्स तथा जॉन एडम्स को परेशानी तथा उलझन में डाल दिया। बर्किंघम ने अपने पत्रकारिता के माध्यम से प्रेस को

Amrita Bazar Patrika

Contribute To Build A New Civilisation

Nehru In Allahabad

Prime Minister's Appeal To Students

Call To Think In A New Way In Era Of H-Bomb

Switching On To Hindi As Official Language

Basic And Substantial Agreement Reached

Pro-Tara Singh Demonstrations Teargassed

Nehru Passes Busy Day

Russia May Climb Down On Berlin Issue

Shooting Down Of Egyptian Plane

De Gaulle Elected French President

Coty Formally To Hand Over Charge On Jan. 8

West Berlin Can't Be Protectorate'

Allahabad Varsity Honours Eminent Persons

Degrees Conferred At Special Convocation

U. S. Accuses Russia Of Meddling In Berlin Affairs

अमृत बाजार पत्रिका का मुख्यपृष्ठ

जनता प्रतिबिम्ब बनाया। इसने प्रेस को आलोचनात्मक दृष्टिकोण अपनाने, जाँच-पड़ताल करके समाचार देने तथा नेतृत्व प्रदान करने की ओर प्रवृत किया। अपने प्रगतिशील कार्यों से ये कम्पनी की आँखों में खटकने लगे। फलत: उन्हें में इंग्लौंड भेज दिया गया।

1821 में बंगला में 'संवाद कौमुदी' तथा 1822 में फारसी में प्रकाशित 'मिरातुल' अखबार के साथ प्रगतिशीन राष्ट्रीय प्रवृति के समाचार-पत्रों का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ। इन समाचार पत्रों के

संस्थापक राजा राममोहन राय थे जिन्होंने इन्हें सामाजिक-धार्मिक सुधार आन्दोलन का हथियार भी बनाया। अंग्रेजी में ब्राह्मिनिकल मैगजीन भी राममोहन राय ने निकाला। 1822 में बंबई से गुजराती भाषा में 'दैनिक बम्बई' समाचार निकलने लगे। द्वारकानाथ टैगोर, प्रसन्न कुमार टैगोर तथा राममोहन राय के प्रयास से 1830 में 'जामें जमशेद', 1851 साल में 'गोफ्तार ' तथा 'अखबारे सौदागर' का प्रकाशन आरम्भ हुआ।

राजा राममोहन राय

अंग्रेज प्रशासकों ने भारतीय समाचार-पत्रों द्वारा तत्कालीन सामातिक, धार्मिक तथा राजनीतिक समस्यायों पर विचार-विमर्श का स्वागत नहीं किया और प्रेस को प्रतिबंधित करने का कुत्सित प्रयास किया।

प्रेस की विशेषताएँ- समयानुसार बदलते परिप्रेक्ष्य में :

19 वीं सदी के पूर्वार्द्ध में जागरूकता के अभाव के कारण सामान्य जनता से लेकर जमींदारों तक की रुचि राजनीति में नहीं थी। फलत: समाचार-पत्रों का वितरण कम था। पत्रकारिता घाटे का व्यापार था। समाचार-पत्रों का जनमत पर कोई विशेष प्रभाव नहीं होने के कारण अंग्रेज प्रशासक भी परवाह नहीं करते थे । फिर भी समाचार-पत्रों द्वारा नयायिक निर्णयों में पक्षपात, धार्मिक हस्तक्षेप और प्रजातीय भेदभाव की आलोचना करने से धार्मिक एवं सामाजिक सुधार-आन्दोलन को बल मिला तथा भारतीय जनमत जागृत हुआ।

1857 के विद्रोह के पश्चात् समाचार-पत्रों की प्रकृति का विभाजन प्रजातीय आधार पर किया जा सकता है। भारत में दो प्रेस थे- एंग्लोइंडियन प्रेस और भारतीय प्रेस। एंग्लोइंडियन प्रेस की प्रकृति और आकार विदेशी था। यह भारतीयों में 'फूट डालो और शासन करो' का पक्षधर था। यह दो सम्प्रदायों के बीच एकता के प्रयास का घोर आलोचक था। इसके

द्वारा भारतीय नेताओं पर 'राज' के प्रति गैर वफादारी का सदैव आरोप लगाया जाता रहा । एंग्लों इंडियन प्रेस को विशेषाधिकार प्राप्त था । सरकारी खबरें एवं विज्ञापन इसी को दिया जाता था । सरकार के साथ इसका घनिष्ठ संबंध था ।

भारतीय प्रेस अंगरेजी तथा अन्य भारतीय भाज़ाओं में प्रकाशित होते थे । 19 वीं तथा 20 वीं सदी में राममोहन राय, सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, बालगंगाघर तिलक, दादाभाई नौरोजी, जवाहर लाल नेहरू, महात्मा गाँधी, मुहम्मद अली, मौलाना आजाद आदि ने भारतीय प्रेस को शक्तिशाली तथा प्रभावकारी बनाया ।

19 वी सदी में अंग्रजों द्वारा सम्पादित कई समाचार पत्र थे । जिसमें टाइम्स ऑफ इंडिया 1861 में, स्टेट्समैन 1875 में, इंग्लिशमैन कलकत्ता से, मद्रासमेल मद्रास से, पायनियर 1865 में इलाहाबाद से और 1876 में सिविल और मिलिट्री गजट लाहौर से प्रकाशित होने लगे थे । इंग्लिश मैन सबसे रूदिवादी और प्रतिक्रियावादी समाचारपत्र था, जबकि स्टेट्स मैन उदार विचारों का पोज़क था । यह सरकार और कांग्रेस दोनों की आलोचना करता था । पायनियर सरकार का समर्थक और भारतीयों का आलोचक था ।

भारतीयों द्वारा प्रकाशित एवं संपादित पत्र :

ईश्वरचन्द्र विद्यासागर

1858 में ईश्वरचन्द विद्यासागर ने 'सोम प्रकाश' का प्रकाशन साप्ताहिक के रूप में बंगाली में प्रारम्भ किया । यह राष्ट्रवादी विचारों से ओतप्रोत समाचार पत्र था । इसने नीलहे किसानों के हितों का जोरदार समर्थन किया । लार्ड लिटन ने इसकी गतिविधियों के कारण ही वर्नाक्यूलर प्रेस ऐक्ट लागू किया था। कुछ वर्षों बाद 'हिन्दू पैट्रियट' को भी विद्यासागर ने ले लिया । 1874-75 के बीच इस पत्र के लंदन में संवाददाता सुरेन्द्रनाथ टैगोर और मनमोहन घोज़ ने 'इंडियन मिरर' का प्रकाशन थ्रुारू किया। यह उत्तरी भारत का भारतीयों द्वारा संपादित एक मात्र दैनिक समाचार पत्र था । केशवचन्द्र सेन ने 'सुलभ समाचार' का बंगला में दैनिक प्रकाशन किया ।

मोतीलाल घोष के संपादन में 1868 से अग्रेजी–बंगला साप्ताहिक के रूप में अमृत बाजार पत्रिका का प्रेस के इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान है । 1878 में लिटन के वर्नाक्यूलर प्रेस एक्ट से बचने के लिए यह रातो–रात अंगरेजी में प्रकाशित होने लगा ।

जोगेन्द्र नाथ बोस के सम्पादन (1881) में बंगवासी शुरू हुआ जिसकी वितरण संख्या 8500 तक पहुँच गई। सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने बंगाली को राष्ट्रवादी एवं राजनीतिक विचारधारा का प्रभावशाली पत्र बनाने में सफलता प्राप्त की। कलकत्ता से हिन्दी बंगवासी, आर्यावर्त, उचितवक्ता, भारत मित्र आदि का प्रकाशन शुरू हुआ। कालाकांकड (उत्तर प्रदेश) से हिन्दी में हिन्दोस्तान का प्रकाशन शुरू हुआ, जो उदार विचारों का पोषक था।

भारतेन्दु हरिश्चंद्र का हिन्दी पत्रकारिता के क्षेत्र में महत्वपूर्ण स्थान है। 1867 में इनके संपादन में बनारस से 'कविवचन सुधा' प्रकाशित होने लगा। इसकी संपादकीय टिप्पणियाँ राजनीति–सामाजिक विषयों पर होती थीं जो राष्ट्रवादी विचारों को सशक्त करने का काम कर रही थीं। भारतेन्दु की 1872 में प्रकाशित मासिक पत्रिका हरिश्चंद्र भी देश प्रेम और समाज सुधार से अनुप्राणित थी। राष्ट्रवादी विचारों को संपोषित करने वाली पत्रिकाओं में बालकृष्ण भट्ट का हिन्दी प्रदीप, रामकृष्ण वर्मा के 'भारत जीवन' का महत्वपूर्ण स्थान है। 1899 में अंग्रेजी मासिक 'हिन्दुस्तान रिव्यू' की स्थापना सच्चिदानंद सिन्हा ने की, जिसका दृष्टिकोण राजनीतिक था।

धीरे–धीरे 19 वीं सदी के अंतिम दो दशकों में राष्ट्रीय आंदोलन का फलक विस्तृत हो रहा था। फलतः राष्ट्रीय आन्दोलन की नई लहर एवं कांग्रेस की स्थापना ने प्रेस के विकास एवं समाचार पत्रों के प्रसार पर व्यापक प्रभाव डाले। बाल गंगाधर तिलक के संपादन में 1881 में बंबई से अंग्रेजी भाषा में मराठा और मराठी में केसरी की शुरुआत हुई। दोनों पत्र उग्रराष्ट्रवादी विचारों से प्रभावित थे। इनका जनमानस पर व्यापक प्रभाव था। 1862 में एम०जी० रानाडे ने इन्दु प्रकाश तथा फिरोजशाह मेहता ने 1913 में बाम्बे क्रॉनिकल का प्रकाशन प्रारंभ किया।

बंगाल में उग्रराष्ट्रवाद को फैलाने का काम अरविंद घोष और वारींद्र घोष ने जुगांतर तथा वंदेमातरम् के माध्यम से किया।

मद्रास से 1878 में साप्ताहिक के रूप में प्रकाशित होनेवाला हिन्दू 1881 में दैनिक के रूप में परिवर्तित हो गए। इस पत्र का दृष्टिकोण उदार था।

समाचार पत्रों को राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रचार के हथियार के रूप में डा० एनीवेसेन्ट ने भी इस्तेमाल किया। इन्होंने मद्रास स्टैंडर्ड को अपने संचालन मे लेकर न्यू इंडियन का नाम देकर होमरूल का नारा जन–जन तक पहुँचाया।

महात्मा गाँधी न केवल कुशल राजनीतिज्ञ थे बल्कि महान् पत्रकार भी थे। गाँधीजी ने 'यंग इंडिया' तथा 'हरिजन' के माध्यम से अपने विचारों एवं राष्ट्रवादी आन्दोलन का प्रचार किया । सरकार को अपने राजनैतिक दर्शन एवं राजनीतिक कार्यक्रमों से अवगत कराया तथा भारत के अवाम को एक बड़े आन्दोलन के लिए प्रशिक्षित किया । भारतीय प्रेस गाँधी के व्यक्तित्व से प्रभावित होकर निर्भिक होने लगा । गाँधी के सीधे एवं सरल लेख से आम जनता के साथ–साथ क्षेत्रीय पत्रकारिता को भी राष्ट्रीय आन्दोलन से जुड़ने के लिए प्रोत्साहन मिला ।

समाचार पत्रों ने न केवल राष्ट्रवादी आन्दोलन को एक नई दिशा दी अपितु भारत में शिक्षा के प्रोत्साहन, आर्थिक विकास औद्योगिकरण तथा श्रम आन्दोलन को भी प्रोत्साहित करने का कार्य किया ।

मोतीलाल नेहरू ने 1919 में इडिपेंडेंस, शिव प्रसाद गुप्त ने हिन्दी दैनिक आज, के० एम० पन्निकर ने 1922 में हिन्दुस्तान टाइम्स का सम्पादन प्रारंभ किया । बाद में हिन्दुस्तान टाइम्स का सम्पादन कार्य मदनमोहन मालवीय के हाथ में आया और अतत: 1927 में इस पत्र को जी० डी० विड़ला ने अपने हाथों में ले लिया । समाजवादी–साम्यवादी विचारो के फैलाव के परिणामस्वरूप मराठी साप्ताहिक क्रांति, वर्कर्स एण्ड पीजेंट्स पार्टी ऑफ इंडिया का प्रतिनिधित्व कर रहा था। अंग्रेजी साप्ताहिक न्यू स्पार्क, कांग्रेस सोशलिस्ट क्रमश: मार्क्सवादी एवं
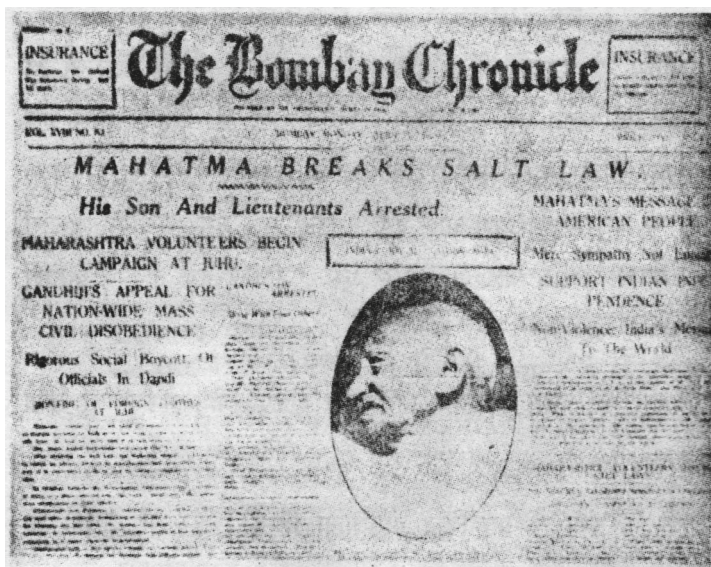
The Bombay Chronicle

MAHATMA BREAKS SALT LAW.

His Son And Lieutenants Arrested.

MAHARASHTRA VOLUNTEERS BEGIN CAMPAIGN AT JUHU

GANDHIJI'S APPEAL FOR NATION-WIDE MASS CIVIL DISOBEDIENCE

Rigorous Social Boycott Of Officials In Dandi

Non-Violence: India's Message To The World

तत्कालीन समाचार पत्र में गाँधीजी

समाजवादी विचारों के पोषक थे । एम० एन० राय ने अंग्रेजी साप्ताहिक **इंडिपेंडेन्ट** 1930 में, एस० सदानंद के संपादन में दी फ्री प्रेस जरनल को शुरू किया गया। मद्रास में स्वराज्य तथा गुजराती में नवजीवन का प्रकाशन भी शुरू हुआ ।

1910–20 के बीच उर्दू पत्रकारिता का भी विकास हुआ । मौलाना आजाद के संपादन में 1912 में 'अल हिलाल' तथा 1913 में 'अल बिलाग' कलकत्ता से निकलना प्रारंभ हुआ । मोहम्मद अली ने अंगरेजी में 'कामरेड' तथा उर्दू में 'हमदर्द' का प्रकाशन किया । 1910 में गणेश शंकर विधार्थी के संपादन में 'प्रताप' का प्रकाशन कानपुर से प्रारंभ हुआ । यह उग्र राष्ट्रवाद तथा किसान–मजदूर का जबरदस्त समर्थक था । 1913 में 'गदर' का प्रकाशन हरदयाल के द्वारा सैन फ्रंासिस्को से हुआ । यह धर्मनिरपेक्ष और लोकतंत्रिक भावनाओं से ओतप्रोत समाचार–पत्र था । जनवरी 1914 से पंजावी में भी इसका प्रकाशन प्रारंभ हुआ । विदेशों में रह रहे भारतीयों के मन में देशप्रेम का भाव जगाने हेतु यह पत्र काफी सक्रिय रहा ।

जहाँ तक उर्दू प्रेस का राष्ट्रवादी आन्दोलन से संबंध की बात है 1857 की क्रांति के दौरान एवं इसके पश्चात यह अंग्रेजी राज की घोर आलोचक थी। लेकिन राष्ट्रीय राजनीतिक में सर सैयद अहमद खाँ के बढ़ते प्रभाव ने इसे कांग्रेस समर्थित राष्ट्रीय आन्दोलन एवं अंग्रेजी राज से मुसलमानों के संबेधों की नई व्यवस्था करने के लिए प्रेरित किया। हालाँकि उर्दू प्रेस ने सामान्य रूप से सर सैयद अहमद के विचारों से सहमति प्रकट नहीं की। मौलाना आजाद, मोहम्मद अली और अब्दुल वारी साहेब आदि के संपादन में प्रकाशित होने वाले पत्र पूर्णत: राष्ट्रवादी भावनाओं से ओत प्रोत थे। इनमें कई पत्रों के ग्राहक सर सैयद के अलीगढ़ जर्नल से कहीं अधिक थे।

प्रेस का राष्ट्रीय आन्दोलन में भूमिका तथा प्रभाव

प्रेस ने राष्ट्रीय आन्दोलन के हर पक्ष–चाहे वह राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक हो या सांस्कृतिक–सबको प्रेस ने प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित किया। प्रेस के माध्यम से राष्ट्रीय नेताओं ने अंग्रेजी राज की शोषणकारी नीतियों का पर्दाफाश करते हुए जनजागरण फैलाने का कार्य किया। विदेशी सत्ता से त्रस्त जनता को सन्मार्ग दिखाने एवं साम्राज्यवाद के विरोध में निर्भीक स्वर उठाने का कार्य प्रेस के माध्यम से ही किया गया।

भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन की स्थापना से पहले समाचार–पत्र देश में लोकमत का प्रतिनिधत्व कर रहे थे। देशभक्तों ने लाभ या व्यावसायिक दृष्टि से पत्रकारिता को नहीं अपनाया, बल्कि इसे मिशन के रूप में अपनाया। समाचार–पत्रों ने राजनीतिक शिक्षा देने का दायित्व अपने ऊपर ले लिया। अधिकांश समाचार–पत्रों का रूख कांग्रेस की याचना वादी नीतियों से भिन्न थी। राजनीतिक समस्याओं में भाग लेने के लिए समाचार पत्र जनता को प्रोत्साहित करते थे। पूरे वर्ष समाचार पत्रों में कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशनों में पारित प्रस्तावों की चर्चा होती रहती थी। इससे राष्ट्रीय चेतना का प्रचार द्रुत गति से होने लगा। अंग्रेजों द्वारा पक्षपात की नीति की आलोचना भारतेन्दू ने इन शब्दों में की, ''क्या कारण है कि हिन्दू मजिस्ट्रेट अंग्रेज को दण्ड न दे सके पर अंग्रेज हिन्दू को? केवल पक्षपात!

नई शिक्षा नीति के प्रति व्यापक असंतोष को सरकार के समक्ष पहुँचाने का कार्य प्रेस ने ही किया। अंग्रेजों द्वारा भारत का जो आर्थिक शोषण हो रहा था इसके विरुद्ध भी प्रेस ने आवाज उठाई। आर्थिक दुर्दशा का मार्मिक चित्रण करते हुए एक पत्र मे लिखा कि ''वाणिज्य, व्यापार, टिकस पर टिकस और मोटा वेतन ग्रहण करके राजपुरुषगण यहाँ से सब रुपया विदेश ले गए हैं। यहाँ इतना रूपया नहीं है कि देश सामान्य कार्यो का खर्च संभाल सके । पर इंगलैड के राजमंत्री भारत के गवर्नर जनरल से पाँच गुणा वेतन लेते है .... परन्तु भारत वर्ज़ कामधेनु तो नहीं है, यह अब अंग्रजों को जान लेना होगा ।'' 'भारत मित्र' ने भारत से चावल निर्यात का विरोध किया । भारत की शोचनीय आर्थिक दशा पर समाचार पत्र के विचारो में मतभेद था । भारतीय समाचार पत्र इस दुर्दशा के लिए अंग्रेजो की शोषणकारी नीति को उत्तरदायी मानते थे जबकि एंग्लो इंडियन प्रेस भारत को इस दुर्दशा से निकालने में अंग्रेजी राज को ही सक्षम मानते थे । अधिकांश समाचार पत्रों की नजर में भारत की वास्तविक समस्या राजनीति से कहीं अधिक आर्थिक थी । समाचार पत्रों द्वारा भारत से धन के निष्कासन को रोकने का आह्वान किया गया । गर्मियों में राजधानी शिमला स्थानान्तरित करने की भी आलोचना समाचार पत्रों ने की। स्वदेशी का भी समर्थन इनके द्वारा किया गया । जैसा अखबार ने लिखा कि स्वदेशी हिन्दुओं से अधिक मुसलमानों के लिए फायदेमंद होगा ।

सामाजिक सुधार के क्षेत्र में प्रेस ने सामाजिक रूढ़ियों, रीति–रिवाजों, अंधविश्वास तथा अंग्रेजी सभ्यता के प्रभाव को लेकर लगातार आलोचनात्मक लेख प्रकाशित किए । राम मोहन राय, विद्यासागर, केशवचन्द्र सेन आदि जैसे समाजसुधारकों ने जनमत हेतु प्रेस को अपना हथियार बनाया ।

भारतीय नरेशों के प्रति सम्पादकों ने सदैव सकारात्मक रूख अपनाया। जब भी सर्वोच्च सत्ता द्वारा इनके अधिकारों का अतिक्रमण किया जाता था, प्रेस उसकी आलोचना करते थे । प्रेस नरेशों के नैतिक उत्थान तथा प्रजा के प्रति उनके कर्त्तव्यों के बारे में उन्हें जागरूक भी करता था। कूच बिहार, पटियाला, रामपुर के शासकों द्वारा प्रजा हित की अवहेलना कर मनोरंजन और व्यसन में संलिप्त रहने पर समाचार पत्रों ने कड़ी आलोचना की। कुछ समाचार पत्र ने अपव्यय के कारण लार्ड कर्जन के उन कदमों का स्वागत किया जिसके द्वारा नरेशों पर विदेश जाने के बारे में प्रतिबंध लगाया था ।

प्रेस भारत की विदेश नीति की भी खूब समीक्षा करती थी । वर्मा युद्ध, सिक्किम तथा तिब्बत के प्रति नीति, अफगनिस्तान युद्ध, तुर्की के प्रति नीति, दक्षिण अफ्रीका की घटनाओं (बोअर युद्ध) रूस–जापान युद्ध का वर्णन तथा सरकार की नीति की आलोचना प्रेस ने खुलेआम की । प्रेस ने ग्लैडस्टन की वर्मा संबंधी नीतियों की आलोचना करते हुए स्पष्ट किया कि युद्ध इंगलैड के साम्राज्यवादी हितों की रक्षा के लिए लड़ा गया था न कि भारतीयों की सुरक्षा के लिए।

दक्षिण अफ्रीका में गाँधी के प्रयासों का भारतीय प्रेस में उल्लेख किया गया। शुरू में अंग्रेजों के विरुद्ध बोअर विजय से भी भारतीय प्रेस खुश थे। रूस–जापान युद्ध (1904–5) में रूस की पराजय को समाचार पत्रों ने आत्मविश्वास और राष्ट्रवाद बढ़ाने के अवसर के रूप में देखा। रूस का मध्य एशिया में बढ़ते प्रभाव के कारण अंग्रेज काफी सहमे हुए थे। ऐसी स्थिति में रूसी प्रशासन की भारतीय प्रेस द्वारा प्रशंसा कर अंग्रेजों पर दबाव का प्रयास किया जा रहा था।

तुर्की के प्रति भारतीय मुसलमानों की भावनाओं को सरकार एवं जनता के समक्ष रखने में प्रेस ने महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। हालाँकि सर सैयद अहमद खाँ सहित कुछ लोगों के विचार भिन्न थे। अरमानिया एवं वाल्कन (1912) मुद्दे पर मुस्लिम प्रेस जमीन्दार, अलहिलाल, तोहीद, हमदर्द, कामरेड आदि ने अपनी शक्ति का पूरा प्रयोग करते हुए संपूर्ण देश में अंग्रेजों के विरुद्ध राष्ट्रीय भावना जागृत कर दी।

देश के राष्ट्रीय आन्दोलन को नई दिशा देने एवं राष्ट्रनिर्माण में भी प्रेस की महत्वपूर्ण भूमिका रही। प्रेस ने सरकार की नीतियों की समीक्षा तथा जनमत का निर्माण कर लोकतांत्रिक तरीके से उसके विरोध का मार्ग प्रशस्त किया। सम्पूर्ण देश के लोगों के बीच सामाजिक कुरीतियों को दूर करने, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक एकता स्थापित करने का कार्य भी किया गया। विदेशी

राजनीतिक घटनाओं से स्वतंत्रता आन्दोलन को अनुप्राणित करने का कार्य भी प्रेस ने किया। लिटन द्वारा वर्नाक्यूलर प्रेस ऐक्ट के माध्यम से समाचार पत्रों पर प्रतिबंध ने भी राष्ट्रीय आन्दोलन एवं जनमानस को उद्वेलित किया। लार्ड कर्जन द्वारा बंगाल के विभाजन ने तो भारतीय प्रेस एवं राष्ट्रीय आन्दोलन, दोनों को नया जीवन प्रदान किया।

इस काल में हिन्दू-मुस्लिम दोनों प्रेस ने ईसाइयों के विरुद्ध हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच एकता लाने का प्रयास किया। निजाम-उल-मुल्क तथा अखबारे आम ने ईसाई सरकार के विरुद्ध एक संगठित जनमत बनाने का आह्वान किया। मुस्लिम प्रेस ने साम्प्रदायिक दंगों के प्रति भी तार्किक दृष्टिकोण अपनाया तथा सरकार द्वारा उकसानेवाली नीतियों को बिना सोचे-समझे स्वीकार नहीं किया। प्रेस ने गंगा-जमुनी संस्कृति का पक्ष लेते हुए साम्प्रदायिक एकता बनाये रखने में भी प्रशंसनीय भूमिका निभाई।

कांग्रेस में वैचारिक मतभेद के फलस्वरूप सूरत फूट (1907) के पश्चात नरम दल के नेताओं ने अपने विचारों को जनता तक पहुँचाने के लिए प्रेस का सहारा लिया। दूसरी तरफ बाल-लाल-पाल के नेतृत्व में अतिवादी राष्ट्रवाद के विचारों को भी फैलाने का कार्य प्रेस ने किया दोनों पक्ष के महत्वपूर्ण राष्ट्रीय नेता कई समाचार पत्रों के संस्थापक तथा संपादक भी थे। फिरोजशाह मेहता, तिलक, ऐनीबेसेंट, गांधी सरीखे महान नेता संपादकीय के द्वारा समाचार पत्रों के माध्यम से राष्ट्रीय आन्दोलन के लिए जनमत जुटाने का प्रयास किया। भारतीय भाज़ाओं के समाचार पत्रों ने आम जनता से भावनात्मक संबंध स्थापित कर राष्ट्रीय आन्दोलन के पक्ष में उन्हें तैयार किया। इस प्रकार भारतीय प्रेस ने राष्ट्रीयता के प्रसार में महत्वपूर्ण योगदान दिया। इसने संपूर्ण भारत को एकता के सूत्र में बांधने, विभिन्न समुदायों की बीच की दूरी समाप्त करने एवं शोषण के विरूद्ध जनमत तैयार करने का कार्य कर राष्ट्रीय आन्दोलन एवं राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया को तीव्र किया।

प्रेस के विरूद्ध प्रतिबंध :

भारत में समाचार पत्रों के प्रकाशन के साथ ही सरकारी नीतियों की समीक्षा भी शुरू हो गई थी। प्रारम्भ में कंपनी शासन के दौरान समाचार पत्रों के लिए आदर्श आचार संहिता नहीं थी। कंपनी की स्वेच्छा पर निर्भर था कि समाचार पत्र या संपादक के प्रति वह अपने अनुकूल कार्य न करने पर कौन सा दण्ड निर्धारित करे। इन परिस्थितियों में समाचार पत्र कम्पनी की दया पर

निर्भर थे। कम्पनी कभी भी पूर्व पर्यवेक्षण की नीति के कारण मनोनुकूल नहीं रहने पर संपादक को वापस इंग्लैंड भेज देती थी। लेकिन वह भारतीय संपादकों के साथ ऐसा नहीं कर सकती थी। अतः समाचार पत्रों को नियंत्रित करने के लिए कई अधिनियम बनाए गए।

(1) 1799 का समाचार पत्रों का पर्त्रेक्षण अधिनियम : लार्ड वेलेजली ने फ्रांस के आक्रमण के भय से समाचार पत्रों पर सेन्सर बैठा दिया। इस अधिनियम के अनुसार समाचार पत्र को संपादक, मुद्रक एवं स्वामी का नाम स्पज्ट रूप से छापना पड़ता था। प्रकाशक को प्रकाशित किए जानेवाले सभी तत्त्वों को सरकार के सचिव के सम्मुख पूर्व-पत्रेक्षण के लिए भेजना होता था। 1807 में इस अधिनियम को पत्रिकाओं, पॅम्फलेट तथा पुस्तकों पर भी लागू कर दिया गया। हेस्टिंग्स के समय कुछ ढील दी गई और 1818 तक पूर्व पत्रेक्षण बन्द कर दिया गया।

(2) 1823 के अनुज्ञप्ति नियम (The Licencing Regulation of 1823) : 1823 में जान एडम्स गवर्नर जनरल बनते ही अपने प्रतिक्रियावादी विचारों को इस अधिनियम में व्यक्त किया । इसके अनुसार-मुद्रणालय स्थापित करने के लिए अनुज्ञप्ति लेनी आवश्यक थी। बिना अनुज्ञप्ति 400 रुपये का दण्ड अथवा कारावास की सजा का प्रावधान था। दण्ड नायक बिना अनुमति मुद्रणालय जब्त कर सकता था। गवर्नर जनरल को अनुज्ञप्ति रद्द करने का भी अधिकार था। इस नियम के आलोक में राजा राममोहन राय के मिरात-उल-अखबार को बन्द होना पड़ा तथा जे०एस० वर्किंघम को इंग्लैंड में उद्वासित होना पड़ा।

(3) भारतीय समाचार पत्रों की स्वतंत्रता 1835 (The Liberation of Indian Press) : विलियम वेंटिक समाचार पत्रों के प्रति उदार था लेकिन 1823 के नियम को रद्द कर चार्ल्स मेटकाफ भारतीय समाचार पत्रों के 'मुक्ति दाता' के रूप में विभूषित हुआ। मैकाले का विचार था कि आपातकाल में सरकार के पास अनन्त शक्ति है तो शांतिकाल में ऐसे नियमों की कोई आवश्यकता नहीं है। नए अधिनियम के तहत प्रकाशक प्रकाशन स्थान की सूचना देकर सुगमता से कार्य कर सकता था। 1856 तक यह कानून चलता रहा,फलतः देश में समाचार पत्रों की संख्या में अप्रत्याशित वृद्धि हुई।

(4) 1857 का अनुज्ञप्ति अधिनियम (Licencing Act of 1857) : 1857 के अधिनियम के अनुसार अनुज्ञप्ति को पुनः लागू कर दिया गया। यह सिर्फ एक वर्ष के लिए संकटकालीन वयवस्था के रूप में लागू किया गया था।

(5) 1867 का पंजीकरण अधिनियम (Registration Act of 1867) : इस अधिनियम के तहत मेटकाफ के अधिनियम को परिवर्तित किया गया। जिसका उद्देश्य मुद्रणालयों को नियमित करना था। प्रत्येक पुस्तक तथा समाचार पत्र पर मुद्रक, प्रकाशक तथा मुद्रण स्थान का नाम होना आवश्यक था। इसके अतिरिक्त एक महीने के भीतर प्रकाशक को पुस्तक की एक प्रति सरकार को देनी भी थी। बहावी विद्रोह के कारण राजद्रोह फैलानेवाले को अंशकालिक अथवा पूर्णकालिक सजा का भी प्रावधान किया गया।

(6) देशी भाषा समाचार-पत्र अधिनियम वर्नाक्यूलर प्रेस एक्ट 1857 : 1857 के पश्चात समाचार-पत्र भी शासक और शासित के बीच में बँट गए। अंग्रेजी समाचार पत्र सरकार का सदैव समर्थन करते थे। लेकिन देशी समाचार पत्रों ने मुखर होकर साम्राज्यवादी नीतियों के विरुद्ध राष्ट्रवादी भावना को उत्पन्न किया। अकाल और सरकारी अपव्यय की खबरों ने जनता के बीच भारी असंतोष को उत्पन्न किया। लिटन यह समझता था कि इस असंतोष का कारण 'मैकाले और मेटकाफ' की नीतियाँ हैं। फलत: इसने 1878 के देशी भाषा समाचार-पत्रों को अधिक नियंत्रण में लाने का प्रयत्न किया। इस अधिनियम के माध्यम से जिला दण्डनायक (Bond) बंधनपत्र एवं जमानत पर किसी समाचार पत्र को प्रकाशित करने की आज्ञा इस शर्त पर दे कि वे ताज (Crown) के विरुद्ध भड़काने वाले कोई समाचार नहीं छापेंगे। इसमें दण्ड नायक का निर्णय अंतिम होगा। अगर कोई समाचार पत्र इस अधिनियम से बचना चाहे तो अपने पत्र की इक्ष्य प्रति (Proof) सरकारी पर्यवेक्षण को पहले से देनी होगी।

लार्ड लिटन

यह अधिनियम देशी भाषा समाचार पत्रों के लिए मुँह बन्द करने वाला एवं भेदभाव पूर्ण साबित हुआ। यह भारतीय समाचार पत्रों की भाषा और भाव को नियंत्रित करने में सफल रहा। नए भारत सचिव लार्ड क्रेनवुक ने पर्यवेक्षण की धारा को सितम्बर 1878 में हटा दिया। इसके बदले प्रेस आयुक्त को नियुक्त किया गया जिसका कार्य सच्चे और यथार्थ समाचार पत्र प्रेषित करना था।

लार्ड रिपन जो सच्चा उदारवादी शासक था ने इस अधिनियम को रद्द कर दिया। लेकिन 1898 के अधिनियम के द्वारा व्यवस्था की गई कि वैसे कथन जो सेना में असंतोष फैलाए तथा राज्य के विरूद्ध कार्य करने की प्रेरणा दे, को दण्डित किया जा सके। वर्नाक्यूलर प्रेस एक्ट ने राष्ट्रीयता की भावना एवं जन असंतोष में उबाल ही लाने का कार्य किया।

(7) 1908 का समाचार पत्र अधिनियम (The News Paper Act 1908) : लार्ड कर्जन की नीतियों के विरूद्ध उग्रराष्ट्रवाद की भावनाएँ भड़क रही थी। इन्हें दबाने के लिए 1908 का News Paper Act पास किया गया। इसके अनुसार किसी समाचार पत्र की ऐसी सामग्री जिससे हिंसा अथवा हत्या की प्रेरणा मिले, उसकी संपति को सरकार जब्त कर सकती थी। स्थानीय सरकार पंजीकरण अधिनियम 1867 के तहत किसी प्रकाशक की घोज़णा को रद्द कर सकती थी। प्रकाशकों को मुद्रणालय जब्त होने के 15 दिन के भीतर उच्च न्यायालय में अपील करने की अनुमति थी।

(8) 1910 का भारतीय समाचार पत्र अधिनियम (The Indian Press Act 1910) : इस अधिनियम ने लार्ड लिटन के 1878 के एक्ट के सभी घिनौने लक्षण को पुनर्जीवित कर दिया। सरकार के जमानत जब्त करने तथा पंजीकरण रद्द करने का अधिकार था। पुनः आपत्तिजनक सामग्री प्रकाशित करने पर मुद्रणालय और पुस्तक की सभी प्रतियों को जब्त करने का अधिकार मिल गया। प्रथम विश्वयुद्ध के दिनों में भारत सुरक्षा नियम के अन्तर्गत राजनैतिक आन्दोलन तथा स्वतंत्र जन आलोचना की आज्ञा नहीं थी। 1921 में तेज बहादुर सप्रु की अध्यक्षता वाली प्रेस कमिटी की सिफारिश पर 1908 और 1910 के अधिनियम को रद्द कर दिया गया।

(9) 1931 का भारतीय समाचार पत्र (संकटकालीन शक्तियाँ) अधिनियम : इसके अनुसार 1910 के सारे आदेश पुनः लागू कर दिए गए। इस अधिनियम द्वारा प्रत्यक्ष-परोक्ष किसी रूप से अपराध की प्रेरणा देने पर कड़ा दण्ड का प्रावधान किया गया। 1932 में प्रभुसत्ता को हानि पहुँचानेवाली सभी गतिविधियों को नियंत्रित करने के लिए यह अधिनियम लाया गया। द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान पूर्व पत्रेक्षण को पुनः लागू किया गया। एक समय राष्ट्रीय कांग्रेस के विषय में समाचार प्रकाशित करना भी अवैध घोषित किया गया। इन सभी शक्तियों को 1945 में समाप्त कर दी गई।

(10) समाचार पत्र जाँच समिति (Press Examination Committee) : मार्च 1947 में गठित यह समिति संविधान सभा में स्पष्ट किए गए मौलिक अधिकारों के आलोक में

सिफारिश की कि 1931 के समाचार पत्र अधिनियम, देशी राज्य अधिनियम (असंतोष के विरुद्ध एकता), 1934 के देशी रक्षा अधिनियम को रद्द किया जाए।

(11) 1951 का समाचार पत्र (आपत्तिजनक विषय) अधिनियम (The Press objectionable Matters Act 1951) : 1951 में सरकार की संविधान के अनुच्छेद 19 (2) में संशोधन और समाचार पत्र अधिनियम पारित करने की आवश्यकता पड़ी। इसके माध्यम से अब तक के सभी अधिनियमों को रद्द कर दिया गया। नए कानून के माध्यम से सरकार मुद्रणालय को आपत्तिजनक विषय प्रकाशित करने पर जब्त कर सकती थी। प्रकाशकों को जूरी द्वारा परीक्षा मांगने का अधिकार दे दिया गया। यह अधिनियम 1956 तक लागू रहा।

कई पत्रकार संगठनों द्वारा इसका विरोध करने पर सरकार ने न्यायाधीश जी०एस० राजाध्यक्ष की अध्यक्षता में एक प्रेस कमीशन नियुक्त किया। इसने 1954 में अखिल भारतीय समाचार पत्र परिषद् के गठन सहित कई सुझाव दिए जो सरकार द्वारा मान लिए गए।

स्वातंत्र्योत्तर भारत में प्रेस की भूमिका : वैश्विक स्तर पर मुद्रण अपने आदिकाल से भारत में स्वाधीनता आन्दोलन तक भिन्न-भिन्न परिस्थितियों से गुजरते हुए आज अपनी उपादेयता (महत्व या उपयोगिता) के कारण ऐसी स्थिति में पहुँच गया है कि इससे ज्ञान जगत् की हर गतिविधियाँ प्रभावित हो रही है। आज पत्रकारिता साहित्य, मनोरंजन, ज्ञान-विज्ञान प्रशासन, राजनीति आदि को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित कर रहा है।

आज के इस आधुनिक दौर में प्रेस, साहित्य और समाज की समृद्ध चेतना की धरोहर है और पत्र-पत्रिकाएँ दैनिक गतिशीलता की लेखा है। स्वातंत्र्योत्तर भारत में पत्र-पत्रिकाओं का उदेश्य भले ही व्यावसायिक रहा हो किन्तु इसने साहित्यिक एवं सांस्कृतिक अभिरूचि जगाने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया है। पत्र-पत्रिकाओं ने दिन-प्रतिदिन घटनेवाली घटनाओं के परिप्रेक्ष्य में नई और सहज शब्दावली का प्रयोग करते हुए भाषाशास्त्र के विकास में भी महत्वपूर्ण योगदान दिया। प्रेस ने समाज में नवचेतना पैदा कर सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक एवं दैनिक जीवन में क्रांति का सूत्रपात किया। प्रेस ने सदैव सामाजिक बुराइयों दहेज प्रथा, विधवा विवाह, बालिका-बध, बाल-विवाह जैसे मुद्दों को उठाकर समाज के कुप्रथाओं को दूर करने में मदद की तथा व्याप्त अंधविश्वास को दूर करने का प्रयास किया।

आज के परिवर्तनकारी युग में प्रेस स्वस्थ-मनोविनोद का भी स्रोत बन गया है। आज की भाग-दौड़ एवं तनावपूर्ण जीवन शैली में भी प्रेस, सिनेमा से लेकर खेलकूद से संबधित समाचार को प्रमुखता से छापकर पाठकों का मनोरंजन करती है। प्रेस पारस्परिक गपशप, हास-परिहास, व्यंग्य-विनोद, प्रश्नोत्तर, फूलझड़ी, कहकहें से लेकर काँव-काँव के माध्यम से समाज को सूक्ष्म संदेश तो देती ही है, मनोरंजन भी करती है।

आज प्रेस समाज में रचनात्मकता का प्रतीक भी बनता जा रहा है। यह समाज को नित्यप्रति की उपलब्धियों, वैज्ञानिक अनुसंधानों, वैज्ञानिक उपकरणों एवं साधनों से परिचित कराता है। पत्रकार, विज्ञान के वरदान और अभिशाप को घटनाओं के माध्यम से समाज के सामने लाते है। ताकि सामान्य लोग भी विश्व कल्याण के संदर्भ में सोच सके।

आज प्रेस लोकतंत्र के चौथे स्तंभ के रूप में लोकतांत्रिक मूल्यों की रक्षा करने हेतु सजग प्रहरी के रूप में हमारे सामने खड़ा है। यह वर्तमान राजनीति को सकारात्मक दिशा प्रदान करने के साथ-साथ भ्रष्टतंत्र पर करारा प्रहार करने का भी प्रयास करता है।

इस तरह हम देखते हैं कि प्रेस अपने विकास के प्रथम चरण से आज भिन्न-भिन्न परिस्थितियों से गुजरते हुए समस्त परम्पराओं एवं मूल्यों की रक्षक तथा वर्तमान सामाजिक, वैज्ञानिक एवं राजनीतिक गतिविधियों को समझने एवं जानने के मुख्य श्रोत के रूप में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है।
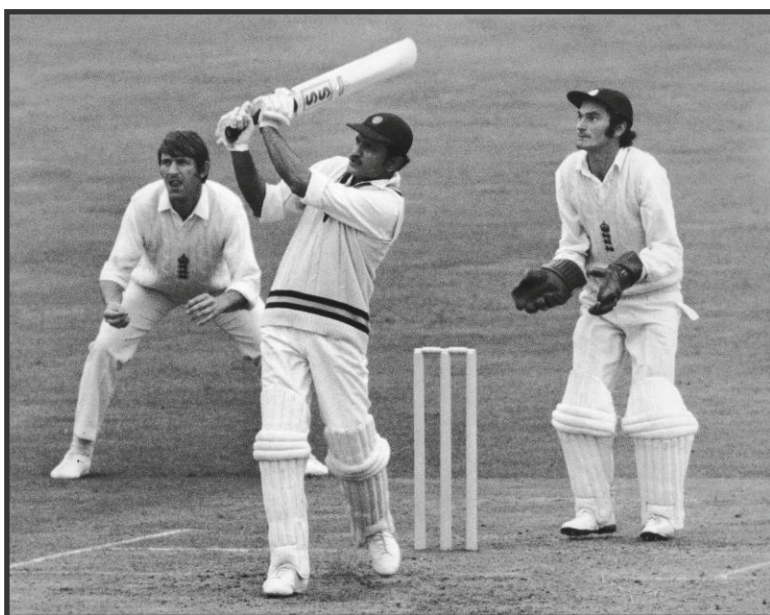
क्रिकेट खेलते हुए भारतीय टीम

वस्तुनिष्ठ प्रश्न :

1. **महात्मा गाँधी ने किस पत्र का संपादन किया ?**

   (क) कामनवील (ख) यंग इंडिया

   (ग) बंगाली (ग) बिहारी

2. **किस पत्र ने रातों-रात वर्नाक्यूलर प्रेस एक्ट से बचने के लिए अपनी भाषा बदल दी ?**

   (क) हरिजन (ख) भारत मित्र

   (ग) अमृतबाजार पत्रिका (ग) हिन्दुस्तान रिव्यू

3. **13वीं सदी में किसने ब्लॉक प्रिंटिंग के नमूने यूरोप में पहुँचाए ?**

   (क) मार्कोपोलो (ख) निकितिन

   (ग) इत्सिंग (ग) मेगास्थनीज

4. **गुटेनवर्ग का जन्म किस देश में हुआ था ?**

   (क) अमेरिका (ख) जर्मनी

   (ग) जापान (ग) इंग्लैंड

5. **गुटेनवर्ग ने सर्वप्रथम किस पुस्तक की छपाई की ?**

   (क) कुरान (ख) गीता

   (ग) हदीस (ग) बाइबिल

6. **इंग्लैंड में मुद्रणकला को पहुँचाने वाला कौन था ?**

   (क) हैमिल्टन (ख) कैक्सटन

   (ग) एडिसन (ग) स्मिथ

7. **किसने कहा '' मुद्रण ईश्वर की दी हुई महानतम् देन है, सबसे बड़ा तोहफा'' ?**

   (क) महात्मा गांधी (ख) मार्टिन लूथर

   (ग) मुहम्मद पैगम्बर (ग) ईसा मसीह

8. रूसो कहाँ का दार्शनिक था ?

(क) फ्रांस (ख) रूस

(ग) अमेरिका (घ) इंगलैंड

9. विश्व में सर्वप्रथम मुद्रण की शुरुआत कहाँ हुई?

(क) भारत (ख) जापान

(ग) चीन (घ) अमेरिका

10. किस देश की सिविल सेवा परीक्षा ने मुद्रित पुस्तकों (सामग्रियों) की माँग बढ़ाई?

(क) मिश्र (ख) भारत

(ग) चीन (घ) जापान

रिक्त स्थानों को भरें :

1. 1904-05 के रूस-जापन युद्ध में .... की पराजय हुई।
2. फिरोज शाह मेहता ने .... का संपादन किया।
3. वर्नाक्यूलर प्रेस एक्ट .... ई० में पास किया गया।
4. भारतीय समाचार पत्रों के मुक्तिदाता के रूप में .... को विभूषित किया गया।
5. अल-हिलाल का सम्पादन .... ने किया।

सुमेलित करें :

1. जे० के० हिक्की	(क) संवाद कौमुदी
2. राम मोहन राय	(ख) बंगाली
3. बाल गंगाधर तिलक	(ग) बंगाल गजट
4. केशवचन्द्र सेन	(घ) मराठा
5. सुरेन्द्र नाथ बनर्जी	(ङ) सुलभ समाचार

1. **निम्नांकित के बारे में 20 शब्दों में लिखें :**

(क) छापाखाना
(ख) गुटेनवर्ग
(ग) बाइबिल
(घ) रेशम मार्ग
(ङ) मराठा
(च) यंग इंडिया
(छ) वर्नाक्यूलर प्रेस एक्ट
(ज) सर सैयद अहमद?
(झ) प्रोटेस्टेन्ट वाद
(ञ) मार्टिन लूथर

2. **निम्नांकित प्रश्नों के उत्तर 60 शब्दों में दें :**

(क) गुटेनवर्ग ने मुद्रणयंत्र का विकास कैसे किया ?

(ख) छापाखाना यूरोप में कैसे पहुँचा ?

(ग) इन्क्वीजीशन से आप क्या समझतें है।

(घ) पाण्डुलिपि क्या है? इसकी क्या उपयोगिता है?

(ङ) लार्ड लिटन ने राष्ट्रीय आन्दोलन को गतिमान बनाया। कैसे ?

3. **दीर्घ उत्तरीय प्रश्न 150 शब्दों में उत्तर दें :**

(क) मुद्रण क्रांति ने आधुनिक विश्व को कैसे प्रभावित किया ?

(ख) 19वीं सदी में भारत में प्रेस के विकास को रेखांकित करें ।

(ग) भारतीय प्रेस की विशेषताओं को लिखें।

(घ) राष्ट्रीय आन्दोलन को भारतीय प्रेस ने कैसे प्रभावित किया?

(ङ) मुद्रण यंत्र की विकास यात्रा को रेखांकित करें। यह आधुनिक स्वरूप में कैसे पहुँचा?

वर्ग परिचर्चा :

1. छपाई की तकनीक को समझने के लिए अपने शिक्षक के साथ नजदीकी प्रेस का भ्रमण करें।

2. आधुनिक समाचार पत्रों के साथ पूर्ववर्ती समाचार पत्रों का तुलनात्मक अध्ययन अपने वर्ग शिक्षक से करे।